गांधी का पतन
की लोमहर्षक कहानी
डा० आर० मानकेकर
कमला मानकेकर
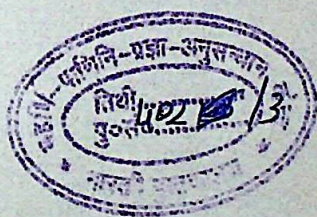
इन्दिरा गांधी का पतन

इमर्जेन्सी की लोमहर्षक कहानी

इन्दिरा गांधी का पतन

इमर्जेन्सी की लोमहर्षक कहानी

डी० आर० मानकेकर
कमला मानकेकर
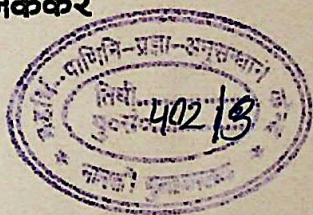
अनुवाद : वीरेन्द्रकुमार गुप्त

मूल्य : सोलह रुपये 16.00 (अजिल्द)

प्रथम संस्करण 1977, © डी० आर० मानकेकर और कमला मानकेकर
INDIRA GANDHI KA PATAN : EMERGENCY KI LOMHARSHAK KAHANI, (Hindi version of Decline and Fall of Indira Gandhi : 19 Months of Emergency) by D. R. Mankekar and Kamala Mankekar

जयप्रकाश नारायण
को समर्पित
जो अकम्पित भाव से
हमें अंधकार से प्रकाश में
ले आये

भूमिका

विभाजन की तरह आपातस्थिति भी हमारे देश के जीवन में एक युगान्तरकारी घटना घटी है और कहानी एवं निबन्ध; अनेकों पुस्तकों के लेखन को प्रेरित कर रही है।

त्रासदी, भयानक आघात, पराकाष्ठा एवं प्रतिकाष्ठा—लम्बी अंधेरी रात जिसने अचानक घुलकर जीवनदायी उत्फुल्ल दिन को स्थान दे दिया—उसके नायक और नायिकाएं और उसके खलनायक और हां, विदूषक भी—यह सब ऐसी भरी-पूरी सामग्री है कि इससे एक दूसरा महाभारत लिखा जा सकता है; और उसमें इसके अपने दुर्योधन और दु:शासन और अर्जुन और कृष्ण होंगे।

यह वह मिट्टी है, जिसे हाथ में लेने के लिए और अपने-अपने भाव के अनुकूल, उनकी कला का शिल्प जैसा कहे वैसा रूप उसे देने के लिए पत्रकार, उपन्यासकार, कवि, नाटककार और फिल्म-निर्माता कसमसाते हैं।

यह पुस्तक आपातस्थिति पर लिखे जाने वाले ढेर से साहित्य को एक पत्रकार का योगदान है। प्रस्तुत विषय में विवरण देने, आज के विशिष्ट इतिहास का विवेचन करने और महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्तर सहित उठाने की बड़ी भारी सामर्थ्य है और आने वाले लम्बे समय तक लेखक इन सबसे जूझेंगे।

यह पुस्तक एक ग्रीक दुखान्त नाटक को नियति की, उस अभेद्य चमत्कार की दृश्यावली प्रस्तुत करती है, जिसने इस देश के भाग्य को और उस अक्खड़, आत्मतुष्ट शासक के भाग्य को मोड़ दिया, जो अपनी अमोघता, लोकप्रियता एवं अनश्वरता के बारे में पूरी तरह आश्वस्त थी और अन्त में जिसने अपने पतन की दिशा में स्वयं अपना कदम बढ़ाया। इस नाटक के उपसंहार में सचमुच ही रेचन के तत्व हैं।

एक कठोर अन्तिम तिथि को धन्यवाद कि जो राष्ट्रीय घटनाएं इस विवरण में उल्लिखित हुई हैं, उन्हें अनिवार्यत: राजधानी में बैठकर ही परखा-निरखा जा सका है। अधिक समय मिले तो इस विषय पर अधिक बड़े कनवास पर और अधिक विस्तृत ढंग से लिखा जा सकता है और पूरे देश में, अर्थात् आसाम और पश्चिमी बंगाल में, काश्मीर और उड़ीसा में, केरल और कर्नाटक में, (अब जाकर यह प्रकट हुआ है कि कर्नाटक ने आपातस्थिति के दौरान सबसे अधिक नजरबन्दी जेलों में भेजे थे) चले अत्याचार के विरुद्ध जनता के शानदार संघर्ष की विवरणपूर्ण झांकी, जिसे एक राक्षसी सेंसर ने दबा दिया था, प्रस्तुत की जा सकती है।

—डी० आर० मानकेकर

—कमला मानकेकर

क्रम

1

पर्दा उठता है

यह नाटक एक ग्रीक त्रासदी (दुखान्त नाटक) ही है। इसमें प्रखर गति से बहने वाला घटना-प्रवाह अपनी निश्चित परिणति की ओर लपकता है। विनाश-काले विपरीत बुद्धिः।

त्रासकारी उन्नीस महीनों के कम न होने वाले अन्धकार के बाद अचानक पौ फटती है और नीचे झुके घने बादलों को भेदकर सूर्य एक बार फिर चमक उठता है। अच्छाई बुराई पर विजय प्राप्त कर लेती है। भारतीय लोकतन्त्र अपना ज़ोर दिखाता है और उस निरंकुश सत्तावाद को उलट देता और उखाड़ फेंकता है, जिसके सदा-सदा के लिए हमारे बीच टिके रहने का खतरा बन उठा था।

पर्दा 12 जून 1975 के दिन इलाहाबाद न्यायालय के एक कमरे में उठता है। कमरा उत्सुक दर्शकों से खचाखच भरा है। मौसम में बड़ी ही उमस और घुटन है। न्यायालय के वातावरण में तनाव है और उत्कंठा की सरसराहट है।

इन्दिरा गांधी के लिए यह फैसले का दिन है। उस चुनाव याचिका का फैसला होने ही वाला है, जिसे 1971 के चुनावों में रायबरेली के चुनाव-संघर्ष के बाद उनके अपराजेय प्रतिद्वन्द्वी राजनारायण ने उनके विरुद्ध दाखिल की थी। मुकदमा लगभग पूरे तीन वर्षों तक घिसटता रहा है, एक कार्यस्थगन से दूसरे कार्यस्थगन तक और एक न्यायाधीश से दूसरे न्यायाधीश तक।

दस बजने के ठीक पहले साफ़, बेदाग कपड़ों में सज्जित पेशकार अदालत के कमरे में प्रकट होता है और वहां उपस्थित लोगों को न्यायाधीश महोदय का एक सन्देश सुनाता है। सन्देश में लोगों को चेतावनी दी गई है कि जब न्यायाधीश महोदय अपना फैसला सुना रहे हों तब कोई प्रदर्शन अथवा नारेबाज़ी न की जाए। यह विशिष्ट चेतावनी अदालत में पहले से ही वर्तमान तनाव को और भी बढ़ा देती है।

ठीक दस बजते ही न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा पिछले द्वार से न्यायालय में प्रवेश करते हैं और मंच पर अपनी कुर्सी ग्रहण करते हैं। सभी वकील और दर्शक उठकर खड़े हो जाते हैं। न्यायालय में गहरी खामोशी छा जाती है।

न्यायाधीश महोदय अपने सामने उपस्थित जन-समूह पर जल्दी से एक नज़र डालते हैं और तब घोषणा करते हैं :

"मैं इस मुकदमे के विभिन्न मुद्दों पर अपने निष्कर्षों को ही इस समय पढ़ूंगा, पूरा फैसला (यह 259 फुलस्केप पृष्ठों में था।) नहीं।"

पूर्ण स्तब्धता के बीच न्यायाधीश महोदय बोलना शुरू करते हैं : "याचिका स्वीकार की जाती है।" और उनकी चेतावनी के बावजूद और उन्हें भारी उलझन में डालते हुए भी उपस्थित दर्शक तालियां पीट उठते हैं।

और अब वह महत्त्वपूर्ण घोषणा होती है : "प्रधानमन्त्री को छः वर्षों के लिए मताधिकार से वंचित किया जाता है।" न्यायाधीश महोदय के बाकी शब्द शोर में डूब जाते हैं। अदालत के कमरे में इतना कोलाहल होता है कि नियन्त्रण से बाहर हो जाता है। दर्शक उत्तेजना से पागल हो उठे हैं। उन पर दौरा-सा आ गया है। यहां तक कि सदा गम्भीर रहने वाले संवाददाता और वकील भी उसमें शामिल हो जाते हैं।

न्यायमूर्ति सिन्हा को अपना फैसला पढ़ने में पांच मिनट से भी कम लगे। तब वे अपने कक्ष में वापिस चले गए। अब जो थोड़ी-बहुत रोक थी, वह भी हट गई और दर्शक एकदम बे-काबू हो गए। भारी गुल-गपाड़ा मच उठा। लोग नारे लगाने लगे, नाचने लगे, एक-दूसरे से गले मिलने लगे। सभी एक-दूसरे को बधाइयां दे रहे थे और अविश्वास, विस्मय और हैरानी में अपने सिर हिला रहे थे।

राजनारायण के वकील शान्तिभूषण अपने इस गौरव का आनन्द लेने के लिए वहां नहीं हैं। अनिवार्य व्यावसायिक काम से वे कहीं और गए हैं। उनके स्थान पर उनका सहायक खड़ा है। श्रीमती गांधी के वकील एस०सी० खरे भौंचक और स्तब्ध दीख पड़ रहे हैं। उनके चेहरे का सारा रंग उड़ गया है। खरे अपने को संभालते हैं और रास्ता बनाते हुए अदालत से बाहर निकलते हैं और न्यायमूर्ति सिन्हा के कक्ष में प्रवेश करते हैं, फैसले पर कार्य-स्थगन के हेतु आवेदन प्रस्तुत करने के लिए। न्यायाधीश महोदय तत्क्षण बीस दिनों के लिए पूर्ण स्थगन की मंजूरी दे देते हैं।

फैसले के अनुसार श्रीमती गांधी को जन-प्रतिनिधित्व कानून की धारा 123 (7) के अधीन निम्न दो मुद्दों पर भ्रष्ट साधन अपनाने का दोषी करार दिया गया :

(क) 1 फरवरी तथा 25 फरवरी, 1971 को श्रीमती गांधी द्वारा रायबरेली में सम्बोधित सभाओं के लिए मंच बनाने और लाउडस्पीकरों को बिजली देने के लिए सरकारी अधिकारियों का सहयोग प्राप्त करना; तथा

(ख) 7 जनवरी 1971 से 24 जनवरी 1971 के बीच की अवधि में श्रीमती गांधी के चुनाव प्रचार को आगे बढ़ाने के लिए श्री यशपाल कपूर का सहयोग उपलब्ध किया जाना, जबकि इस अवधि में श्री यशपाल कपूर भारत

सरकार की सेवा में एक पंजीकृत अधिकारी थे और प्रधान मन्त्री कार्यालय में विशेष अधिकारी के पद पर थे।

न्यायाधीश महोदय ने श्रीमती गांधी को, श्री राजनारायण द्वारा उनके विरुद्ध लगाए गए अन्य आरोपों से बरी कर दिया। न्यायाधीश महोदय ने माना कि श्रीमती गांधी ने चुनाव-खर्च की निश्चित अधिकतम सीमा से ज़्यादा खर्च नहीं किया और न ही उन्होंने उपहार आदि के रूप में, और मुफ्त यातायात की सुविधा के रूप में मतदाताओं को रिश्वतें दीं। चुनाव-यात्राओं के दौरान भारतीय वायुसेना के विमानों और हेलीकाप्टरों के श्रीमती गांधी द्वारा इस्तेमाल को भी उन्होंने भ्रष्ट आचरण नहीं माना। उन्होंने इस आरोप को भी रद्द कर दिया कि गाय और बछड़े के चुनाव-चिह्न का इस्तेमाल मतदाताओं की धार्मिक भावनाओं से गलत लाभ उठाना था और इसलिए यह एक भ्रष्ट आचरण था।

श्रीमती गांधी को उपर्युक्त दो मुद्दों पर दोषी करार देते हुए न्यायाधीश महोदय ने याचिका को स्वीकार किया और श्रीमती गांधी के चुनाव को रद्द घोषित कर दिया और जन-प्रतिनिधित्व कानून की धारा 8 अ के अनुसार इस फैसले की तिथि से आरम्भ करके छः वर्षों की अवधि तक के लिए उनकी अर्हता समाप्त कर दी।

इलाहाबाद में दिया गया यह फैसला भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना माना जायेगा। इसने भारतीय राजनीति को एक गहरा मोड़ दिया, घटनाओं की गति को एक नई व्यग्रता प्रदान की और भिन्न मापदंडों एवं मूल्यों वाली पूरी तरह से एक नई शासन पद्धति का देश में सूत्रपात किया।

600 किलोमीटर दूर भारत की राजधानी नई दिल्ली में इलाहाबाद में दिए गए फैसले की खबर एक स्तब्धकारी आघात की तरह पहुंची है। प्रधानमन्त्री को मताधिकार से वंचित कर दिया गया है—इस अविश्वसनीय खबर ने पूरे देश को ही जैसे मथ डाला है। नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग पर सुरक्षा प्रबन्ध कस दिए जाते हैं। ट्रकों में भरकर लाए गए पुलिस के सिपाही उतर रहे हैं और पूरे क्षेत्र में हर कहीं तैनात किए जा रहे हैं। दल के नेता और कानूनी विशेषज्ञ आ रहे हैं और जा रहे हैं क्योंकि श्रीमती इन्दिरा गांधी गहरी चर्चाओं में डूबी हैं। इन्दिरा के समर्थन में संगठित प्रदर्शन बाहर अभी से शुरू हो गए हैं। 13 जून के दिन—कांग्रेस संगठन की मशीन अब तक पूरी तरह हलचल में आ चुकी है। दिल्ली परिवहन की 1400 बसों में से कुल 380 सड़कों पर हैं, शेष को भीड़ की भीड़ लोगों को जन-प्रदर्शनों के लिए प्रधानमन्त्री-निवास के बाहर पहुंचाने के काम पर लगा दिया गया है।

चुनाव के समय किए गए सरकारी वायदे पूरे नहीं हुए हैं। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार ज्वार की तरह बढ़ रहा है। देश की अर्थव्यवस्था चरमरा रही है। कीमतें आसमान को छू रही हैं। आम आदमी की हालत दिन पर दिन असह्य

बनती जा रही है। पूरा उत्तरी और पश्चिमी भारत एक राजनीतिक विप्लव की स्थिति में है। जयप्रकाश का आन्दोलन गुजरात और बिहार से बढ़कर देश के अन्य हिस्सों में फैलता जा रहा है और ज़ोर पकड़ता जा रहा है। इस नाज़ुक वातावरण में इलाहाबाद से आई यह खबर शीशे की फर्द पर आ टिके मेहराब की तरह सबको दीखी।

सबसे पहले सुभद्रा जोशी श्रीमती गांधी से मिलने पहुंचीं। सुभद्रा के सामने उन्होंने अपनी बेबसी ज़ाहिर की और कहा, "अब मेरी कौन सुनेगा?" इलाहाबाद के फैसले की श्रीमती गांधी पर यह पहली छाप थी। लेकिन उन्होंने जल्द ही अपने को संभाल लिया। त्रासक द्विविधा के शूल पर वे चढ़ी थीं। कुछ मित्रों और हितचिन्तकों ने उन्हें सलाह दी कि वे इस फैसले के आगे सिर झुका दें और उच्चतम न्यायालय का अंतिम निर्णय प्राप्त होने तक अस्थाई रूप से पद-त्याग कर दें। वे इन पर और इनके सुझाव पर मुस्कराती हैं। ये मित्र यह सोचते हुए चले जाते हैं कि श्रीमती गांधी ने उनका सुझाव मान लिया है।

कुछ अन्य मित्र और हितचिन्तक भी आते हैं और परामर्श देते हैं कि उन्हें जमे रहना चाहिए और पदत्याग नहीं करना चाहिए। उनके प्रति भी वे बस मुस्कराती हैं। वे लोग भी आश्वस्त हो जाते हैं कि उनकी सलाह मान ली गई है। इन बाद के लोगों में पी०एन० हक्सर हैं, जो यह खबर सुनते ही नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग की ओर दौड़ पड़े थे। वे श्रीमती गांधी को आश्वासन देते हैं कि उनके विचार के अनुसार उन्हें इलाहाबाद के इस फैसले की उपेक्षा कर देनी चाहिए और पद पर डटे रहना चाहिए।

लोग तो यह या वह परामर्श देंगे ही, पर निर्णय तो श्रीमती गांधी को ही लेना है। यह लड़ाई वे अकेले ही लड़ रही हैं। जो भी निर्णय वे लेती हैं, परिणाम बहुत ही महत्त्वपूर्ण और दूरगामी होंगे। उनके दिमाग में जब संघर्ष मचा होता है तभी संजय भागकर मां के पास आता है और डटे रहने के लिए मां को उत्साहित करता है। वह कहता है, "हम यह लड़ाई मिलकर लड़ेंगे।" श्रीमती गांधी के कार्यकाल के इस भयानक संकट के समय संजय उनके लिए एक शक्ति-स्तम्भ तथा परामर्श एवं साहस-स्रोत सिद्ध होता है। बाद में दिए गए अपने एक वक्तव्य में श्रीमती गांधी ने यह बात स्वयं मानी है।

यहां तक कि श्रीमती गांधी पद-त्याग न करने के अपने फैसले के पक्ष में आचार्य विनोबा भावे तक का आशीर्वाद प्राप्त कर लेती हैं। वर्धा से मिले समाचार के अनुसार विनोबा इस समय अपने आश्रम में गम्भीर रूप से बीमार पड़े थे। उनकी शिष्या निर्मला देशपांडे ने बिस्तर पर पड़े विनोबा जी की आंखों के सामने कागज़ का एक टुकड़ा सरकाया, जिस पर ये शब्द लिखे थे—"इन्दिरा पद-त्याग करें, या डटी रहें?" विनोबा ने उस कागज़ पर लिख दिया, "डटी रहें।" निर्मला

देशपांडे अब दिल्ली की ओर भागीं और उन्होंने विनोवाजी का यह सन्देश अपने हाथ से श्रीमती गांधी को दिया।

प्राप्त अकाट्य साक्षी से पता लगता है कि उस अवसर पर प्रकाशित समाचारों के विपरीत, इलाहाबाद के फैसले की घोषणा के बाद स्थाई अथवा अस्थाई रूप में प्रधानमन्त्री पद से इस्तीफा देने की बात पर श्रीमती गांधी ने एक बार भी गम्भीरता से विचार नहीं किया था। असल में इसके प्रमाण मिले हैं कि एक महीना पहले इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय उलटा पड़ जाने की हालत में एक आपात योजना पर विचार किया गया था। एक विश्वासभाजन ने तो आवश्यकता पड़ने पर संविधान तक को भंग कर देने की बात की थी। आन्तरिक आपातस्थिति लागू कर देने तक की संभावना पर विचार किया गया था।

न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा की अदालत में मुकदमे का जो रुख दीख पड़ रहा था उसने प्रधानमन्त्री के शिविर में कइयों के मनों में घबराहट पैदा कर दी थी और आपात योजनाओं की बातें इसीलिए की गई थीं। यदि अस्थाई अथवा स्थाई पद-त्याग का हलके से हलका विचार भी उस समय या बाद में वहां रहा होता तो, 'आपात योजना' अथवा 'संविधान के स्थगन' जैसी निराशाजनक भाषा का प्रयोग न किया गया होता।

श्रीमती गांधी के जो मित्र और हितचिंतक यह छाप लेकर गए थे कि पद-त्याग की उनकी सलाह को स्वीकार कर लिया गया है, उन्होंने उनके उत्तराधिकारी के बारे में भी चिन्तन किया था। इस प्रकार सिद्धार्थशंकर राय, स्वर्णसिंह और देवकांत बरुआ के नामों पर बारी-बारी से विचार किया गया था और जब श्री जगजीवनराम की सम्भावित प्रतिकूल प्रतिक्रिया का ख्याल किया गया तो ये नाम रद्द कर दिए गए थे।

जहां तक श्रीमती गांधी का संबंध है उनके दिमाग में निर्णय बन चुका था और वह साफ था। 11 जून की रात से नम्बर 1 सफदरजंग लेन के चारों ओर जो सुरक्षा प्रबंध आरंभ किए गए थे और इलाहाबाद के फैसले के नई दिल्ली पहुंचने से बहुत पहले ही 12 जून की सुबह प्रधानमंत्री निवास पर पुलिस के उच्चतम अधिकारियों का जो सम्मेलन किया गया था उससे इस धारणा को और भी बल मिलता है।

संजय पहल करता है और आदेश देता है और यश कपूर और अर्जुनदास मैदान में उतर पड़ते हैं। और उसी दिन संध्या तक प्रधानमंत्री निवास के बाहर 'स्वयं-प्रेरित' प्रदर्शन आरम्भ हो जाते हैं। कार्यक्रम यह है कि पांच प्रदर्शन प्रतिदिन किए जाएं। यह निर्णय किया जाता है कि लोगों की भीड़ों को लाने के लिए दिल्ली परिवहन की बसों को नियुक्त किया जाए। दिल्ली कांग्रेस की पूरी मशीन को चालू कर दिया जाता है। इस सबके पीछे मौजूद संगठनकारी प्रतिभा, तथा

जिस गति और कुशलता से यह सब किया गया उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

उस दिन 12 जून 1975 को वातावरण में छाया राजनीतिक तनाव गुजरात राज्य के चुनाव परिणाम निकल जाने के फलस्वरूप और भी बढ़ जाता है, क्योंकि ये परिणाम कांग्रेस के विरुद्ध गए हैं। और इसी सुबह दिल्ली में श्री डी० पी० धर की मृत्यु हो जाती है। वे मास्को न जाकर यहीं ठहर गए थे जिससे कि इस संकट के समय वे श्रीमती गांधी के साथ रह सकें। और इलाहाबाद के फैसले के आने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई।

इस क्षण श्रीमती गांधी की आत्म-संरक्षण की प्रसिद्ध प्रवृत्ति ने नाटकीय ढंग से अपना ज़ोर दिखाया और हर अन्य विचार को उन्होंने अपने सामने से हटा दिया।

एक बार पहले भी 1969 में जब कांग्रेस दल के पुराने महारथियों ने उन्हें लगाम पहनानी चाही थी—और जब उन्होंने इसका विरोध किया तो महारथियों ने उन्हें दल से निकाल देने की धमकी दी थी—तब भी श्रीमती गांधी ने पूरी तरह घिर कर भी जवाबी वार करने की अपनी अद्वितीय प्रतिभा का प्रदर्शन किया था और वे लड़ाई को शत्रु के शिविर में खींच ले गई थीं। उस समय अस्तित्व-रक्षा की राजनीति में वे परम-दक्ष सिद्ध हुई थीं।

उदार, अहिंसक और पुरानी पद्धति के तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा उनके तीखे आक्रामक तरीकों के सामने ठहर नहीं सके थे। श्रीमती गांधी ने कुछ ही महीने पहले कांग्रेस का अध्यक्ष पद इन पर थोपा था। ये इस समय बीमार थे और एक अनिच्छुक योद्धा थे और हर बार, जैसे ही श्रीमती गांधी एक दांव इनसे जीतती थीं, इनका रक्तचाप बढ़ जाता था। सिंडीकेट के बाकी सदस्य भी लड़ाई के लिए तैयार नहीं थे। युद्ध में श्रीमती गांधी की दक्षता से वे बौखला उठे थे, यहां तक कि उनकी चालों की प्रशंसा तक वे कर उठते थे। लेकिन युद्ध में नैतिक तरीकों का पूर्ण अभाव जो वे दिखा रही थीं, उससे उन्हें पीड़ा होती थी। वे सोचते थे, यह क्रिकेट का खेल नहीं है और इसमें अब तक के उनके साथी उनके विरोधी हैं।

श्रीमती गांधी ने उन्हें पराजित कर दिया और देखते-देखते उनके समर्थकों को उखाड़ फेंका और तब उन्होंने अपनी राजनैतिक नौका को वामपंथी हवा के अनुकूल मोड़ दिया। उनकी सरकार के अल्पमत में रह जाने के कारण अपनी सरकार की रक्षा के लिए उन्हें नये साथियों की जरूरत थी। और उन्होंने प्रयासपूर्वक पेशकश की कि लोकसभा में कम्युनिस्ट पार्टी उन्हें समर्थन दे और वह उन्होंने प्राप्त कर लिया। बैंकों के राष्ट्रीयकरण के साथ-साथ उन्होंने आम बीमे का भी राष्ट्रीयकरण कर दिया और काफी धूमधड़ाके के साथ वे राजाओं की

प्रिवी पर्सों की समाप्ति का विधेयक भी ले आईं। यद्यपि कांग्रेस दल में इस भारी दरार के पड़ने से पहले वे अधिक उदार एक कानून के पक्ष में थीं, जिसके अनुसार राजाओं के सिर्फ विशेषाधिकार ही समाप्त किए जाने थे।

ऐसे जनवादी और वामपंथी उपायों से उन्होंने लोकसभा के कम्युनिस्ट और वामोन्मुख सदस्यों को खुश किया और अगला आम चुनाव होने तक अपनी अल्पमत सरकार की स्थिति को बड़ी चालाकी से स्थिर बनाए रखा। 1971 के चुनाव में वे भारी बहुमत के साथ आईं और तब उन्होंने उस भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पर अपनी शर्तें आरोपित करनी शुरू कीं जिस पर पिछली लोकसभा में अपनी सुरक्षा के लिए उन्होंने दीनतापूर्वक निर्भर किया था।

अब 1975 में एक बार फिर उनकी पीठ दीवार से लग गई है और आत्म-संरक्षण की उनकी प्रवृत्ति पूरी तरह उभर कर ऊपर आ गई है। वस्तुतः इस बार तो उन्होंने अपने ही पहले के करतबों तक को पीछे छोड़ दिया है और एक दुर्द्धर्ष साहस और अस्तित्वरक्षा के क्रोधोन्मत्त दृढ़निश्चय के साथ ऐसा जवाबी आक्रमण वे कर रही हैं, जिसने उनके राजनीतिक विरोधियों को सन्न कर डाला है।

इलाहाबाद के फैसले की खबर दिल्ली में प्रातः 10.15 पर पहुंचती है। उसी दिन संध्या को आठ बजे तक श्रीमती गांधी इस निश्चय पर पहुंच जाती हैं कि चाहे कुछ भी हो उन्हें अपने पद पर डटे रहना है। इसके बाद तो पीछे मुड़कर देखना नहीं है। पासा फेंका जा चुका है। उनका भीतरी गुट बैठता है और रात में बहुत देर तक उन विभिन्न सम्भावनाओं पर विचार करता है जो डटे रहने के निर्णय में से पैदा होती हैं।

इस स्तर पर उनके सलाहकारों में प्रमुख हैं : पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री सिद्धार्थशंकर राय और बम्बई प्रदेश कांग्रेस के प्रमुख रजनी पटेल। पूरी तरह से नई युद्धनीति बनाई जाती है। इस साहसिक षड्यंत्र की मूल बात है देश में आंतरिक आपात स्थिति का लागू किया जाना। यह विचार सिद्धार्थशंकर राय के उपजाऊ मस्तिष्क में पैदा हुआ था और रजनी पटेल ने इसका पूरी तरह समर्थन किया था।

इस समय तक कानून मंत्री श्री एच० आर० गोखले को इस गम्भीर निर्णय के बारे में पूरी तरह अंधेरे में रखा गया। बाद में यह भी समाचार मिला कि श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस उलझन भरी स्थिति से उबरने के ऐसे आसान तरीके अर्थात् आंतरिक आपात स्थिति लागू करने की सम्भावना को खोज निकालने में विफल रहने के लिए श्री गोखले की भर्त्सना भी की थी क्योंकि विधिमंत्री होने के नाते यह काम तो उन्हीं का था। वस्तुतः प्रधानमंत्री के इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण एक-पक्षीय निर्णय के बारे में पूरे मंत्रिमंडल को ही कोई ज्ञान नहीं था।

प्रधानमंत्री का नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग स्थित बंगला एक घिरे हुए किले का

रूप ग्रहण कर लेता है। फौलादी पाइपों के दुहरे अवरोध पास के विशाल गोल चक्कर के चारों ओर लगा दिए जाते हैं। यही चक्कर जन-प्रदर्शनों का स्थल था। केंद्रीय रिज़र्व पुलिस, हरियाणा और दिल्ली की सशस्त्र पुलिस के लोगों के साथ-साथ सैकड़ों सफेदपोश पुलिस वाले भी इस पूरे क्षेत्र में बिखरा दिए गए। वे नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग की ओर जाने वाले हर मार्ग और हर चौराहे पर पहरा देने लगे। नेहरू ब्रिगेड के द्वारा उपहार में दिया गया श्रीमती गांधी का एक आदमकद चित्र इस दृश्य का निरीक्षण कर रहा था।

समाचारपत्रों में यह भी छपा था कि इलाहाबाद के फैसले की घोषणा से एक घंटा पहले दिल्ली की पुलिस के सभी सर्वोच्च अधिकारी प्रधानमंत्री निवास पर इकट्ठे हुए थे। कारण यह कि दिल्ली में इस बात का पहले ही आभास हो गया था कि फैसला श्रीमती गांधी के विरुद्ध होगा। इस फैसले पर सार्वजनिक प्रतिक्रिया क्या होगी यह सोचने का कठिन कार्य इन अधिकारियों के सामने था और ऐसी किसी परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए एक कार्यक्रम उन्हें तैयार करना था। असल में पिछली रात में ही पुलिस को सचेत कर दिया गया था और बाज़ारों, सार्वजनिक चौक-चौराहों और अन्य नाजुक जगहों पर पुलिस-दल तैनात कर दिए गए थे।

उसी संध्या को संसद के कांग्रेस-सदस्य मोटरों का एक जुलूस बनाकर प्रधानमंत्री निवास पर जाते हैं और अपनी नेता श्रीमती गांधी के प्रति अपनी संगठित शक्ति और वफादारी का प्रदर्शन करते हैं। उसी संध्या को श्रीमती गांधी न्यायमूर्ति सिन्हा द्वारा प्रदान किए गए बीस दिन के स्थगन आदेश के आधार पर अपने पद पर बने रहने का निर्णय घोषित करती हैं। तत्काल ही कांग्रेस संसदीय बोर्ड इस फैसले का समर्थन कर देता है।

अब मोर्चाबंदी हो चुकी है। इलाहाबाद के फैसले के एक दिन बाद जयप्रकाश नारायण पटना में गरज उठते हैं, "उच्चतम न्यायालय के फैसले के सामने श्रीमती गांधी का न झुकना न सिर्फ इलाहाबाद उच्च-न्यायालय द्वारा सम्मत कानून के विरुद्ध है, बल्कि वह सभी सार्वजनिक मर्यादाओं एवं लोकतंत्रीय आचारों के भी विपरीत है।" उसी रात को विरोधी दल के नेता राष्ट्रपति भवन के बाहर एक धरना शुरू करते हैं और मांग करते हैं कि श्रीमती गांधी प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दें। राष्ट्रपति काशमीर गए हैं। धरना 16 जून तक चलता रहता है। राष्ट्रपति राजधानी में वापिस आते हैं। वे सत्याग्रहियों से मिलते हैं और उनकी मांग सुनते हैं, पर जवाब में कुछ विशेष कहने के लिए उनके पास नहीं है।

कांग्रेस के प्रचार यंत्र पूरे ज़ोर-शोर से काम में जुट जाते हैं। ट्रक भर-भरकर लाए गए किराये के लोग प्रधानमंत्री के घर के सामने उनके प्रति 'जनसमर्थन' का

प्रदर्शन करते हैं। लोग उनकी ओर हार फेंकते हैं और बहुत कुछ असंगत रूप में गाते हैं, "लाठी-गोली खायेंगे; पर आपको बचायेंगे।"

14 जून को अपने निवास के सामने एक सभा के समक्ष बोलते हुए श्रीमती गांधी घोषणा करती हैं, "यह भुला नहीं दिया जाना चाहिए कि चुनौतियों का ठंडे दिमाग से मुकावला करने की मुझे आदत है।" विरोधी दलों द्वारा उन पर प्रक्षिप्त, "अपमानों एवं दोषारोपों" का हवाला देते हुए वे घोषणा करती हैं कि विरोधी दल "मुझे खत्म कर डालना चाहते हैं", लेकिन "मैंने कभी इस बात की परवाह नहीं की है।" वे कहती हैं कि उनकी शक्ति उन्हें जनता से प्राप्त होती है।

15 जून को अखबारों में एक समाचार छपता है जो इस प्रकार है, "आधिकारिक रूप से पता लगा है कि श्रीमती गांधी तब तक अपने पद पर बनी रहेंगी जब तक उच्चतम न्यायालय उनकी अपील पर अंतिम निर्णय नहीं दे देता।" अब क्योंकि श्रीमती गांधी पक्का फैसला कर चुकी हैं इसलिए वे शांत और स्थिर प्रतीत होती हैं।

लगभग सभी समाचारपत्र श्रीमती गांधी को सलाह देते हैं कि वे अदालत के फैसले को मानकर इस्तीफा दे दें। विरोधी दलों ने पहले ही इसके लिए आंदोलन शुरू कर दिया है।

कांग्रेस संसदीय दल की बैठक बहुत जल्दबाज़ी में 18 जून को आयोजित की जाती है। इसमें 494 में से 450 सदस्य भाग लेते हैं। ये एक प्रस्ताव स्वीकार करते हैं, जिसके अनुसार श्रीमती गांधी में, "पूर्णतम विश्वास" की पुष्टि की जाती है और यह घोषणा की जाती है कि प्रधानमंत्री के रूप में उनका अविच्छिन्न नेतृत्व "राष्ट्र के लिए अपरिहार्य है।" इस प्रस्ताव को श्री जगजीवनराम पेश करते हैं और श्री यशवंतराव चह्वाण इसका अनुमोदन करते हैं।

कांग्रेस अध्यक्ष बरुआ घोषणा करते हैं "यह फैसला किसी भी रूप में प्रधानमंत्री की नैतिक सत्ता को कम नहीं करता" और यह भी कि लोगों की "दृढ़ इच्छा उनके पद पर बने रहने को संगति प्रदान करती है।" "हमने एक लड़ाई हारी है; हमें अब महायुद्ध जीतने की तैयारी करनी चाहिए।"—यह है लड़ाई का वह नारा जो कांग्रेस अध्यक्ष अपने दल के लोगों को और साथ ही आम जनता को देते हैं और दल एवं जनता, इन दोनों के बीच का फर्क तेज़ी से मिटता जा रहा है, क्योंकि इन्दिरा ही भारत का रूप ग्रहण कर रही हैं।

इसी बैठक में कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकांत बरुआ ने यह प्रसिद्ध उक्ति गढ़ी थी, "भारत ही इन्दिरा है और इन्दिरा ही भारत है।" इस बैठक को सम्बोधित करते हुए श्रीमती गांधी घोषणा करती हैं, "मेरा पद पर बने रहना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि विरोधी दल क्या चाहते हैं, बल्कि इस पर करता है कि मेरा अपना दल और आम जनता क्या चाहती है।"

जयप्रकाश जवाब में कहते हैं, "मुद्दा यह नहीं है कि कांग्रेस के संसद्-सदस्य श्रीमती गांधी के नेतृत्व में विश्वास रखते हैं या नहीं बल्कि यह है कि क्या देश में कानून का शासन है? क्या वह ऊंचे अथवा नीचे सब पर एक समान लागू होता है?" लड़ाई की गति बढ़ती जाती है।

अब कांग्रेस दल अपने आंदोलन के सबसे विराट् धमाके की, इतिहास में अब तक के सबसे विशाल प्रदर्शन की, एक इन्दिरा-समर्थक भव्य महासभा की, एक अखिल भारतीय वृहद् रैली की तैयारी में लग जाता है। इसे 20 जून को नई दिल्ली में किया जाना है और इसका उद्देश्य है संसार को और विरोधी दलों को अपनी शक्ति प्रदर्शित करना।

उन्हें आशा है कि इस रैली में देश के सभी हिस्सों से कम से कम दस लाख व्यक्ति राजधानी में एकत्र होंगे और श्रीमती गांधी के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करेंगे। विरोधी दल झींकते हैं कि इस तमाशे पर देश का एक करोड़ से कम रुपया खर्च नहीं होगा।

बीस जून को राजधानी की सभी सड़कें बोट क्लब की ओर जाने वाले लोगों से भरी हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण भारत से आने वाली 'इन्दिरा स्पेशलें' दिल्ली पहुंच रही हैं। सिर्फ पंजाब से ही, नारे लगाते और छुट्टी के माहौल में शोर मचाते (पूरी तरह मुफ्त सैर के लिए निकले) स्त्री-पुरुषों से भरी एक हज़ार बसें यहां पहुंचीं। लोग ट्रैक्टरों, निजी कारों, सार्वजनिक बसों और ट्रकों में आए। भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए सीमा सुरक्षा दल की एक दर्जन बटालियनें लाई गईं और केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस के जवानों को हर कहीं तैनात किया गया।

12 फुट ऊंचा एक विशेष मंच बनाया गया, जिसे श्रीमती गांधी के चित्रों वाले पोस्टरों से सजाया गया था। कहा जाता है कि उपराज्यपाल किशनचन्द ने व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहकर प्रबन्ध का निरीक्षण किया था। दिल्ली प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों का एक दल वहां चौबीस घंटे तैनात रहा था, जिससे कि रैली को विराट् रूप में सफल बनाया जा सके। पूरे सरकारी यन्त्र को रैली के संगठन के लिए इस्तेमाल किया गया था। संजय गांधी प्रबन्ध का निरीक्षण करने के लिए आते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। यह देखकर संगठनकर्ता खुशी से झूम उठते हैं।

जब श्रीमती गांधी माइक के सामने पहुंचती हैं तो भीड़ गगनभेदी नारों से अभिवादन करती है और ज़िंदाबाद चिल्लाती है। श्रीमती गांधी बड़े ही संतोष के साथ अपने सामने फैले मानवता के विराट् सागर का सर्वेक्षण करती हैं। (दल के व्यवस्थापक इस भीड़ को पन्द्रह लाख से ऊपर कूतते हैं।) अपने भाषण में वे एक बार फिर विरोधी दलों द्वारा चलाए जा रहे "गाली-गलौज भरे निन्दा आंदोलन" का ज़िक्र करती हैं और अपना यह आरोप दुहराती हैं कि "उन्हें हटा देने के लिए

आंदोलन" किया जा रहा है और "देश के भीतर भी और बाहर भी कुछ शक्तिशाली तत्व एक षड्यंत्र रच रहे हैं।" बड़ी ताकतें उनका तख्ता उलट देने के लिए और उन्हें नष्ट कर डालने के लिए कोशिश कर रही हैं। वे आगे कहती हैं कि "इन विरोधी दलों" को समाचारपत्रों का समर्थन प्राप्त है और "तथ्यों को बिगाड़ने और सफेद झूठ फैलाने की इन्हें अनोखी आज़ादी है।" अब अपनी आवाज़ को नाटकीय ढंग से ऊंचा करते हुए वे जोश के साथ बोलती हैं, "सवाल यह नहीं है कि मैं जीवित रहती हूं या मर जाती हूं; सवाल राष्ट्र के हित का है।"

एक कांग्रेस सचिव ने रैली की राष्ट्रीय प्रकृति पर बहुत ज़ोर दिया। वे कहती हैं, "काशमीर से लेकर केरल तक, और आसाम से लेकर पंजाब तक के लोग हज़ारों मीलों का सफर करके अपनी प्रिय नेता श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करने के लिए यहां आए हैं।" एक अखबार का संवाददाता अपनी रपट में दावा करता है कि स्त्रियों के एक ऐसे दल में, जिन्हें आसाम से आया बताया गया और जो तिनकों के कोनदार टोप पहने हुए थीं, कुछ स्थानीय चेहरे साफ दीख पड़ रहे थे।

दिल्ली दूरदर्शन ने रैली का पच्चीस मिनट लम्बा सीधा प्रसारण प्रस्तुत किया। इलाहाबाद के फैसले के बाद के दस दिनों के दौरान दिल्ली दूरदर्शन ने इन्दिरा-समर्थक प्रदर्शनों पर 21000 फुट लम्बी फिल्में खीचीं। (100 फुट लम्बी फिल्म पर 33 रुपया खर्च आता है।)

इसी बीच 23 जून को श्रीमती गांधी ने अवकाशकालीन न्यायाधीश, न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर के सामने पूर्णस्थगन के आदेश के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया, ताकि जब तक उच्चतम न्यायालय उनकी अपील पर फैसला दे तब तक वे प्रधानमंत्री पद को और संसद् में अपने स्थान को सुरक्षित रख सकें। न्यायमूर्ति अय्यर ने अगले ही दिन अपने निर्देशों की घोषणा कर दी। निर्देशों के अनुसार श्रीमती गांधी को सशर्त स्थगन ही मिल पाया। उन्हें अनुमति दी गई कि वे अपने प्रधानमन्त्रित्व को बरकरार रखें और इस रूप में संसद् को भी सम्बोधित करती रहें; पर वे संसत्सदस्य के रूप में न मत देंगी और न ही सदस्यता का वेतन प्राप्त करेंगी। इन आदेशों ने उनकी स्थिति में सुधार लाने के बदले उसे और बिगाड़ दिया तथा उसे और अधिक अपमानजनक बना दिया।

न्यायमूर्ति अय्यर कहते हैं, "मैं तत्वत: उन्हीं आधारों पर स्थगन का निर्देश देना चाहता हूं जिन पर समान मामलों में पहले भी स्थगन-निर्देश दिया जा चुका है। हां, प्रस्तुत मामले की बाध्यताओं का अन्तर ज़रूर पड़ेगा।" पहले वे उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकृत पूर्णस्थगन को ही और लम्बा करना चाहते थे। लेकिन अधिक विस्तृत चिंतन के बाद इस मार्ग को अपनाने में वे हिचकिचाए, क्योंकि "उच्चतम न्यायालय का निर्णय, अन्तत: वह कितना ही लचर क्यों न साबित

हो, तब तक प्रभावी रहता है जब तक कि उसे बदल ही न दिया जाए।" अपील का निपटारा चूंकि दो या तीन महीनों के भीतर हो जाने की सम्भावना थी, इसलिए उसी टोली को बरकरार रखना लाभप्रद था जो मंत्रिमंडल के केंद्रीय व्यक्तित्व की उपस्थिति से अनुप्राणित थी। इससे अन्य आदेश का अर्थ श्रीमती गांधी के लिए दारुण परिणाम पैदा करना होता, क्योंकि भले ही उच्चतम न्यायालय अन्त में उन्हें बरी कर दे किन्तु राजनीति में "आवश्यक नहीं होता कि खोई हुई सत्ता कानूनी विजय के बाद पुनः प्राप्त हो ही जाए।"

उस संध्या को कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़ सभी विरोधी दलों के नेताओं ने एक सात सूत्री कार्यक्रम की घोषणा की। इसमें यह शामिल था कि विरोधी दल के संसत्सदस्य राष्ट्रपति से मिलें और प्रधान मन्त्री के त्यागपत्र की मांग करें। 15 जून से 22 जून तक 'त्यागपत्र मांग सप्ताह' मनाने की भी घोषणा की गई।

2

लक्ष्मण-रेखा पार कर ली गई

25 जून की संध्या को जब श्रीमती गांधी का आंतरिक गुट नम्बर 1 सफदर जंग मार्ग में बैठकर देश पर कठोर आपात स्थिति लागू करने का षड्यंत्र रच रहा था, उस समय श्री जयप्रकाश नारायण रामलीला मैदान में एक विराट् ऐतिहासिक सभा के सामने भाषण दे रहे थे।

श्री जयप्रकाश नारायण ने राजधानी में और देश के अन्य नगरों में एक सविनय अवज्ञा कार्यक्रम की घोषणा जनता के सामने की। पुलिस और सेना के प्रति अपने इस संदेश को उन्होंने दुहराया कि वे गैरकानूनी आदेशों का पालन न करें। उन्होंने छात्रों से अनुरोध किया कि वे, "कक्षाओं से निकल आयें और जेलों को भर दें।"

उन्होंने भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री ए० एन० राय को सुझाव दिया कि श्रीमती गांधी की अपील की सुनवाई के लिए गठित उच्चतम न्यायालय के खण्ड-पीठ में सम्मिलित होना उनके व्यक्तिगत हित में नहीं होगा क्योंकि वे अपनी नियुक्ति के लिए प्रधानमंत्री के अहसानमंद हैं।

उन्होंने कहा कि जनता को यह बात जाननी चाहिए कि अदालत में अपनी गवाही के दौरान श्रीमती गांधी ने कम से कम 27 झूठ बोले, अर्थात् हर 15 मिनट बाद एक झूठ बोला।

उन्होंने मांग की कि पुलिस के पुनर्गठन की सिफारिश करने वाली खोसला समिति की रिपोर्ट को लागू किया जाए।

उन्होंने कहा कि यदि श्रीमती गांधी महसूस करती हैं कि मैं उनके विरुद्ध राज-द्रोह का उपदेश दे रहा हूं तो उन्हें आज़ादी है कि वे मुझ पर राजद्रोह के आरोप लगायें और मुकदमा चलायें।

श्री जयप्रकाश ने घोषणा की, "यह भारत है। यहां कोई मुजीब पनप नहीं सकता (यह संकेत बंगला देश में मुजीब की उस कार्यवाही की ओर था जिसके अनुसार उन्होंने संविधान को बदलकर संसदीय प्रणाली के स्थान पर राष्ट्रपतिक प्रणाली और एकदलीय शासन लागू कर दिया था।) श्री जयप्रकाश ने कहा कि भारत में ऐसे लोगों को सहन नहीं किया जाएगा।

इसी बीच जब अंधेरा घिर रहा था, लगभग 8.30 बजे श्री सिद्धार्थशंकर राय के साथ श्रीमती गांधी राष्ट्रपति भवन गईं और अनौपचारिक रूप से

राष्ट्रपति को बताया कि उन्होंने आंतरिक आपातस्थिति लागू करने का महत्त्वपूण फैसला ले लिया है। इस असाधारण कदम के बारे में श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने कुछ कहा या नहीं, यह अभी तक पता नहीं लगा है।

लगभग 11 बजे गृहमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी को प्रधानमंत्री निवास पर बुलाया गया और उन्हें इस निर्णय के बारे में बताया गया। आधे घंटे बाद एक विशेष उच्चाधिकार-प्राप्त संदेशवाहक दस्तावेज़ लेकर हस्ताक्षर के लिए राष्ट्रपति के पास गया। क्योंकि उन्हें पहले ही सूचित कर दिया गया था, इसलिए श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने उस पर सहज रूप में हस्ताक्षर कर दिए। विशेष बात यह है कि इस घोषणा पत्र पर कोई तिथि नहीं पड़ी है।

अंतरंग विश्वासभाजन श्री ओम मेहता को छोड़कर किसी भी अन्य मंत्री को उस रात इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

पहले यह घोषणा की गई थी कि प्रधानमंत्री 23 जून को राष्ट्र के प्रति संदेश देंगी, पर बाद में इस कार्यक्रम को रद्द कर दिया गया। इस बात को लेकर उस तनावपूर्ण वातावरण में कितने ही उत्तेजनापूर्ण अनुमान लगाए गए। आखिर राष्ट्र से वे क्या कहना चाहती थीं ? अंतिम क्षण पर उन्होंने अपना विचार क्यों बदल दिया ?

श्रीमती गांधी के समर्थन में संगठित अनेकों रैलियों में से एक के सामने बोलते हुए प्रधान मंत्री ने यह अनिष्टसूचक घोषणा की थी, "हमने बहुत काफी सहन किया है। कोई सरकार ऐसी बातों को सहन नहीं करेगी। (विदेशी मित्रों में) प्रत्येक मुझसे पूछता है—आप यह सब बर्दाश्त क्यों करती हैं ? अब हम यह सब बिलकुल बर्दाश्त नहीं करेंगे।"

विरोधी दल और आम जनता सभी ने इस वक्तव्य को बहुत अर्थपूर्ण माना। इसके कुछ ही दिन बाद आपातस्थिति लागू कर दी गई।

अगली सुबह 6 बजे मंत्रिमण्डल की बैठक की गई और देश में आपातस्थिति की घोषणा के बारे में मंत्रियों को बताया गया। इससे बहुत पहले आधी रात से ही, और कुछ मामलों में उससे भी पहले से, विरोधी नेताओं को गिरफ्तार करना आरम्भ कर दिया गया था। श्री जयप्रकाश नारायण और श्री मोरारजी देसाई को रात में 3 बजे सोते से जगाया गया। 26 जून को दिन में बहुत बाद तक गिरफ्तारियां चलती रहीं।

प्रातः पांच बजे मंत्रियों के घरों में टेलीफोन की घंटियां बजीं और उन्हें बिस्तर छोड़कर 6 बजे मंत्रिमण्डल की बैठक में आने के आदेश दिए गए। डाक्टर कर्णसिंह बैठक में देर से पहुंचे। उनके शयनकक्ष में टेलीफोन नहीं था, इसलिए सूचना उन्हें तत्काल नहीं मिल सकी थी।

प्रधानमंत्री निवास की ओर जाते हुए मंत्रिगण, इतनी जल्दबाजी में की गई

इस बैठक के कारणों के बारे में व्यग्र अनुमान लगा रहे थे। कुछ ने सोचा कि शायद इस बैठक का सम्बन्ध जयप्रकाश नारायण द्वारा पिछली संध्या को रामलीला मैदान की सभा में दी गई धमकी के जवाबी उपाय सोचने से है। धमकी यह थी कि इलाहाबाद के फैसले के बाद विरोधी दलों द्वारा प्रधानमंत्री के इस्तीफे की मांग को बल देने के लिए उनके निवास का घेराव किया जाएगा।

मन्त्रिमण्डल की बैठक कुल 15 मिनट में समाप्त हो गई। प्रधानमंत्री का चेहरा गम्भीर और तनावपूर्ण था और उन्होंने संक्षेप में घोषणा की कि राष्ट्रपति द्वारा उसी रात हस्ताक्षर कर देने के बाद आपातस्थिति लागू कर दी गई है। उन्होंने कहा कि हालात हाथ से निकलते जा रहे थे और आपातस्थिति की घोषणा अनिवार्य थी। तब उन्होंने गृहसचिव खुराना से कहा कि वे घोषणापत्र को पढ़कर सुना दें और गृहराज्यमंत्री ओम मेहता पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालें।

वहां एकत्र मन्त्रीगण को इससे गहरा धक्का लगा। किसी के मुंह से भी आवाज़ नहीं निकली। विरोध करना तो दूर, किसी ने प्रश्न तक नहीं पूछा। कुछ मिनट बाद श्री स्वर्ण सिंह ने अपना होश संभाला और कुछ स्पष्टीकरण चाहे। बाह्य आपातस्थिति का विधान पहले ही है। क्या सरकार उसके अधीन इच्छित कदम नहीं उठा सकती थी? क्या इस एक और आपातस्थिति की घोषणा की ज़रूरत थी? प्रधानमंत्री इन प्रतिबन्धों को कितनी देर तक लागू रखना चाहती हैं?

प्रधानमंत्री ने सख्त आवाज़ में श्री स्वर्ण सिंह का ध्यान पिछली संध्या के श्री जयप्रकाश नारायण के भाषण की ओर आकर्षित किया, जिसमें उनके निवास का घेराव करने की धमकी दी गई थी। श्रीमती गांधी ने मंत्रिमण्डल को यह भी बताया कि देश में कठोर सेंसर लागू किया जाएगा।

जब मन्त्रिमण्डल की बैठक चल रही थी तो संजय गांधी सुरक्षा अधिकारियों के साथ कक्ष के बाहर चहलकदमी कर रहे थे, जैसे कि मंत्रिमण्डल की बैठक में मंत्रियों के व्यवहार पर नज़र रख रहे हों।

बताया गया है कि उस रात लगभग 400 वारण्टों पर हस्ताक्षर किए गए। आपातस्थिति के घोषणा पत्र पर क्योंकि पिछली संध्या को 8.30 पर हस्ताक्षर हो गए थे इसलिए इस विशाल देश भर में विरोधी नेताओं की गिरफ्तारी के आदेश जल्दी से जल्दी 10 बजे तक भेजे जा सके थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से स्थापित हो चुका है कि आपातस्थिति के घोषणा पत्र पर मंत्रिमण्डल की सहमति से पहले ही राष्ट्रपति हस्ताक्षर कर चुके थे और इस प्रकार संविधान की धारा 74 को भंग किया गया था। इस दृष्टि से यह घोषणा गैरकानूनी और असंवैधानिक थी।

चुनावों में अपनी हार और अपने दल की पूर्ण पराजय के बाद श्रीमती गांधी

ने यह तर्क दिया कि उन्होंने मंत्रिमण्डल से पहले ही परामर्श इसलिए नहीं किया था क्योंकि वे इस निर्णय को गुप्त रखना चाहती थीं। इस तर्क से मंत्रिमण्डल के अपने साथियों के प्रति उनकी अवज्ञा और निश्चित संवैधानिक कार्यविधि के प्रति उनकी अल्प सम्मान-भावना ही व्यक्त होती है।

अब उनके दल के जनसम्पर्क प्रबन्धकों ने अपना दिमाग इस बात पर केन्द्रित किया कि ऐसा अनुकूल वातावरण निर्मित किया जाए जिसमें श्रीमती गांधी कानून अथवा संविधान अथवा राजनीतिक विरोध, किसी भी दिशा से किसी भी बाधा अथवा विघ्न से निश्चिन्त होकर देश का शासन चला सकें। इलाहाबाद के फैसले के फौरन बाद प्रचार का जो आधार निश्चित किया गया था उसे ही जनता की रैलियों के और सभी प्रचार माध्यमों के द्वारा बृहद रूप में और पद्धतिबद्ध ढंग से प्रसार दिया गया।

आकाशवाणी और दूरदर्शन को कोलाहलपूर्वक एक व्यक्ति की पूजा का साधन बना दिया गया और श्रीमती गांधी (जिन्हें अब से आकाशवाणी और दूरदर्शन पर मात्र 'प्रधानमंत्री' के स्थान पर 'हमारी प्रधानमंत्री' कहा जाने लगा) को भारत को मुक्ति दिलाने वाली कहा जाने लगा—मुक्ति उस अराजकता से जिसमें श्री जयप्रकाश नारायण और उनके सहयोगी देश को झोंकना चाहते थे। शीघ्र ही समाचार एजेंसी को भी इस काम में जोत दिया गया।

प्रचार के हर माध्यम द्वारा जिस मंत्र को बार-बार दोहराया जाने लगा, वह था—देश के सामने उपस्थित इस अभूतपूर्व संकट के समय श्रीमती गांधी उसके लिए अपरिहार्य हैं और वही हैं जो इस वर्तमान संकट में से देश को निकाल सकती हैं। संवैधानिक और कानूनी पाबंदियों से मुक्त अब वे ही देश को तेज़ी से समाजवाद, सामाजिक न्याय और आर्थिक प्रगति की ओर ले जाने में समर्थ हैं।

इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए एक बहुत ही ज़ोरदार जनवादी कार्यक्रम लागू किया गया। प्रातः से संध्या तक प्रधानमंत्री निवास की ओर जाते रहने वाले, नारे लगाते, शानदार जुलूसों के अतिरिक्त नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग पर और राजधानी में सब कहीं सार्वजनिक रैलियों के सिलसिले हर दिन की बात हो गए। कार्यक्रम में रोटी और सरकस दोनों ही शामिल किए जाने लगे।

नगर के सभी भागों से तथा गुड़गांव, सोनीपत एवं उत्तर प्रदेश और हरियाणा के अन्य पड़ोसी नगरों से लोगों की भीड़ों को लाने के लिए दिल्ली परिवहन की बसों को लगाया गया। लोगों को दो घंटे के लिए प्रति व्यक्ति पांच या दस रुपये के हिसाब से इकट्ठा किया गया। टैक्सी-चालकों को प्रेरित किया गया कि वे अपनी टंकियों में पेट्रोल भरें और रैलियों के लिए लोगों को लाकर चालीस से पचास रुपये दैनिक कमाएं। हिसाब लगाया गया है कि इस प्रयोजन के लिए बसें देकर दिल्ली परिवहन ने चार लाख का घाटा उठाया था।

इन प्रदर्शनकारियों ने प्रधानमन्त्री के प्रति जनता के पक्के समर्थन के गीत चीख चीखकर गाए और उनमें देश की निहित आस्था को वाणी दी और उनसे प्रार्थना की कि वे प्रधानमंत्री के पद पर बनी रहें। उन्होंने शोर मचाकर दावा किया कि जनता उच्चतम न्यायालय से कहीं ऊंची है और इसलिए उच्चतम न्यायालय को जनता की इच्छाओं की उपेक्षा करने का साहस नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मज़दूरों, किसानों, वकीलों, अध्यापकों, लेखकों, ट्रक-चालकों, टैक्सी चालकों, स्कूटर चालकों और विद्यार्थियों के संगठित समूह नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग गए और उन्होंने श्रीमती गांधी को प्रेरित किया कि वे डटी रहें और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे सब उनके पीछे हैं।

इन रैलियों के स्थलों पर, चाहे वह नम्बर 1, सफदरजंग मार्ग हो या बोट क्लब मैदान या रामलीला मैदान, बर्फ का ठंडा पानी प्यासों को और छोले-पूड़ी भूखों को बांटी जाती थी। आइसक्रीम वेचने वालों को भीड़ के बीच घूमने की पूरी आज़ादी थी। पुलिस चारों ओर घेरा डाले रहती थी और देखती रहती थी सब कुछ अनुशासन में चल रहा है। वस्तुतः, एक संगठित विशाल पिकनिक का वातावरण ऐसी जगहों पर रहता था।

ऐसी ही एक रैली में न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा का पुतला जलाया गया। नगर में पोस्टर लगाए गए, जिनमें कहा गया था कि न्यायाधीश महोदय और सी० आई० ए० के बीच सांठ-गांठ है। जब आंख से देखने वाले संवाददाताओं ने यह सब बताया तो श्रीमती गांधी ने ज़ोरदार शब्दों में इससे इन्कार किया।

26 जून का दिन प्रधानमंत्री के लिए एक व्यस्त दिन था। प्रातः छः बजे मन्त्रिमंडल की बैठक के बाद आठ बजे उन्हें आकाशवाणी पर राष्ट्र के नाम सन्देश देना था।

उन्होंने अपना सन्देश इस आश्वासन के साथ शुरू किया: "राष्ट्रपति ने आपातस्थिति की घोषणा कर दी है। इसमें आतंकित होने की कोई बात नहीं है।" तब उन्होंने उस "गहरे और व्यापक षड्यंत्र" की ओर संकेत किया जो तभी से पनप रहा था जब से उन्होंने "भारत के सामान्य स्त्री-पुरुषों की भलाई के लिए कुछ प्रगतिशील कानून लागू करने शुरू किए थे।"

आपातस्थिति की घोषणा को संगत ठहराने के लिए जो कारण उन्होंने दिए उनमें से कुछ इस प्रकार थे: "लोकतन्त्र के नाम पर लोकतांत्रिक गतिविधियों को ही समाप्त करने की पेशकश की गई है। विधिपूर्वक चुनी गई सरकारों को काम करने नहीं दिया गया है और कुछ मामलों में तो कानूनी ढंग से निर्वाचित विधान सभाओं को भंग कराने के उद्देश्य से सदस्यों को इस्तीफे के लिए बलपूर्वक मजबूर किया गया है। आन्दोलनों से वातावरण में ऐसी उत्तेजना फैल गई है कि हिंसक

घटनाएं घट रही हैं। मन्त्रिमंडल में मेरे सहयोगी श्री एल०एन० मिश्र की क्रूर हत्या से पूरे देश को गहरा धक्का लगा है। हम भारत के मुख्य न्यायाधीश पर कायरतापूर्ण हमले की भी कठोर निन्दा करते हैं। कुछ लोग तो हमारी सशस्त्र सेनाओं को विद्रोह के लिए और पुलिस को बगावत के लिए उकसाने की सीमा तक आगे बढ़ गए हैं। यह तथ्य है कि हमारी सुरक्षा सेनाएं और पुलिस दल अनुशासित एवं अत्यन्त देशभक्त हैं और वे उकसाने में नहीं आयेंगे, फिर भी इससे इन उत्तेजनात्मक कार्यवाहियों की गम्भीरता कम नहीं होती। विघटनकारी तत्व अपने पूरे ज़ोर पर हैं। साम्प्रदायिक भावनाएं भड़काई जा रही हैं और इससे हमारी एकता खतरे में पड़ गई है।"

इसके बाद श्रीमती गांधी ने उनके विरुद्ध लगाए गए "झूठे आरोपों" 'का हवाला दिया और कहा, "मैं प्रधानमन्त्री रहती हूं या नहीं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन प्रधानमन्त्री की संस्था का महत्त्व है और इसे बदनाम करने के, जानते-बूझते, जो राजनीतिक प्रयत्न किए गए हैं वे लोकतन्त्र अथवा राष्ट्र, किसी के हित में नहीं हैं।"

उन्होंने कहा, "हमने बहुत लम्बे अरसे तक अधिकतम धैर्य के साथ इन गतिविधियों को सहन किया है।" (इस हम से 'शाही' हम की गन्ध आती है) "अब हमें सामान्य कार्यकलाप को अस्तव्यस्त करने के उद्देश्य से कानून और अनुशासन को चुनौती देने के एक नये कार्यक्रम का पता चला है। कोई भी सरकार, जिसमें ज़रा भी तत्व है, कैसे यह सब देखती रह सकती है और कैसे देश की स्थिरता को खतरे में पड़ने दे सकती है? थोड़े-से लोगों के काम विराट् बहुमत के अधिकारों को संकट में डाल रहे हैं। कोई भी स्थिति जो देश के भीतर निर्णायक ढंग से काम करने की राष्ट्रीय सरकार की क्षमता को कमज़ोर बनाती है, बाहरी खतरों को अनिवार्य रूप से प्रोत्साहित करती है। हमारा सर्वोच्च कर्तव्य है कि हम एकता और स्थिरता की रक्षा करें। राष्ट्र की अखंडता की मांग है कि सख्त कार्यवाही की जाए।"

अगले ही दिन श्रीमती गांधी ने दूसरा प्रसारण किया और इसमें एक बार फिर उन्होंने आपातस्थिति की घोषणा को संगत ठहराने के लिए कहा कि "हिंसा और घृणा का वातावरण" पैदा किया गया था, जिसके फलस्वरूप एक केबिनेट मन्त्री की हत्या की गई और भारत के मुख्य न्यायाधीश का जीवन लेने का प्रयास किया गया।

उन्होंने केन्द्रीय सरकार को पंगु बनाने के उद्देश्य से देश-भर में बन्ध, घेराव, आन्दोलन, तोड़-फोड़ के तथा औद्योगिक मज़दूरों, पुलिस एवं सुरक्षा-सेनाओं के सिपाहियों को भड़काने के प्रस्तावित कार्यक्रम का ज़िक्र किया। तब उन्होंने घोषणा की : "यह अच्छी तरह समझ लिया जाना चाहिए कि लोकतन्त्र में भी कुछ

सीमाएं होती हैं, जिन्हें लांघा नहीं जा सकता। हिंसात्मक कार्यवाही और अर्थ-हीन सत्याग्रह उस पूरे आकार को ही तोड़-फोड़ देंगे जो वर्षों के बीच अत्यन्त परिश्रमपूर्वक और अनेकों आशाओं के साथ निर्मित किया गया है।"

आगे उन्होंने देश पर सेंसर लागू किये जाने को संगत ठहराते हुए कहा, "आप जानते हैं कि समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता में मेरा सदा ही विश्वास रहा है और अब भी है। लेकिन अन्य सभी स्वतन्त्रताओं की तरह ही इसका इस्तेमाल भी ज़िम्मेदारी और संयम के साथ ही किया जाना चाहिए। आंतरिक गड़बड़ियों, की स्थिति में वे चाहे भाषाई दंगे रहे हों या साम्प्रदायिक, अनुत्तरदायी लेखन के माध्यम से गम्भीर शरारतें की गई हैं।

"हमें ऐसी स्थिति को रोकना ही था। कुछ अरसे से कुछ समाचारपत्र जान-बूझ कर खबरों को बिगाड़ते रहे हैं और निन्दापूर्ण एवं उत्तेजनात्मक टिप्पणियां लिखते हैं। हमारा उद्देश्य यह है कि शान्ति और स्थिरता की स्थिति लाई जाए। सेंसर लगाने का मतलब है फिर से विश्वास का वातावरण पैदा करना।"

एक पूर्ण सेंसरशिप ने और बड़ी संख्या में लोगों को जेलों में डाल दिए जाने ने ठीक जवाब देने के अवसर से विरोधी पक्ष को महरूम कर दिया। सभी प्रचार-यन्त्रों को, आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार एजेन्सी तथा सारे के सारे प्रेस को सरकारी आदेश से विरोधी पक्ष पर कीचड़ उछालने के काम पर लगा दिया गया। श्री जयप्रकाश नारायण ने जेल से लिखे एक पत्र में उनके और अन्य विरोधी नेताओं के ऊपर श्रीमती गांधी द्वारा लगाए गए आरोपों का उत्तर दिया था, लेकिन यह पत्र उन्नीस महीने बाद जनवरी 1977 में आम चुनावों की घोषणा तक और सेंसरशिप के उठाए जाने तक प्रकाशित नहीं हो पाया।

इस पत्र में उन्होंने कहा था कि श्रीमती गांधी के भाषणों और भेंट-वार्ताओं के जो विवरण पत्रों में छपे हैं, उनसे वे आतंकित हो उठे हैं। उन्होंने आगे कहा था : "यह तथ्य कि अपनी कार्यवाही को संगत ठहराने के लिए आपको हर दिन कुछ न कुछ कहना पड़ता है, इस बात का सूचक है कि आप में एक अपराध-चेतना काम कर रही है।"

पत्र में कहा गया था : "समाचारपत्रों का और हर प्रकार की सार्वजनिक असहमति का गला घोंटकर आप आलोचना अथवा विरोध के डर से मुक्त रह कर तथ्यों को विकृत करती और लगातार झूठ बोलती जा रही हैं। यदि आप सोचती हैं कि इस प्रकार आप जनता की दृष्टि में अपने को संगत सिद्ध कर सकेंगी और विरोधी दलों को राजनीतिक मूलोच्छेद की ओर धकेल सकेंगी तो आप गलती पर हैं।"

श्री जयप्रकाश नारायण ने इस आरोप से साफ इंकार किया कि सरकार को पंगु बनाने की कोई योजना थी। उन्होंने अपनी इस मान्यता को दुहराया कि

लोकतंत्र में जनता को यह अधिकार है कि यदि उनकी निर्वाचित सरकार भ्रष्ट हो जाए और कुशासन करने लगे तो वे उससे त्यागपत्र देने के लिए कहें। यदि कोई विधानमंडल ऐसी सरकार का समर्थन करते रहने की जिद करता है तो उसे भी भंग कर दिया जाना चाहिए, जिससे कि जनता अधिक अच्छे प्रतिनिधि चुन सके।"

उन्होंने कहा, जहां तक बिहार का सम्बन्ध है, पटना में हुई विराट् सभाएं और निकाले गए जलूस, पूरे राज्य में की गईं हज़ारों क्षेत्रीय सभाएं, तीन दिन का बिहार बन्ध, 4 नवम्बर की स्मरणीय घटनाएं तथा 18 नवम्बर को गांधी मैदान में हुई विराटतम सभा—ये सब बातें जनता की मर्ज़ी की ओर दृढ़ संकेत करती हैं।

श्री जयप्रकाश की मान्यता थी कि बिहार में सरकार को मौका दिया गया था कि वह बातचीत के द्वारा मामलों को तय कर ले। विद्यार्थियों की कोई भी मांग अनुचित अथवा समझौते से परे नहीं थी। "लेकिन बिहार सरकार ने संघर्ष के तरीके को, अर्थात् अप्रतिम दमन को, चुना। उत्तर प्रदेश में भी ऐसा ही हुआ। दोनों ही जगह सरकार ने बातचीत के और मेज़ पर बैठकर मुद्दों को तय कर लेने के रास्ते को रद्द कर दिया और संघर्ष के मार्ग को चुना।"

सर्वोदय नेता ने जोर देकर कहा, "बिहार को छोड़कर भारत के किसी भी अन्य राज्य में आंदोलन जैसी कोई भी चीज़ नहीं थी। अतः, सरकार को पंगु बनाने की जिस योजना की बात आप करती हैं, वह केवल आपकी कल्पना का करिश्मा है और इसे आपने अपने निरंकुश कार्यों को संगत ठहराने के लिए सोच निकाला है।"

उन्होंने कहा कि अगर कोई योजना थी भी तो वह एक साधारण, निर्दोष और कम अवधि की योजना थी, जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा आपकी अपील पर फैसला होने तक चलाया जाना था। इसी योजना की 25 जून को रामलीला मैदान में घोषणा की गई थी और उस संध्या के उनके भाषण का विषय भी यही था। कार्यक्रम यह था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रीमती गांधी की अपील पर फैसला दिए जाने तक के लिए वे पद से अलग रहें, और इस मांग के समर्थन में कुछ चुने हुए लोग उनके निवास के सामने या उसके निकट सत्याग्रह करें। कार्यक्रम था कि सात दिनों तक दिल्ली में ऐसा किया जाए और इसके बाद इसे राज्यों में चलाया जाए। 'मैं नहीं समझ पाता कि इसमें ध्वंसात्मक या खतरनाक क्या है। किसी भी लोकतन्त्र में सविनय अवज्ञा का पक्का अधिकार नागरिक को होता है। जब भी वह देखे कि शिकायत दूर करने अथवा सुधार लाने के अन्य माध्यम बन्द हो चुके हैं, वह ऐसा कर सकता है।"

श्री जयप्रकाश ने आगे कहा कि सत्याग्रह का यह कार्यक्रम विरोधी पक्ष को

सूझता ही नहीं, "यदि आपने अपने पद से चुपचाप चिपके रहने तक ही सन्तोष किया होता। लेकिन आपने ऐसा नहीं किया। अपने समर्थकों के द्वारा आपने अपने निवास के बाहर रैलियां और प्रदर्शन आयोजित कराए, जिनमें आपसे प्रार्थना की गई कि आप इस्तीफा न दें। आप इन जन-समूहों के सामने बोलीं और अपने पक्ष को संगत ठहराने के लिए आपने मिथ्या तर्क पेश किये और विरोधी पक्ष को लांछनों से लाद दिया। जब ऐसी निन्दनीय घटनाएं हर दिन होने लगीं तो इस शरारत का जवाब देने के सिवाय और कोई चारा विरोधी पक्ष के पास न रहा। और ऐसा किस ढंग से करने का फैसला उन्होंने किया ? गुंडागर्दी के द्वारा नहीं, बल्कि अनुशासित सत्याग्रह के द्वारा, आत्म-बलिदान के द्वारा।"

इस आरोप का जवाब देते हुए कि सशस्त्र सेनाओं में एवं पुलिस में विद्रोह के बीज बोने की कोशिश उन्होंने की, श्री जयप्रकाश ने कहा कि उन्होंने केवल यह किया था कि सेनाओं और पुलिस के सिपाहियों और अफसरों को उनके कर्तव्यों और ज़िम्मेदारियों के प्रति सचेत किया था। इस बारे में जो कुछ भी उन्होंने कहा था, वह कानून, संविधान, सेना-विधेयक और पुलिस-विधेयक के अन्तर्गत था।

पत्र को समाप्त करते हुए उन्होंने लिखा, "ऐसा लगता है, जब आपकी व्यक्तिगत स्थिति को खतरा होता है, तभी आप तेज़ी से और नाटकीय ढंग से काम कर पाती हैं। जैसे ही आपकी स्थिति निर्विघ्न होती है, आपका रुख पुन: बदल जाता है। इन्दिरा जी, कृपा करके अपने को राष्ट्र के साथ एकरूप मत करिए। आप अनश्वर नहीं हैं; भारत अनश्वर है।"

संघर्ष समिति ने कार्यवाही का जो कार्यक्रम सोचा था, उसमें यह शामिल था कि 27 जून से 7 जुलाई तक ज़िला, नगर, और राज्य स्तरों पर सब कहीं जनसभाएं की जाएं और प्रधानमन्त्री पद से श्रीमती गांधी के त्यागपत्र की मांग करते हुए प्रस्ताव पास किए जाए। 6 जुलाई को नेताओं को स्थिति का जायज़ा लेना था और अगले कदम के बारे में तय करना था। 25-26 जून को देश में आपातस्थिति लागू कर दी गई और विरोधी नेताओं को पकड़ लिया गया और इस प्रकार आंदोलन के प्रस्तावित कार्यक्रम के लिए शक्ति-संगठित करने का अवसर ही नहीं मिला।

यह बात ध्यान में रखने की है कि श्रीमती गांधी ने देश पर आपातस्थिति उस क्षण लागू की जब जयप्रकाश का आंदोलन मंद पड़ रहा था। असल में विरोधी पक्ष किसी भी संघर्ष के लिए तैयार नहीं था, यह तथ्य उस समय स्पष्ट उभरा जब 26 जून को सामूहिक गिरफ्तारियों के बाद लम्बे समय तक, तब तक, स्तब्धता रही जब तक कि छुपे हुए नेताओं ने एक-दूसरे से सम्पर्क नहीं कर लिया और थोड़ी-बहुत प्रभावशाली गतिविधि के लिए एक संगठन की शक्ल निर्मित नहीं कर ली।

सत्य यह है कि नेताओं ने यह सोचा भी नहीं था कि पूरे देश में विरोधी पक्ष के नेताओं की सामूहिक गिरफ्तारी जैसे चरम तरीके को श्रीमती गांधी अपनाएंगी और इसीलिए वृहद स्तर पर सविनय अवज्ञा आंदोलन के रूप में किसी भी जवाबी कार्यवाही के लिए उन्होंने अपने को अप्रस्तुत पाया।

असल में जिस दिन न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने श्रीमती गांधी के आवेदन पर अपना फैसला दिया उस 24 जून को कृष्ण मेनन मार्ग स्थित श्री मोरारजी देसाई के निवास पर विरोधी नेताओं की बैठक हुई थी। इसमें उन्होंने न्यायमूर्ति अय्यर के फैसले से पैदा होने वाली बातों का अध्ययन किया था और श्रीमती गांधी के पद-त्याग न करने की स्थिति में क्या कदम उठाए जाएं, यह तय किया था। सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, राजनारायण और लालकृष्ण अडवानी इस बैठक में थे। चारों दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले चालीस नेताओं ने इसमें भाग लिया था।

श्री जयप्रकाश को अगली सुबह दिल्ली से पटना जाना था। उनसे प्रार्थना की गई थी कि वे अपना जाना एक दिन के लिए स्थगित कर दें और अगले दिन दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा के सामने बोलें। जयप्रकाश ठहर जाने के लिए तैयार हो गए थे, बशर्ते कि नेताओं को यह विश्वास हो कि इतने थोड़े समय में वे एक सार्वजनिक सभा का आयोजन कर सकेंगे। नेताओं ने इसका जिम्मा लिया। तभी यह भी तय किया गया कि श्रीमती गांधी के निवास पर 29 जून से सत्याग्रह शुरू किया जाए। सत्याग्रहियों को नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग और नम्बर 1 अकबर रोड वाले गोल चक्कर पर इकट्ठा होना था, नारे लगाने थे और गिरफ्तार होना था। सत्याग्रह 15 दिन तक चलना था।

कार्यक्रम के विवरणों पर विचार करते हुए श्री जयप्रकाश ने उपस्थित नेताओं से यह आश्वासन चाहा था कि सत्याग्रह 15 दिनों तक जारी रखा जाएगा। जब नेताओं ने उन्हें आश्वासन दिया, तब जयप्रकाश ने मांग की, "मुझे आदमी दो! कौन सा दल कितने स्वयंसेवक देगा और कितने दिनों तक?"

बिना अधिक सोचे-विचारे और बिना कोई तैयारी किए चारों दलों के प्रतिनिधियों ने जो संख्याएं दीं वे 500 से 1000 स्वयंसेवकों के बीच कुछ भी मानी जा सकती थीं। इस आधार पर यह माना गया कि वे कुल मिलाकर पन्द्रह हजार से ऊपर स्वयसेवक देंगे। श्री जयप्रकाश बहुत ही सन्तुष्ट और खुश नज़र आए।

इस बैठक में उपस्थित एक व्यक्ति के अनुसार श्री जयप्रकाश के जाने के बाद नेता लोग आपस में झगड़ने लगे और श्री जयप्रकाश को अत्युक्तिपूर्ण संख्याएं देने का दोष एक दूसरे पर मढ़ने लगे। उन्होंने स्वीकार किया कि जितने स्वयंसेवक देने का वचन वे लोग दे बैठे हैं, उतने स्वयंसेवक उनमें से कोई भी जुटा नहीं पाएगा, क्योंकि अभी तो अपने अनुयायियों को उन्होंने संगठित तक नहीं किया

है। निराश स्वर में वे कह उठे कि जयप्रकाश जी के लिए इतने सारे स्वयंसेवक वे कहां से पैदा करेंगे। स्पष्ट था कि चारों दलों में से कोई भी एक वृहद्स्तरीय राजनीतिक संघर्ष के लिए न मन से तैयार था और न ही साधनों से।

यह भी स्पष्ट था कि श्रीमती गांधी के गुप्तचर विभागों, रॉ (RAW) और सी० आई० वी० ने उन्हें वता दिया था कि प्रधानमन्त्री निवास अथवा राष्ट्रपति भवन के वाहर धरना देने से अधिक सरकार के लिए कोई गंभीर परेशानी पैदा करने में विरोधी पक्ष अक्षम था। फिर भी श्रीमती गांधी अपने सार्वजनिक भाषणों में यही लकीर पीटती रहीं कि विरोधी दल सरकार को पंगु बनाने और देश में अराजकता पैदा करने का षड्यन्त्र रच रहे हैं।

3
श्रीमतीजी की कार्यविधि

व्यक्तियों और प्रश्नों से बरतने के श्रीमती गांधी के बहुत-कुछ चक्करदार तरीके को उन्हींके मन्त्रिमंडलीय साथियों ने नाम दे रखा था—"श्रीमतीजी की कार्यविधि"। वे 'क' के प्रति अत्यन्त मित्रतापूर्ण एवं निकट होतीं, लेकिन यदि कोई विवादास्पद प्रस्ताव या कोई आलोचना उन तक पहुंचाना वे चाहतीं तो 'क' से सीधे कुछ न कहतीं, बल्कि 'ख' के माध्यम से उन्हें सूचित करतीं। दूसरी ओर यदि 'ख' की किसी विशेष गतिविधि के बारे में अपने विचार वे उन तक पहुंचाना चाहतीं तो सीधे 'ख' से मुद्दे पर विचार-विमर्श करने के बदले यह काम 'क' को सौंपती। अपनी राजनीतिक गतिविधि को वे संदेशवाहकों के माध्यम से चलाती थीं। यही उनका तरीका था।

जब श्रीमती गांधी ने मोइनुल हक चौधरी को अपनी मन्त्रि-परिषद से हटाने का फैसला किया तो उन्होंने यह बुरी खबर अस्पताल में पड़े श्री चौधरी के पास श्री यशपाल कपूर के माध्यम से भेजी। जब श्री राजबहादुर को मन्त्रिमंडल से अलग किया गया तो इन्हीं यशपाल कपूर के हाथ यह समाचार भेजा गया। लगता है, यशपाल कपूर बुरी खबरें पहुंचाने की कला के विशेषज्ञ बन गए थे। वित्तमन्त्री के पद से बर्खास्त किए जाने की सूचना श्री मोरारजी देसाई को पी० टी० आई० के टेलीप्रिन्टर से मिली थी।

ये तरीके क्यों इस्तेमाल किए जाते थे, इसके स्पष्टीकरण में मुझे यह बताया गया कि इस प्रकार श्रीमती गांधी काफी उलझनों से बच जाती थीं। बाद में यदि मामला बिगड़ जाए और उनकी पेशकश विफल हो जाए तो वे साफ बच निकलती थीं और उन्हें उससे कुछ लेना-देना नहीं रहता था। वह बात तब उनके दिमाग की उपज बिलकुल नहीं रहती थी। लेकिन यदि सब ठीक हो जाए, तब प्रेरणा उन्हीं की मानी जाती थी और वे उसका यश लेती थीं।

अपने आसपास के लोगों पर वे यह छाप छोड़ती हैं, जैसे कि वे सबसे उदासीन और दूर-दूर हैं। अपने विचार वे अपने तक ही रखती हैं। वे कभी अपनी मुट्ठी खुलने नहीं देतीं और अपने पत्ते को अपनी छाती में छुपाए रहती हैं। मित्रों और सलाहकारों की बातें वे ठंडे दिमाग से सुनती हैं लेकिन करती वही हैं जो वे खुद चाहती हैं।

एक बार, अब स्वर्गीय, डा० डी० आर० गाडगिल (उस समय योजना-आयोग

के उपाध्यक्ष) को श्रीमती गांधी ने तत्कालीन पंचवर्षीय योजना के बारे में उनके विचार जानने के लिए बुलाया। इस मामले में उन्होंने जो रुचि दिखाई उससे डा० गाडगिल बहुत ही प्रोत्साहित हुए। सभी तथ्यों और आंकड़ों से सज्जित होकर वे उनके दफ्तर में पहुंचे। वे लगभग चालीस मिनट तक अपनी बात कहते रहे। यह देखकर उन्हें बहुत खुशी हुई कि इस बीच श्रीमती गांधी अपनी मेज़ पर झुकी सामने रखे पैड पर बहुत तत्परता से लिखे चली जा रही थीं। जब अचानक उन्होंने अपनी गर्दन ऊंची करके देखा तो यह देखकर वे खीज उठे कि प्रधान मन्त्री के सामने रखा कागज़ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं से भरा हुआ था।

अपने मन्त्रिमंडल को वे कभी अपने विश्वास में नहीं लेती थीं। वे सदा एक चौकड़ी के माध्यम से ही काम चलाती थीं। मन्त्रिमंडल की बैठकों में कभी-कभी ही ऐसा होता था कि कोई अर्थपूर्ण बहस या विचार-विनिमय हो। अधिक से अधिक राजनीतिक मामलों की समिति में कुछ विचार-विमर्श हो पाता था।

दो वरिष्ठ मन्त्रियों को वे कभी परस्पर निकट नहीं आने देती थीं। 'भेंद डालो और शासन करो' की नीति में वे दक्ष थीं। अपने मन्त्रियों को एक दूसरे से भिड़ाकर उन्हें अपना गुलाम बनाए रखने की इंग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ प्रथम की प्रतिभा का वे अच्छा प्रदर्शन करती थीं। उनके अक्खड़पन और अधिकार की प्यास ने उन्हें कितने ही लोगों से काट दिया। घाघ और हिसाबी होने के कारण उनमें उदारता की कमी थी और अक्सर वे प्रतिहिंसात्मक बन जाती थीं।

एक समय उनके अंतरंग सलाहकारों में प्रमुख थे—सर्वश्री दिनेशसिंह, पी० एन० हक्सर, इन्दर गुजराल और रमेश थापर। एक के बाद एक ये नज़रों से गिरते गए। इनके स्थान पर दूसरा गुट आ गया, जिसमें प्रमुख थे—डी० पी० धर। कुछ समय के बाद इनका रंग भी उड़ गया। इनके बाद सिद्धार्थशंकर राय और रजनी पटेल की बारी आई।

अन्त में संजय की चौकड़ी का शासन देश पर लागू हुआ और अच्छे के लिए या बुरे के लिए उन्होंने आपत्कालीन तन्त्र को रूप और आकार दिया। इस चौकड़ी में संजय गांधी के अतिरिक्त सुरक्षा मन्त्री बन्सीलाल, सूचना और प्रसारण मन्त्री विद्याचरण शुक्ल, गृह राज्य मन्त्री ओम मेहता और राजेन्द्रकुमार धवन थे।

यह अन्तिम व्यक्ति जब प्रधान मन्त्री के कार्यालय में लाया गया, उस समय रेलवे विभाग में एक मुख्य लिपिक मात्र था। यह राजमहल के एक महत्त्वपूर्ण दरबारी यश कपूर का भांजा था और यश कपूर ही इसे प्रधान मन्त्री के मन्त्रालय में लाया था। धवन अब नम्बर 1 सफदरजंग मार्ग का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। प्रधान मन्त्री के अतिरिक्त निजी सचिव के पद पर रहकर वह प्रधान मन्त्री के दफ्तर में राजनीतिक मामलों को देखने लगा। बिना उसकी अनुमति या जानकारी के पत्ता भी ज़मीन पर नहीं गिरता था।

वह संजय गांधी का बड़ा ही मुंहलगा और श्रीमती गांधी का विश्वासपात्र था। इसीलिए राजनीति, प्रशासन, उद्योग एवं व्यापार के शक्तिशाली लोग उसके आगे-पीछे घूमते थे और उसकी खुशामद करते थे। इस गठन की अजीब बात यह थी कि शुक्ल और ओम मेहता जैसे मन्त्री भी संजय का प्रसाद प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से होड़ लगाए रहते थे।

श्रीमती गांधी के इस ढंग में शाहीपन हो या न हो, धृष्टता ज़रूर है। वे इस बात के लिए प्रसिद्ध हैं कि अपने मित्रों और सलाहकारों को तेज़ी से बदलती रहती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे दूसरों पर बहुत अधिक और बहुत देर तक विश्वास नहीं करतीं। मामूली से मामूली मतभेद भी उन्हें नाराज़ कर देता है और वे मित्र या सलाहकार को अपने से तोड़ फेंकती हैं और इसके बाद कभी उसकी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखतीं।

एक समय दिनेश सिंह उनके बड़े स्नेहभाजन और विदेश मन्त्री थे। उन्हें मन्त्रिमण्डल से अलग कर दिया गया और एक गर्म अंगारे की तरह निजी मित्रों के घेरे से बहिष्कृत कर दिया गया। पी०एन० हक्सर काफी दिन चले, लेकिन अचानक वे भी नज़रों से गिर गए। बताया जाता है कि इस समय, जहां तक श्रीमती गांधी का सम्बन्ध है, यशपाल कपूर को बाहर कर दिया गया है।

1975 के मध्य जून में अपने राजनीतिक जीवन के सबसे बड़े संकट के समय सिद्धार्थशंकर राय एक चट्टान की तरह श्रीमती गांधी के साथ रहे और नैतिक एवं कानूनी समर्थन देते रहे। फिर भी, कठिनाई से एक साल बीता था कि बिना किसी संकोच के श्रीमती गांधी ने उन्हें काट फेंकने का फैसला ले लिया। यह दूसरी बात है कि एक आकस्मिक परिस्थिति के कारण श्री राय बच गए।

अपने रास्ते में रोड़ा बनने का साहस करने वाले किसी भी व्यक्ति को वे कठिनाई से ही भूलती अथवा माफ करती हैं। अपने आसपास अति कुशल एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों को वे सहन नहीं करतीं। जिस क्षण भी ये ऐसे लक्षण प्रदर्शित करते हैं वे इनके पंख कुतर देती हैं अथवा निकाल बाहर करती हैं। इस ढंग से उन्होंने सिर्फ हां-हां करने वालों से अपने को घेर लिया था। यहां तक कि चुनाव में भारी पराजय के बाद जब कांग्रेस दल ने अपने आपको संभालना शुरू किया और ऐसे व्यक्तित्व की खोज आरम्भ की जो श्रीमती गांधी के स्थान पर दल का नेतृत्व संभाल सके, तब यशवन्तराव चह्वाण के अतिरिक्त कोई भी आवश्यक ऊंचाई वाला व्यक्ति दीख नहीं पड़ा। श्रीमती गांधी सिर्फ बौनों और चमचों से घिरी थीं।

श्रीमती गांधी के बारे में यह बात बिल्कुल सच है कि उनके केवल स्थाई हित थे, स्थाई मित्र बिलकुल नहीं थे। स्वर्गीय पद्मजा नायडू ही इसका एक अपवाद थीं। वे श्रीमती गांधी की घनिष्ठ मित्र, मार्गदर्शक एवं परामर्शक भी थीं। जब से पद्मजा

मरीं श्रीमती गांधी अकेली पड़ गईं। इसके बाद कभी-कभी वे अपने दूसरे बेटे संजय से अपने मन की बातें कर लेतीं। और बाद में तो सलाह और मानसिक चैन के लिए वे उसी पर अधिकाधिक निर्भर होती गईं।

मनोविश्लेषक इस अविश्वास के, बहुत-कुछ एकान्त भय के, मूल को असुरक्षा की उस निहित भावना में खोजते हैं, जो उस समय उनमें पनपी जब आरम्भ के अपने कच्चे दिनों में उन्हें एकाकी जीवन बिताना पड़ा। उनके माता-पिता लम्बी अवधियों के लिए उनसे दूर चले जाते थे। उनकी माता बहुत जल्दी ही मर गई थीं और पिता का अधिकतर समय जेल जाने-आने में ही बीतता था। अपनी बुआओं से भी उनके सम्बन्ध बिलकुल स्नेहपूर्ण नहीं थे।

नेहरू जी ने अपने नीचे के लोगों से सम्मान और पूजा प्राप्त की थी। लाल बहादुर शास्त्री ने अपने अधीन लोगों का स्नेह पाया था। श्रीमती गांधी उनमें भय का संचार करती थी।

श्रीमती गांधी प्रकृति से ही एक प्रतिष्ठित महिला हैं और जब वे चाहें तब अपने व्यक्तित्व को अत्यन्त मनोहर बना पाने में समर्थ हैं, यद्यपि उनकी मुस्कान में अक्सर एक पेंच छुपा रहता है। पर्याप्त आकर्षण से युक्त उनका व्यक्तित्व उनकी बहुत बड़ी सम्पत्ति है। इसका उन्होंने भरपूर लाभ उठाया है। एक मन्त्री ने कहा था, "पत्थर से पत्थर दिल को भी वे एक मुस्कान से पिघला सकती हैं।" जब भी कोई केबिनेट स्तर का मन्त्री प्रधान मन्त्री के पास से लौटता था तो उसकी पत्नी का पहला सवाल उससे यही होता था, "उनके चेहरे पर मुस्कान थी या भवें टेढ़ी थीं!" मन्त्री का दिन इसी हिसाब से बन या बिगड़ जाता था। अपने इस आकर्षण का उपयोग वे बहुत चुनाव के साथ करती थीं और इसी से पुरुषों और स्त्रियों, दोनों का ही दिल वे जीत लेती थीं। जब रायबरेली में वे असम्मानपूर्वक हार गईं तो जिन लोगों ने उनके विरुद्ध मत दिया था उनमें अनेक सच्चे दिल से कह उठे थे, "हाय! लेकिन उन्हें हराया नहीं जाना चाहिए था।"

पिछले दस वर्षों में उनमें एक करिश्मा पैदा हो गया था। इस क्षण भी, जब कि 1977 के चुनावों में कांग्रेस की बदनाम हार के लिए वे पूरी तरह जिम्मेदार हैं, कितने ही कांग्रेसियों पर उनका जादू ज्यों का त्यों है और वे उनके भक्त हैं।

1969 में घरेलू राजनीतिक युद्ध में श्रीमती गांधी द्वारा अपनी लक्ष्यपूर्ति के लिए प्रयुक्त राजनीतिक चालबाज़ी और क्रूरता का काफी स्वाद सिंडीकेट अर्थात् कांग्रेस दल के पुराने महारथियों को चखना पड़ा था।

1969 में जब श्रीमती गांधी त्रस्त निजलिंगप्पा के विरुद्ध दांव पर दांव जीतती जा रही थीं, तब नई दिल्ली में अमेरिका के राजदूत भूतपूर्व सीनेटर जॉन कीटिंग ने इन पंक्तियों के लेखक से कहा था, "मैं इस महिला का अभिवादन करता

हूं। जब ये राजनीतिक चालें चलने पर आती है, तो हम अमरीकनों को भी कुछ न कुछ सिखा सकती है।"

जैसा कि उन्होंने 1969 में सिद्ध कर दिखाया, एक राजनीतिक व्यूह-विशेषज्ञ के रूप में उनको सही समय की विलक्षण पहचान है और जनसंपर्क की अनोखी प्रतिभा है। जब वे गुजरात जाती हैं तो गुजराती ढंग की साड़ी पहनती हैं और गुजरात की बहू होने का दावा करती हैं। जब वे पंजाब में होती हैं तो सलवार-कमीज़ पहनती हैं और पंजाबिनों के साथ भंगड़े में शामिल होती हैं। कोहिमा में वे नागा स्कर्ट, शाल और शिरोवस्त्र पहनती हैं और नागा-नर्तकियों के साथ नाचतीं हैं और उन्हींकी तरह नाक से सुर निकालने की भी कोशिश करती हैं। स्त्रियों के फैशनों की विशेषज्ञों ने साड़ियों के बारे में उनकी त्रुटिहीन रुचि की प्रशंसा की है।

अपने पिता के विपरीत श्रीमती गांधी स्वभाव से ही स्वेच्छाचारी हैं और बहुत कुछ अक्खड़ भी हैं। ऐसे दिमाग में एकाधिकारी विचार स्वतः ही पैदा होते हैं। सातवें दशक के आरम्भ में जब वे कांग्रेस अध्यक्ष थीं, तो केरल में विधिपूर्वक निर्मित नम्बूदिरीपाद मन्त्रिमण्डल को असंवैधानिक तरीकों से भंग करवा देने के लिए ज़ोरदार प्रयत्न करने में उन्होंने कोई भी हिचक महसूस नहीं की। 1969 में कांग्रेस में दरार पड़ने तक, जब कि श्रीमती गांधी को सामरिक नीति के कारण वामपंथ का झण्डा ऊंचा करना पड़ा था, उन्होंने सदा कांग्रेस दल और देश में निहित उस मध्यनिष्ठ राजनीतिक चिन्तन-प्रतिभा की ही बातें की थीं जो अतिवादी सैद्धांतिक ध्रुवीकरण पर आधारित न होकर सामजस्य पर आधारित थीं।

उनका परिवार पिछले तीस वर्षों और दो पीढ़ियों से देश पर शासन कर रहा था। उन्हें आशा थी कि अधिक नहीं तो एक पीढ़ी और वह करता रहेगा। शायद इसीलिए स्वाभाविक था कि श्रीमती गांधी देश पर अपना स्वत्व मानें और ऐसे व्यवहार करें जैसे कि देश उनका निजी फार्म है, और सोचें कि सरकारी यंत्र पर और उसके अधिकारियों की सेवाओं पर उनका अक्षुण्ण अधिकार है।

1974 के मध्य आर्थिक और राजनीतिक परेशानियां श्रीमती गांधी को चारों ओर से घेरे हुए थीं। साहसहीन और उत्तेजित उनकी मानसिकता चिड़चिड़ी और किसी भी असहमति और आलोचना के प्रति असहिष्णु बन गई थी। वैसे बहुत सहिष्णु तो वे कभी भी नहीं रही थीं। उनके सामने देश की बौखला देने वाली समस्याएं थीं जिनको जल्दी से प्रभावी ढंग से हल कर देने की उनसे अपेक्षा थी। इसलिए वे इन समस्याओं के संक्षिप्त, निरंकुश समाधानों में पनाह लेने के लिए व्यग्र थीं। कहीं वे विरोधी दलों को चुप कर सकतीं और पत्रों का गला घोंट सकतीं तो वे अपना काम निर्विघ्न रूप में कर सकती थीं! पत्रों के विरुद्ध अक्सर उनका असंयमित रूप में भड़क उठना, विरोधी नेताओं की आलोचना के प्रति अधैर्य, सम्माननीय जयप्रकाश नारायण के विरुद्ध जिस प्रकार की भाषा का उन्होंने प्रयोग

किया वह सब इस अवधि के बीच उनकी मन:स्थिति की ओर संकेत कर रहा था।

जिस समय श्रीमती गांधी के विरुद्ध श्री राजनारायण की चुनाव-याचिका पर न्यायमूर्ति जगमोहनलाल सिन्हा ने अपना फैसला दिया, उस समय नम्बर 1, सफदरजंग मार्ग पर और देशभर में ऐसा ही तनावपूर्ण वातावरण था। वे पहले ही किनारे पर झूल रही थीं। इस फैसले ने उन्हें एकदम सिरे पर ला खड़ा किया। आरंभिक डगमगाहट के बाद शीघ्र ही उन्होंने अपने मन को दृढ़ किया और अपनी निरंकुशता की कामना को व्यवहार रूप देने और भारत के इतिहास में एक कर्म-प्रवण महान् नारी कहलाने के इस अवसर से पूरा लाभ उठाने का निश्चय किया।

1969 में कांग्रेस के पुराने महारथियों के विरुद्ध जो अत्यंत दक्ष राजनीतिक युद्धकौशल उन्होंने प्रदर्शित किया था और देश की विदेश नीति के संदर्भ में जो बारीक सूझबूझ उन्होंने दिखाई थी, उससे पूरी दुनिया की प्रशंसा उन्हें मिली थी। पाकिस्तान पर उन्होंने उल्लेखनीय सैनिक-विजय प्राप्त की थी, जिसके फलस्वरूप उस देश के दो टुकड़े हो गए थे और बंगला देश को मुक्ति मिल गई थी।

'लंदन इकानामिस्ट' में उन्हें भारत की साम्राज्ञी कहा गया था और, लगता है, जैसे वे इस पर विश्वास कर बैठी थीं। कुछ भी हो, इस कथन ने उनके दिमाग में कुछ विचार ज़रूर डाले थे। उनके मन में इस बात में कोई संदेह नहीं था कि घरेलू क्षेत्र में भी ऐसा कोई लक्ष्य नहीं था जिसे वे उपलब्ध न कर सकतीं हों। बस लोकतंत्रीय प्रणाली द्वारा लागू कुछ प्रतिबन्ध ही रुकावट बन रहे थे। वे थे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और कानूनसम्मत रहने पर ज़ोर। उन्हें अब घर में अनुकूल स्थितियां निर्मित करने की दिशा में अपनी शक्ति लगानी चाहिए; उन्हें संवैधानिक और लोकतंत्रीय सभी रुकावटों को मार्ग में से हटा देना चाहिए।

इलाहाबाद के फैसले के तुरंत बाद जो स्थिति सामने आ खड़ी हुई थी, उसने, श्री जयप्रकाश नारायण के बढ़ते हुए आंदोलन के साथ मिलकर उन तरीकों को लागू करने की आवश्यक प्रेरणा और बहाने उन्हें प्रदान कर दिए, जिन्हें सामान्य समय में लागू करने का साहस वे नहीं कर सकती थीं। आपातस्थिति लागू करके एक हमले में उन्होंने विरोधी दलों की 'बकवास' से छुट्टी पा ली थी और पत्रों का गला घोंट दिया था। श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा दी गई सम्पूर्ण क्रांति की धमकी ने इस असाधारण कदम की संगति उन्हें प्रदान कर दी। इस सब सामग्री को लेकर सरकार द्वारा नियंत्रित प्रचार साधनों के माध्यम से जनता के समक्ष अपने अनुकूल एक मज़बूत पक्ष वे अब निर्मित कर सकती थीं। अब आकाशवाणी और दूरदर्शन के अतिरिक्त समाचार एजेंसी और एक दब्बू व आज्ञाकारी प्रेस भी उनके अंगूठे के नीचे था।

सब प्रकार के विरोध को इस तरह चुप कर देने के बाद अब वे कठोर निर्णय ले सकती थीं और अलोकप्रिय, लेकिन आवश्यक, नीतियों को लागू कर सकती थीं।

वे त्वरित परिणाम दिखा सकती थीं और जनता के मन को जीत सकती थीं। इसके बाद वे देश के सामने जा सकती थीं और भारी बहुमत से जीतकर सत्ता फिर से प्राप्त कर सकती थीं और इस प्रकार, काम सिद्ध करने वाले अधिक प्रभावी एक निरंकुश शासन के पक्ष में साफ-सीधा लोकमत प्राप्त कर सकती थीं। सार्वजनिक प्रचार-साधन उनके साथ थे, और दुनिया में क्या था जो वे उपलब्ध नहीं कर सकती थीं।

आपातस्थिति ने निरंकुशता के मार्ग पर जानबूझकर कदम बढ़ाती सरकार के रास्ते के सभी कानूनी और संवैधानिक अवरोधों को अनायास ही समाप्त कर दिया। मूलभूत अधिकार, यहां तक कि बंदी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार भी स्थगित कर दिया गया। साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों के राज्य में भी जैसा देखने को नहीं मिला था, वैसा निष्ठुर सेंसर प्रेस पर लगा दिया गया। इस सेंसर को लागू करने के तरीके ने 'माफिया' को भी पीछे फेंक दिया। जानबूझकर स्थापित किए गए आतंकवादी शासन के द्वारा अंधाधुंध गिरफ्तारियों और नज़रबन्दियों तथा शक्ति के नंगे प्रदर्शन द्वारा देश में भय की एक मानसिकता पैदा कर दी गई, जिसने लोगों को भेड़-बकरी बना दिया।

27 जून को राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने एक अध्यादेश जारी किया, जिसके अनुसार कानून के समान संरक्षण के, जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के तथा अपनी आज़ादी के लिए बिना वारण्ट की गिरफ्तारी एवं नज़रबंदी के विरुद्ध संरक्षण के, नज़रबंदों के संवैधानिक अधिकार समाप्त कर दिए।

दो दिन बाद एक और अध्यादेश जारी करके आंतरिक सुरक्षा अधिनियम (मीसा) में संशोधन किया गया और इस अपेक्षा को समाप्त कर दिया गया कि विशिष्ट अवधि में नज़रबंदी के कारणों की सूचना नज़रबन्द को अवश्य दी जानी चाहिए।

सिर्फ दिल्ली में 25/26 जून 1975 की रात के पहले फेरे में 83 व्यक्तियों को पकड़ा गया। 26/27 जून के दूसरे फेरे में 250 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए। 25 जून 1975 (जिस रात राष्ट्रपति ने घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किए) से लेकर 18 मार्च 1977 (जिस दिन आपातस्थिति समाप्त की गई) तक मीसा के अंतर्गत पूरे देश में पकड़े जाने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या 34630 पहुंच गई। इनमें कुल 6244 नजरबंद ही सामान्य मीसा कानून के अंतर्गत पकड़े गए थे, जब कि शेष 28386 मीसा के आपत्कालीन उपबंध धारा 16 अ के अंतर्गत बंदी बनाए गये थे।

मार्च 1977 में चुनावों के समय सभी जेलों में 17000 राजनीतिक नज़रबंद थे, जबकि तत्कालीन केन्द्रीय सरकार के प्रवक्ता ने ज़ोर देकर कहा था कि सभी राजनीतिक नज़रबंदों को रिहा कर दिया गया है। आपातस्थिति के दौरान

नज़रबंदों के मामले में बिहार सूची में सबसे ऊपर रहा । यहां 2116 लोग पकड़े गए थे । 1805 की संख्या वाला गुजरात दूसरा था। इसके बाद आंध्र प्रदेश के 1078 और दिल्ली के 1011 व्यक्ति पकड़े गए।

इसके बावजूद एक ज़ोरदार भूमिगत आन्दोलन जारी रखा गया। गैर कानूनी सूचनाएं साइक्लोस्टाइल की अथवा छापी जातीं और बांटी जातीं। दिल्ली और देश के दूसरे हिस्सों में सत्याग्रह किए जाते। इस आन्दोलन की रीढ़ राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ता थे, जिन्हें उच्चकोटि की सैद्धान्तिक शिक्षा मिली थी। इनके पास अपनी गतिविधियों के लिए कामचलाऊ यन्त्र के रूप में पहले से ही तैयार एक संगठन था। इन लोगों ने सरकार के नृशंस दमन के बावजूद हिम्मत हारने से इन्कार कर दिया और आन्दोलन को जीवित रखा। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के 25000 से अधिक कार्यकर्त्ता मीसा और डी० आई० आर० के अधीन गिरफ्तार किए गए और 100000 ने सत्याग्रह किया। लगभग 70 व्यक्ति जेलों में अथवा भूमिगत कार्य करते हुए मृत्यु की भेंट चढ़ गए।

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के उदार स्वभाव वाले सुसंस्कृत मन्त्री इन्दर गुजराल को, जिनका अपराध यही था कि वे पत्रकारों के साथ तालमेल रखते थे, भोंडे ढंग से हटाकर उद्दंड और अक्खड़ स्वभाव के विद्याचरण शुक्ल को ले आया गया, जो श्रीमती इन्दिरा गांधी के इस नये अवतार के एक शानदार शस्त्र साबित हुए।

21 जुलाई को लोकसभा का आपत्कालीन अधिवेशन बुलाया गया जो 19 दिनों तक चला। विरोधी पक्ष ने इसका बहिष्कार किया। इस अधिवेशन ने आपात स्थिति की घोषणा पर निष्ठापूर्वक अपनी सही कर दी और विधि संग्रह को प्रतिगामी विधेयकों के पुलिन्दों से दूषित कर दिया।

लोकसभा के दोनों सदनों में पहला काम यह किया गया कि कार्यविधि के सामान्य नियमों को स्थगित कर दिया गया। प्रश्नोत्तर काल पर, और गैर-सरकारी सदस्यों के प्रस्तावों पर रोक लगा दी गई जिससे कि इस अधिवेशन के दौरान सिर्फ सरकारी काम-काज ही किया जा सके। लोकसभा के इस आपत्कालीन अधिवेशन में ही संविधान का 39वां संशोधन विधेयक स्वीकार किया गया, जिसके अनुसार आपातस्थिति लागू करने के राष्ट्रपति के कारणों को किसी अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती थी और यह भी कि राष्ट्रपति, कोई घोषणापत्र पहले से जारी किया गया हो या नहीं, अलग-अलग आधारों पर अलग-अलग घोषणापत्र जारी कर सकते थे।

लोकसभा ने संविधान का 41वां संशोधन विधेयक भी स्वीकार किया जिसमें यह विधान था कि जो व्यक्ति राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री अथवा राज्यपाल है या रहा है, उसके विरुद्ध इस पद पर आने से पहले अथवा इस पद पर रहने की अवधि में,

जो भी कार्य उसने किया हो उसको लेकर किसी अदालत में कोई फौजदारी मुकदमा न दायर किया जा सकता है और न जारी रखा जा सकता है; और इसी प्रकार ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध पद पर आने से पहले अथवा उसके बाद व्यक्तिगत स्तर पर किए गए किसी भी कार्य को लेकर कोई दीवानी मुकदमा भी दायर नहीं किया जा सकता।

इस लोकसभा द्वारा स्वीकृत एक विशिष्ट विधेयक (39वें संशोधन) के द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दाखिल श्री राजनारायण की याचिका में उठाए गए चारों मुद्दों को भी निरस्त कर दिया गया और नई धाराओं को पूर्वव्याप्ति सहित लागू माना गया। नई धाराएं इस प्रकार थीं (क) कि चुनाव के खर्चों एवं अन्य प्रयोजनों के अर्थ किसी व्यक्ति की उम्मीदवारी, जैसा कि 1951 के जनप्रतिनिधित्व कानून में निर्धारित है, तब से नहीं मानी जाएगी जबसे कि चुनाव के उपस्थित होने पर उसने स्वयं को भावी उम्मीदवार मानना शुरू कर दिया हो, बल्कि तब से मानी जाएगी जबसे कि उसे उम्मीदवार बनाया गया हो, (ख) कि चुनाव आयुक्त द्वारा दिया गया कोई भी चिह्न धार्मिक या राष्ट्रीय चिह्न नहीं माना जाएगा, (ग) कि 1951 के जनप्रतिनिधित्व विधेयक की वह धारा, जो उम्मीदवारों को अपनी चुनाव-सम्भावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए सरकारी अफसरों की सहायता प्राप्त करने से मना करती है, उस कार्य पर लागू नहीं होगी जिसे सरकारी अफसर ने अपने सरकारी कर्त्तव्य की पूर्ति के दौरान किया हो तथा (घ) कि सरकारी गजट में प्रकाशित सूचना केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार के किसी भी सेवक की नियुक्ति, त्यागपत्र, सेल-समाप्ति अथवा उसके हटाए जाने का अथवा जिस तिथि से यह लागू हो रहा हो उसका अन्तिम प्रमाण होगी।

विधि मंत्री श्री एच० आर० गोखले ने इसी अधिवेशन में एक और विधेयक रखा जिसमें कहा गया था कि राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा के अध्यक्ष और प्रधान मंत्री से सम्बन्धित सभी मामले संसद द्वारा स्थापित एक नये अधिकरण के सामने रखे जायें। इस कानून को किसी अदालत के सामने चुनौती नहीं दी जा सकती थी और वर्तमान कानूनों के अधीन राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, लोकसभा अध्यक्ष तथा प्रधान मंत्री के विरुद्ध जो भी मामले चल रहे हों वे समाप्त माने जायेंगे।

जब उच्चतम न्यायालय के संविधान-पीठ ने श्रीमती गांधी की अपील पर 11 अगस्त को सुनवाई आरम्भ की, तो प्रधान मंत्री के वकील अशोक सेन ने अदालत से कहा कि 39वें संशोधन (इसे पहले ही दिन अर्थात् 10 अगस्त को ही अन्तिम रूप से स्वीकार किया गया था) ने क्योंकि फैसले को खत्म कर दिया है, इसलिए इस आधार पर सजा को फौरन समाप्त कर दिया जाए। श्री राजनारायण के वकील श्री शांतिभूषण का कथन था कि न्यायालय पहले यह तय करे कि क्या संशोधन संवैधानिक है। उन्होंने याद दिलाया कि उच्चतम न्यायालय ने 1973 में

यह स्थापना दी थी कि संसद संविधान के मूल ढांचे अथवा आकार को बदल नहीं सकती। अटार्नी जनरल श्री नीरेन दे ने इस तर्क का जवाब यह कहकर दिया कि चुनाव से सम्बन्धित झगड़े का फैसला संविधान के मूलभूत ढांचे अथवा आकार की धारणा के अन्तर्गत नहीं आता।

7 नवम्बर को उच्चतम न्यायालय की संविधान-पीठ ने, जिसमें मुख्य न्यायाधीश श्री ए० एन० राय के अतिरिक्त सर्व श्री एच० आर० खन्ना, के० मैथ्यू, एम० एच० बेग तथा वाई० वी० चन्द्रचूड़ थे, एकमत से फैसला देकर रायबरेली क्षेत्र से श्रीमती गांधी के चुनाव को वैध ठहरा दिया तथा 39वें संशोधन को पूरी तरह गैर कानूनी करार देते हुए भी आपत्कालीन अधिवेशन में स्वीकार किए गए चुनाव-नियम संशोधन विधेयक, 1975 की वैधता को मान्यता दे दी।

इस घटना-चक्र पर पीछे से दृष्टि डालें तो यह पूरा घटिया प्रयास अवांछित, महंगा और अनिवार्यतः वेदनाजनक प्रतीत होता है, क्योंकि श्री राजनारायण की याचिका पर उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती गांधी को निर्दोष करार दे दिया। जैसा कि श्रीमती गांधी को उनके मित्रों एवं आलोचकों ने इस बीच की अवधि में परामर्श दिया था, वे अस्थायी रूप से पद से उतर सकती थीं और चार महीने बाद उच्चतम न्यायालय द्वारा उनकी अपील पर निर्णय हो जाने पर अपने पद पर वापिस लौट सकती थीं और तब उनकी प्रतिष्ठा और लोकतन्त्रीय मूल्यों के प्रति सम्मान अक्षुण्ण रह जाता और साथ ही उनके विरोधियों की तोपें भी बेकार हो जातीं। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि यदि वे जनवादी सार्वजनिक प्रदर्शन न किए गए होते और आपातस्थिति के लागू किए जाने से तथा लोकसभा के आपत्कालीन अधिवेशन द्वारा नये चुनाव-नियम स्वीकार किए जाने से जो स्थितियां पैदा हुईं वे न हुई होतीं, तब एक भिन्न वातावरण में क्या उच्चतम न्यायालय ने श्रीमती गांधी को दोषमुक्त करार दिया होता?

टक्कर के स्थान पर बातचीत यह काम कर सकती थी, लेकिन किसी भी लोकतंत्र में इसके लिए पहल सरकार को ही करनी होती है। वस्तुतः देश के सामने उपस्थित विभिन्न राष्ट्रीय-मसलों के बारे में श्री जयप्रकाश जो चाहते थे और श्रीमती गांधी जो कहती थीं, उसमें कोई विशेष सैद्धान्तिक अन्तर नहीं था। लेकिन श्रीमती गांधी की अक्खड़ और निरंकुश मनोवृत्ति ने उन्हें सहज नहीं बनने दिया। फल यह हुआ कि राष्ट्र को आपातस्थिति के उन्नीस महीनों के घोर त्रास में से गुजरना पड़ा और इसके ठीक बाद ही श्रीमती गांधी के शासन को अपमानपूर्वक उलट दिया गया और भारतीय जनता ने लोकतन्त्र एवं स्वतन्त्रता के अपने अधिकार को नाटकीय ढंग से पुनः स्थापित कर दिया।

आपातस्थिति का पहले-पहल तो भारतीय जनता पर ठीक वैसा ही एक अनुकूल असर पड़ा जैसा कि बीस वर्ष पहले जब अयूब ने पाकिस्तान पर ताना-

शाही लागू की थी तो पाकिस्तानियों पर पड़ा था। उत्साही अफसरों ने दिल्ली की पटरियों को साफ कर डाला, मुनाफाखोरी को कठोरता से दवा दिया, अन्न और आवश्यक चीज़ों की कीमतों पर नियंत्रण किया और सामाजिक एवं औद्योगिक अनुशासन को लागू किया। औद्योगिक उत्पादन क्षमता एवं उत्पादन बढ़ गया। एक रात के भीतर छात्रों की गुंडागर्दी खत्म हो गई और कक्षाएं भर उठीं। आम आदमी ने इस सब का स्वागत किया। अनुकूल मानसून ने देश में अन्न की स्थिति को सहज कर दिया और मुद्रास्फीति को नियंत्रण में ले आया गया। मामले सुधरे हुए नज़र आने लगे। पहले छः महीनों तक हर वात जैसे स्वतः होती चली गई। पर इसके वाद दरारें पड़नी शुरू हो गईं।

आपातस्थिति के दौरान भारी आर्थिक प्रगति का जो शोरशरावा देश भर में मचा, उसके पीछे से कुछ नंगे तथ्य झांक रहे थे। वे ये कि भ्रष्टाचार अभूतपूर्व स्तर तक पहुंच गया था। वेरोजगारी वहुत अधिक बढ़ गई थी। गरीबी के स्तर से नीचे जाने वालों की संख्या 27 करोड़ से 42 करोड़ हो गई थी। अनाज, वनस्पति, चाय, जूते, कपड़ा, घर, रेल के डिव्वों में जगह, दूध और अंडे आदि की प्रति व्यक्ति उपलब्धि 30 प्रतिशत से घटकर 10 प्रतिशत रह गई थी (ये आंकड़े सरकारी आंकड़ों के अनुसार हैं)।

संजय की चौकड़ी ने अब घटनाओं को रूप देने में भारी हिस्सा लेना शुरू कर दिया था। प्रेस का गला घुट गया था। कितनी भी सही क्यों न हो, अधिकारियों की आलोचना एकदम वंद दी। अफसरों के दुराचार, भ्रष्टाचार और शक्ति के दुरुपयोग की घटनाओं से वातावरण भर उठा था। स्थानीय कारिन्दों ने सव पर धौंस जमानी शुरू कर दी थी।

किसी खास सड़क पर अपनी जगह पर खड़े सिपाही से लेकर बिक्री कर के इंस्पेक्टर तक हर टुच्चे अधिकारी ने दूकानदारों, रिक्शेवालों और खोमचेवालों से चौथ वसूलनी शुरू कर दी थी। इन नये गैरकानूनी कानूनों के माध्यम से अपने निजी बदले लिए जाते थे। जिन अधिकारियों और व्यापारियों ने सरकार में ऊंचे पद रखने वालों को कभी नाराज़ कर दिया था, उनके घरों पर आयकर विभाग के अथवा बिक्रीकर विभाग के अफसरों द्वारा, अक्सर गढ़े गए आरोपों को लेकर अंधाधुंध छापे मारे गए।

इस देश से कानून का राज्य व्यवहारतः बहिष्कृत हो गया था। बन्दी प्रत्यक्षीकरण (हैविअस कारपस) का अधिकार स्थगित हो जाने के साथ-साथ पुलिस का अत्याचार वहुत ही बढ़ गया और अनेकों निर्दोष लोगों को आतंकित किया गया। छात्रसंघ की पृष्ठभूमि वाले युवकों को सबसे अधिक यातनाएं झेलनी पड़ीं। उन्हें कालिजों के वाहर, बस स्टॉपों पर अथवा उनके घरों के बरामदों में धर दवाया

जाता, पकड़ ले जाया जाता और आरोपित, भूमिगत ध्वंसात्मक गतिविधियों के बारे में सूचनाएं निकालने के नाम पर उन्हें यातनाएं दी जातीं।

उनकी गिरफ्तारी के बारे में उनके माता-पिताओं को कभी कोई खबर न दी जाती और वे बेचारे उनके बारे में अन्दाज़े ही लगाते रहते। कुछ मामलों में तो माता-पिताओं और रिश्तेदारों तक को तंग किया गया, थानों में ले जाकर उन्हें बन्द कर दिया गया, सताया गया और घंटों पूछताछ की गई। उद्देश्य यह था कि लोगों के दिलों में डर बैठा दिया जाए। और इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत पुलिस अफसरों की परपीड़न वृत्ति (साडिज्म) एवं विकृतियों को खुलकर खेलने का अवसर मिला।

नगर को साफ करने और सुन्दर बनाने के नाम पर झुग्गी-झोंपड़ी वालों को उनके घरों से उखाड़ फेंका गया और कई मील दूर एक स्थान पर डाल दिया गया, जहां वे अपनी चिन्ता स्वयं करें। परिवार-नियोजन लागू करने के नाम पर दिल्ली में और पूरे उत्तरी भारत में गांवों और नगरों के गरीब लोगों पर जो अत्याचार किए गए और उन पर जिस क्रूर ताकत का इस्तेमाल किया गया उससे बेहतर तो ईदी अमीन के देश में भी नहीं किया जा सकता था। असल में, यह विश्वास करने में कठिनाई होती थी कि हमारे अधिकारी इतनी क्रूरता और कट्टरता दिखाने की सामर्थ्य रखते हैं और आज जब भी यह लेखक सड़क पर किसी पुलिस वाले के पास से गुजरता है, एक वितृष्णा की भावना अनायास ही पैदा हो जाती है। इस राक्षसी व्यवहार को न सह पाकर पूरे के पूरे ग्रामों ने अफसरशाही के विरुद्ध विद्रोह किया और बदले में उन पर लाठियां बरसाई गईं और गोलियां चलाई गईं। नसबंदी कार्यक्रमों के अन्तर्गत पुलिस के छापों से बचने के लिए पूरे के पूरे ग्रामों के वयस्क पुरुषों के कितने ही दिनों और रातों तक जंगलों में पड़े रहने के उदाहरण बड़े ही आम थे।

कठोर सेंसर को धन्यवाद दिया जाना चाहिए कि उसने अत्याचारों की सभी कहानियों को पूरी तरह दबा दिया था, जिसके फलस्वरूप राजधानी अफवाहों का एक विशाल कारखाना बन गई थी, जहां अक्सर सच्चाई कहानी से भी अधिक अजीब प्रतीत होती थी। जल्द ही तथ्य और कहानी के बीच की विभाजक रेखा धुंधली पड़ गई, क्योंकि विश्वास के अयोग्य और एक रोगी कल्पना की उपज माने जाने वाले अत्याचारों की कहानियां सत्य-कथाएं सिद्ध होने लगीं। अखबारों में छपी बातों में कोई किसी भी दशा में विश्वास नहीं करता था, क्योंकि हर कोई जानता था कि उनके कालमों में छपी खबरें सरकार द्वारा पकाई जाकर ही परोसी गई हैं। इस प्रकार, दो अवसरों पर ऐसा हुआ कि घटने के अनेक दिनों बाद तुर्कमान गेट की घटना और मुजफ्फरनगर के दंगों के क्षीण विवरण सरकार ने प्रकाशित कराए जिसका एकमात्र उद्देश्य यह था कि अंधाधुंध अफवाहों को रोका

जा सके। इन अफवाहों में से अधिकतर बाद में सच निकलीं और असल में सरकार ही भयानक तथ्यों को हलका बनाकर उन्हें कृत्रिम रूप दे रही थी।

पाकिस्तान में अयूब शासन का पुराना नाटक ही भारत में खेला जा रहा था। कराची में सेना के जवान कप्तानों और मेजरों ने कराची की सड़कों पर घूम-घूमकर पटरियों पर बैठे भिखारियों और शरणार्थियों को डंडों के जोर से वहां से हटाया था। लेकिन जल्द ही वे सब भ्रष्ट हो गए और आम लोगों से पैसे वसूलने और उनसे बेगार लेने लगे और उन्हें आतंकित करने लगे।

और भी उल्लेखनीय समानता यह रही कि पाकिस्तानी तानाशाह का भी बेटा ही अपने पिता के विनाश का कारण बना, जैसे संजय श्रीमती गांधी के राजनीतिक पतन के लिए मुख्यत: जिम्मेदार है। दोनों ने ही छलांगें लगाती अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने और जल्द ही अमीर बनने के लिए विशेष स्थिति का लाभ उठाने का फैसला किया था। यह एक अजीब तथ्य है कि इतिहास ने अपने को दोहराया है।

एक दूसरा पाठ, जिसे बाद में श्रीमती गांधी के अनुभव ने भी पुष्ट किया और जिसे अयूब खां ने भयानक कीमत देकर सीखा, यह है कि तानाशाही तक अपने निजी हित की दृष्टि से भी एक स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रेस के बिना काम नहीं चला सकती। इन लोगों ने समाचार पत्रों का गला घोंटा और खबरों को अपनी मर्जी के अनुसार ही छपने दिया और इस प्रकार इस महत्त्वपूर्ण जानकारी से अपने को महरूम रखा कि जनता उनके बारे में क्या सोचती है और सच-सच क्या कहती है। इसके बाद इन लोगों ने अपने दरबारियों और चापलूसों में कारुणिक विश्वास करना शुरू किया, जिन्होंने उन्हें आश्वस्त किया कि वे कभी गलती नहीं कर सकते, वे अपरिहार्य हैं और लोकप्रिय हैं। और जैसे ही उन्होंने चुनाव के आदेश दिए, उनका अन्त आ गया और उन्हें एक तिरस्कारपूर्ण पराजय का सामना करना पड़ा।

'सत्ता भ्रष्ट बनाती है और असीमित सत्ता असीमित रूप में भ्रष्ट बनाती है।'— लार्ड एक्टन की यह प्रसिद्ध उक्ति इन्दिरा की आपातस्थिति में जितनी अच्छी तरह चित्रित हुई है, उतनी पहले कहीं नहीं हुई थी।

आपातस्थिति लागू होते ही पहले कुछ नाजुक सप्ताहों के दौरान पुलिस और प्रशासन के अफसरों ने आदेशों का ऐसे पालन किया जैसे कि वे आत्मा, यहां तक कि मस्तिष्क से भी खारिज यंत्र हों। ऐसा लगता था जैसे लोगों ने स्वयं सोचना बंद कर दिया था और बिना इस बात की परवाह किए कि आदेश कानूनी अथवा न्यायसम्मत हैं या नहीं और कौन उन्हें दे रहा है, वे बस उनका पालन करते गए। इस सन्दर्भ में श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा पुलिस और सेना को दिया गया प्रबोधन, कि जिसे वे न्यायरहित और गैर कानूनी समझें उसका पालन न करें, गम्भीर रूप से संगत सिद्ध होता है।

श्रीमती गांधी ने चुनाव कराने का फैसला क्यों लिया ? यह सौ करोड़ रुपये की कीमत का एक प्रश्न है। वे आश्वस्त थीं कि उस समय यदि चुनाव कराया गया तो वे सौ फीसदी जीतेंगी और भारी बहुमत लेकर लोकसभा में लौटेंगी। उन्होंने अपने इस फैसले को अपनी अनन्य राजनीतिक गुप्तचर सेवा रॉ (RAW) के अफसरों तथा अन्य सरकारी सूत्रों द्वारा दी गई सूचना पर आधारित किया था। लेकिन प्रधानमंत्री को अरुचिकर तथ्य देने के बारे में रॉ एवं अन्य सरकारी संगठनों के अधिकारियों में इतना अधिक डर पैदा हो गया था कि उन्होंने भी वही तथ्य उन्हें दिए जिन्हें सुनना वे पसंद करती थीं। और यही श्रीमती गांधी के लिए शोक का कारण बन गया।

और भी विश्वसनीय कारण थे, कम से कम उस समय वे विश्वसनीय लगे थे, जिन्होंने श्रीमती गांधी को प्रेरित किया कि वे समय से एक वर्ष पहले ही चुनाव करा लें। तभी हाल ही में संविधान में संशोधन करके संघीय संसद की कार्यावधि में एक वर्ष बढ़ाया गया था।

उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश और अन्य जगहों में शासक दल में गम्भीर दरारें पैदा हो गई थीं और तत्काल आवश्यक हो गया था कि कांग्रेस में आन्तरिक एकता लाने के लिए एक उत्साहवर्धक एवं उत्प्रेरक स्थिति पैदा की जाए जिससे क्षरण को फौरन रोका जा सके। एक शिखर पर पहुंचकर देश की आर्थिक स्थिति ने फिर नीचे गिरना शुरू कर दिया था। कीमतें फिर से बढ़ने लगी थीं और मुद्रा-स्फीति अपना घृणित सिर उठा रही थी। दो अच्छे मान-सूनों के बाद आगामी वर्ष बुरे मानसून की आशंका थी।

सभी अपशकुन श्रीमती गांधी को प्रेरित कर रहे थे कि वे सीधे जनता के पास जायें और कल्याण की उस भ्रान्ति का लाभ उठाएं जो धीमे-धीमे मिटती जा रही थी; और एक बहुमत लेकर संसद में लौटें और दावा करें कि जनता ने उनकी नीतियों पर और शासन के उनके ढंग पर मुहर लगा दी है; और तब वे एक अधिक स्थाई एक-दलीय निरंकुश शासन को देश के ऊपर थोप दें।

समय से पूर्व चुनावों की घोषणा के पीछे क्या विदेशी दबाव किसी भी रूप में रहे हैं ? जिस रूप में लोग सोचते हैं उस रूप में नहीं। श्रीमती गांधी इतनी स्वाभिमानिनी हैं कि वाशिंगटन अथवा कहीं के भी सरकारी दबाव के सामने झुकती नहीं। लेकिन यह कहना एकदम गलत नहीं होगा कि अप्रत्यक्ष दबावों का असर रहा जरूर। पीछे संजय गांधी की औद्योगिक महत्त्वाकांक्षाओं ने उसे प्रेरित किया था कि वह सुदूर पश्चिम की ओर दृष्टि फेरे। पश्चिम के बहुराष्ट्रिकों, विशेषकर अमरीकियों के साथ मतभेद दूर करने का प्रयास वह करता रहा है।

पश्चिम के प्रति उन्मुखता का फल यह हुआ कि संजय अचानक ही पश्चिम का स्नेहभाजन, भारतीय गगन का उठता हुआ नक्षत्र बन गया। संजय ने अपने

साम्यवाद-विरोध तथा स्वतंत्र उद्योग के प्रति अपने पक्षपात को गुप्त नहीं रखा। इस प्रकार हाल के महीनों में हमने देखा कि अमरीकी एवं पश्चिमी समाचार पत्रों ने श्रीमती गांधी के शासन का विरोध करना बन्द कर दिया था और अधिक सहानुभूतिपूर्ण टिप्पणियां उनमें प्रकाशित होने लगी थीं।

भारतीय पूंजीवादी संजय की ओर ज्वलन्त आशा के साथ और पश्चिमी बहु-राष्ट्रिकों की ओर लाभकर सहभाग की खातिर देखने लगे थे और वे अपनी भारी थैलियां लेकर संजय के चारों ओर इकट्ठे होने लगे थे। उन्हें इसमें निराशा भी नहीं हुई थी। जल्द ही सरकार की आर्थिक एवं औद्योगिक नीतियों में एक निश्चित दक्षिणपंथी झुकाव दीख पड़ने लगा था। उनके हिसाब से हर चीज़ बहुत ही बढ़िया चल रही थी। दुर्भाग्यवश तभी चुनाव आ गए, जिन्होंने भारतीय राज-नीति के आडम्बरपूर्ण बहाव को एक प्रचण्ड मोड़ दे दिया।

जैसे ही चुनावों की घोषणा की गई और आपातस्थिति एवं सेंसर में ढील दी गई तथा विरोधी नेताओं को छोड़ा गया, संसार ने आश्चर्य के साथ देखा कि भारत के राजनैतिक दृश्य में एक बहुरंगी परिवर्तन आ गया है। जगजीवनराम द्वारा शासक दल से अलग हो जाना श्रीमती गांधी के लिए वज्रपात जैसा सिद्ध हुआ। वह एक ऐसा भूचाल था, जिसने दल को भयानक रूप से हिला दिया और इंदिरा-विरोधी लहर को बहुत तेज़ कर दिया।

4

एक लम्बी रात की शुरुआत

25 जून 1975 को रात के नौ बजे हैं। श्री जयप्रकाश नारायण विरोधी दलों द्वारा आयोजित रामलीला मैदान की सभा से अभी-अभी दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित गांधी शांति संस्थान में लौटे हैं। वे यद्यपि शरीर से बहुत क्लान्त हैं, पर भीतर ही भीतर बहुत अधिक आह्लादित हैं।

अनेक सप्ताहों से वे भ्रमण करते रहे हैं, 12 से 14 घंटे तक प्रतिदिन व्यस्त रहे हैं। सार्वजनिक सभाओं, अन्तरंग वाद-विवादों तथा कार्यकर्त्ताओं एवं दलीय-नेताओं से बातचीत— इस सबने उन्हें थका दिया है।

लेकिन इस संध्या को वे बहुत हल्के दीख पड़ रहे हैं। तृप्ति की एक मुस्कान उनके होठों पर है। लोगों की प्रतिक्रिया जबरदस्त रही है। रामलीला मैदान की सभा अत्यन्त उत्साहवर्धक थी। श्री जयप्रकाश नारायण को अब विश्वास हो गया है कि जनता सरकार को बदल डालने के लिए व्यग्र है।

वस्तुत:, पिछले तीन या चार महीनों से उनकी यही आस्था रही है। उन्होंने विभिन्न राज्यों के विस्तृत दौरे किए हैं। बड़ी सभाओं और छोटे समूहों, दोनों के सामने वे बोले हैं। हर कहीं लोगों के बीच उन्होंने आश्चर्यजनक जागृति देखी है।

लेकिन विरोधी दलों के नेता जनता की इस मन:स्थिति को समझने में विफल रहे हैं। वे अपनी अलग-अलग सत्ताओं को एक संयुक्त दल में विलीन कर देने में अभी भी हिचकिचा रहे हैं। उन्हें यह भी विश्वास नहीं है कि इस समय छेड़ा गया कोई भी आन्दोलन सफल हो सकता है। जयप्रकाश बार-बार झींखते हैं कि जनता तो राजी है, पर दल नहीं है।

श्री जयप्रकाश नारायण श्री जगजीवनराम के सम्पर्क में रहे हैं और उनसे अनुरोध करते रहे हैं कि वे कांग्रेस के उस वर्ग का नेतृत्त्व करें जो सरकारी नीतियों का विरोधी है। लेकिन श्री जगजीवनराम शशोपंज में हैं कि ऐसे कदम के लिए ठीक समय अभी है या नहीं! श्री जयप्रकाश और मध्यस्थ श्री चंद्रशेखर के साथ 23 और 24 जून को अनेक बैठकें हुई हैं। 15 की रात को लगभग 10 बजे श्री जयप्रकाश ने चंद्रशेखर को फिर श्री जगजीवनराम के पास भेजा और उनसे प्रार्थना की कि उस विलम्बित घड़ी में भी वे कुछ करें। बाबूजी को अपने संदेश में उन्होंने जोर देकर कहा "इस संध्या को लोगों की प्रतिक्रिया हमने देखी है।

कुछ करने के लिए अभी भी समय है।" लेकिन अब भी वे कोई निर्णय नहीं ले पाते हैं।

श्री जयप्रकाश को बहुत सुबह ही विमान से पटना जाना है, इसलिए उनके समर्पित मित्र और सहयोगी राधाकृष्ण लगभग 11 बजे उनसे कहते हैं कि उन्हें अब लेट जाना चाहिए, जिससे प्रातः विमान पकड़ने से पहले कुछ नींद और आराम उन्हें मिल सके।

लगभग डेढ़ बजे बाहर खुले में सो रहा श्री राधाकृष्ण का पुत्र चंद्रहास आता है और अपने पिता को जगाकर सहमी हुई फुसफुसाहट में कहता है: "पुलिस गिरफ्तारी के वारन्ट लेकर आई है।" राधाकृष्ण बाहर आते हैं। पुलिस अफसर और उसके साथी क्षमा-सी मांगते हैं। वे श्री जयप्रकाश का वारंट दिखाते हैं।

श्री राधाकृष्ण के अनुसार श्री जयप्रकाश के दल में अथवा विरोधी नेताओं में किसी ने भी यह आशा नहीं की थी कि सरकार ऐसी चरम कार्यवाही करेगी।

अब राधाकृष्ण की पहली चिन्ता यह थी कि उस आधी रात के समय श्री जयप्रकाश को जगाने से कैसे बचा जाए! इसलिए वे पुलिस अधिकारी से पूछते हैं—क्या वे कुछ समय तक, कम से कम तीन या चार बजे तक रुक सकेंगे? क्योंकि उस समय तो विमान पकड़ने के लिए तैयार होने के उद्देश्य से उन्हें उठना ही होगा। 'श्री जयप्रकाश बहुत थके हुए हैं और उन्हें कुछ आराम चाहिए।' यह वे पुलिस अफसर को समझाते हैं। पुलिस वाले मान जाते हैं।

इसके बाद राधाकृष्ण सो नहीं पाते। जब ऐसा हो ही गया है, तब इस समय तत्काल उन्हें क्या करना चाहिए! वे उसी भवन में रह रही टेलीफोन आपरेटर को जगाते हैं और आदेश देते हैं कि जितने मित्रों से सम्भव हो सके सम्पर्क स्थापित करो। बम्बई, मद्रास, बंगलौर, पटना को तथा चंद्रशेखर, कृष्णकांत, मोरारजी देसाई समेत दिल्ली के विभिन्न लोगों को टेलीफोन किए जाते हैं। उस रात में अनेकों से सम्पर्क करना आसान नहीं था। मोरारजी के घर से उन्हें सूचना मिलती है कि उनकी भी गिरफ्तारी के आदेश लेकर पुलिस वहां पहुंच चुकी है।

तीन बजे अधीर पुलिस वाले राधाकृष्ण के दरवाजे को फिर खटखटाते हैं। वे पूछते हैं कि क्या अब आप श्री जयप्रकाश को जगा सकेंगे? उन्हें वायरलेस पर बार-बार निर्देश मिल रहे हैं और पूछा जा रहा है कि क्यों वे अभी तक जयप्रकाश नारायण को पुलिस स्टेशन नहीं ला सके हैं।

राधाकृष्ण तब भीतर जाते हैं और श्री जयप्रकाश को गहरी नींद में सोया पाते हैं। वे धीमे से उन्हें जगाते हैं और खबर देते हैं और जिला मजिस्ट्रेट सुशील कुमार द्वारा हस्ताक्षरित वारंट उन्हें पढ़कर सुनाते हैं। श्री जयप्रकाश अचकचा उठते हैं। तब राधाकृष्ण पूछते हैं कि क्या उन्हें अपनी गिरफ्तारी का

कोई अनुमान था ? जयप्रकाश स्वीकार करते हैं कि उन्हें प्रत्याशा नहीं थी कि सरकार ऐसा कदम उठाएगी। तभी उन्हें गिरफ्तार करने के लिए नियुक्त पुलिस अफसर भीतर आ जाता है। वह कहता है, "माफ़ कीजिए श्रीमन्, हमारे पास आदेश हैं कि आपको अपने साथ ले जाएं।" श्री जयप्रकाश सिर हिलाते हैं और कहते हैं, "मुझे तैयार होने के लिए आधा घंटा दो।"

राधाकृष्ण हड़बड़ाहट के साथ क्षण गिन रहे हैं और इन्तजार कर रहे हैं कि कम से कम उनके कुछ मित्र, विशेषकर चंद्रशेखर तो आ जाएं। जब जयप्रकाश तैयार हो जाते हैं, तो राधाकृष्ण एक प्याला चाय पीने का अनुरोध करते हैं। इसमें दस मिनट और लग जाते हैं। चंद्रशेखर का अभी भी कोई चिन्ह नहीं। अब श्री जयप्रकाश कहते हैं, "देर क्यों की जाए; अब चलें !" गांधी शांति संस्थान के भवन से इस दल की कूच से पहले ही टेलीफोन आता है और पता लगता है कि राजनारायण पकड़ लिए गए हैं।

राधाकृष्ण के साथ श्री जयप्रकाश बाहर आते हैं तो आश्चर्यपूर्वक देखते हैं कि पूरा क्षेत्र पुलिस के सिपाहियों से भरा हुआ है। कम से कम तीन लारियां भरकर पुलिस आई है और उन्होंने गांधी शांति संस्थान भवन के चारों ओर घेरा डाल लिया है। जैसे ही जयप्रकाश पुलिस की गाड़ी में बैठते हैं, एक तेज़ आती हुई टैक्सी रुकती है और चंद्रशेखर बाहर निकलते हैं। चंद्रशेखर का अभिवादन करने से अधिक जयप्रकाश कुछ नहीं कर पाते, क्योंकि जिसमें वे बैठे हैं, पुलिस की वह गाड़ी तेजी से चल देती है। राधाकृष्ण के साथ चंद्रशेखर अपनी गाड़ी में श्री जयप्रकाश के पीछे-पीछे जाते हैं। श्री जयप्रकाश को पार्लियामेंट स्ट्रीट पुलिस स्टेशन ले जाया जाता है। एस० पी० और डी० एस० पी० सभी श्री जयप्रकाश के प्रति अत्यन्त विनम्र हैं।

जिन्हें हालात के बारे में टेलीफोन पर बताया गया है, उनमें से कुछ ने आगे दूसरों को खबर कर दी है। इतनी सुबह भी एक छोटी-सी भीड़ और थोड़े-से संवाददाता पुलिस-स्टेशन के सामने इकट्ठे हो गए हैं। पुलिस ने उन्हें कुछ दूरी पर रोक दिया है।

श्री जयप्रकाश को बिठाकर पुलिस सुपरिंटेन्डेंट एक मिनट के लिए क्षमा मांगता है और दूसरे कमरे में जाता है। एक पल में ही वह वापस आता है और श्री चंद्रशेखर को एक ओर ले जाकर कहता है, "श्रीमन् ! बात यह है कि एक दूसरा दल आपको लाने के लिए आपके घर गया है।" चंद्रशेखर मुस्कुराते हैं और उत्तर देते हैं, "अब क्योंकि मैं यहां हूं ही, पुलिस मुझे गिरफ्तार कर सकती है।" और पुलिस वैसा ही करती है। इससे श्री जयप्रकाश को आश्चर्य होता है।

उन्होंने सोचा था कि विरोधी पक्ष के कुछ चोटी के नेताओं को ही पकड़ा गया है। अब स्पष्ट है कि सरकार ने काफी विस्तृत जाल फेंका है।

पुलिस अफसर जयप्रकाश और चंद्रशेखर को चाय पिलाता है। जब चंद्रशेखर पूछते हैं कि श्री जयप्रकाश को कहां ले जाया जा रहा है, तब श्री जयप्रकाश का लक्ष्य स्थान बताने से पुलिस इंकार कर देती है। राधाकृष्ण पुलिस अफसर से पूछते हैं—श्री जयप्रकाश की तबीयत क्योंकि ठीक नहीं है, इसलिए क्या उनके व्यक्तिगत सेवक को साथ जाने दिया जाएगा? यह प्रार्थना भी ठुकरा दी जाती है। श्री जयप्रकाश राधाकृष्ण से कहते हैं, "ठीक है। हो सके तो कुछ किताबें मेरे पास भेज देना।"

राधाकृष्ण तब श्री जयप्रकाश से पूछते हैं कि क्या जनता के लिए कोई संदेश आप देना चाहेंगे? "संवाददाता हमारे पास आएंगे और हमारे कार्यकर्त्ता भी जानना चाहेंगे। क्या उनके लिए कुछ कहना आप पसंद करेंगे?"

श्री जयप्रकाश आधा पल सोचते हैं। तब राधाकृष्ण की ओर सीधे देखते हैं और कहते हैं: "विनाश काले विपरीत बुद्धिः"। वे कहते हैं, यही मेरा संदेश है।

और इस तरह यह लम्बी रात शुरू होती है। आपातस्थिति अपने सहयोगियों, आतंक और सेंसर के साथ एक चोर की तरह रात के अंधेरे में देश में घुस आती है। पिछली अर्धरात्रि और 26 जून की प्रातः 8·30 बजे तक विरोधी पक्ष के 83 शीर्षस्थ नेताओं को पकड़ लिया गया है। अनेक, जिनके विरुद्ध वारंट हैं, भूमिगत हो जाते हैं और चोरी-छुपी गतिविधियों के एवं विरोध के लिए एक संगठन जैसा कुछ निर्मित करने की कोशिश करते हैं। पुलिस लाठियों, बेंत की ढालों और लोहे की टोपों के साथ सड़कों पर उतर पड़ी है। पूरी तरह संशस्त्र कितने ही अन्य लारियों में भरे हुए और घोड़ों की पीठों पर चढ़े हुए, चौराहों पर खड़े हैं। दिल्ली की फ्लीट स्ट्रीट बहादुरशाह जफर मार्ग की बिजली काट दी गई है जिससे कि सुबह कोई भी अखबार न निकल सके। नगर के अन्य हिस्सों में स्थित अन्य अखबारों के साथ वैसा नहीं किया गया है और वे बिजली काट दिए जाने से बच गए हैं।

रहस्यमय मनःस्थिति लिए लोग जागते हैं और घंटों बाद तक भी देश में घट गई गम्भीर घटनाओं के बारे में कुछ नहीं जान पाते। अन्त में इस-उसकी फुस-फुसाहट के माध्यम से ही उन्हें यह गम्भीर समाचार मिलता है।

पार्लियामेंट स्ट्रीट से श्री जयप्रकाश नारायण को हरियाणा सीमा के पार सीधे सोहना ले जाया जाता है। जैसे ही उनकी कार लक्ष्य पर पहुंचती है, लगभग ठीक उसी क्षण एक दूसरी कार आती है और श्री मोरारजी देसाई उसमें से बाहर निकलते हैं। दोनों नेता एक दूसरे का अभिवादन करते हैं। मोरारजी भाई सिर्फ

इतना कहते हैं, "जो भगवान की मर्ज़ी !" यद्यपि दोनों नेता एक ही भवन में रखे जाते हैं, फिर भी खाने के समय पर भी उन्हें मिलने की इजाज़त नहीं है। वे अलग रखे गए हैं और उनकी ज़रूरतें अलग ही पूरी की जाती हैं। तीन दिन बाद श्री जयप्रकाश नारायण को नई दिल्ली के आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइंसेज़ में ले आया गया, क्योंकि उनके पेट में बहुत तेज़ दर्द उठ आया था।

राधाकृष्ण पार्लियामेंट स्ट्रीट थाने से घर लौट आए और सोचने लगे कि वे स्वयं कितनी देर तक मुक्त रह सकेंगे। पुलिस किसी भी क्षण उन्हें ले जाने आ सकती है। इसलिए दोपहर तक वे भूमिगत हो गए। शीघ्र ही उन्होंने अन्य कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध स्थापित किया। यह बड़ा ही कठिन काम था, क्योंकि हर एक ही भूमिगत था और उनके पते अज्ञात थे।

लोक संघर्ष समिति के महासचिव श्री नानाजी देशमुख, रानी झांसी मार्ग पर स्थित दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान भवन की छठी मंज़िल पर अपने कमरे में सो रहे थे। आधी रात बीत चुकी थी। लगातार बजती टेलीफोन की घंटी ने नानाजी को रिसीवर उठाने के लिए मजबूर किया। उन्हें आश्चर्य हुआ, जब एक स्त्री की आवाज़ ने उन्हें चेतावनी दी कि ठीक एक बजे आपकी जगह को पुलिस घेर लेगी और बच भागने के लिए आपके पास एक घंटे से भी कम समय है।

नानाजी ने कुर्ता और धोती एक थैले में डाले और बाहर खिसक लिए और दस मील दूर एक बंगले में पहुंच गए। इस बीच टेलीफोन और व्यक्तिगत संदेश-वाहक इस-उस को इशारा करने के लिए लगातार व्यस्त रहे। सुबह दिन निकलने तक आधा दर्जन सहयोगी दस मील दूर के उस बंगले में पहुंच चुके हैं। उनमें जनसंघ के एम० एल० खुराना और सुब्रह्मण्यम् स्वामी, संगठन कांग्रेस के रवीन्द्र वर्मा, भारतीय मज़दूर सभा के दत्तोपन्त ठेंगड़ी हैं। शीघ्र ही गांधी शांति संस्थान के राधाकृष्ण, सोशलिस्ट पार्टी के सुरेन्द्र मोहन, जनसंघ के सुन्दर सिंह भंडारी और दिल्ली के भूतपूर्व मेयर केदारनाथ साहनी भी समूह में शामिल हो जाते हैं।

इन नेताओं ने मिलकर बातचीत की और प्रतिरोध की गतिविधि को प्रेरित करने और चलाने के लिए भूमिगत संगठन निर्मित किया।

(अगस्त 1975 में बम्बई में की गई लोक संघर्ष समिति की बैठक में देश के सभी हिस्सों से कार्यकर्ता आए और यहां गतिविधि का एक कार्यक्रम निर्धारित किया गया। बैठक में योजना बनाई गई कि (1) 14 नवम्बर 1975 से 26

जनवरी 1976 तक राज्यों की राजधानियों और ज़िला-केन्द्रों में सत्याग्रह किए जाएं। (2) भूमिगत गतिविधि के लिए तथा जेल में पड़े कार्यकर्ताओं के परिवारों की आर्थिक सहायता के लिए धन-संग्रह किया जाए। (3) जेल में पड़े साथियों से सम्पर्क किया जाए। (4) देश और विदेश में प्रचार संगठित किया जाए तथा (5) आन्दोलन को अहिंसक बनाए रखा जाए।

लोक संघर्ष समिति ने श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी, एक गुजराती मंत्री श्री मकरन्द देसाई, श्रीमती नयनतारा सहगल, श्री आर० जेठमलानी, श्री रजनी कोठारी, श्रीमती लैला फर्नेंडीस तथा श्री केदारनाथ साहनी को काम सौंपे अर्थात् उनकी सेवाएं प्राप्त कीं।

विभिन्न सदस्यों द्वारा दौरे के लिए क्षेत्र बांट दिए गए और उनके बीच काम विभाजित कर दिया गया। श्री राधाकृष्ण को दक्षिणी राज्यों का काम सौंपा गया, जहां उन्होंने दौरे किए और गतिविधि को संगठित किया। यह नहीं कि अधिक-कुछ किया जा सका, लेकिन इस स्तर पर उनका ज़ोर आन्दोलन को जीवित रखने पर ही रहा ताकि जिस भय ने जनता को जकड़ लिया था, वह उसे पूरी तरह जड़ न बना सके। कार्यक्रम यह था कि विरोध के विविध अहिंसक कार्यों से प्रतिरोध को बनाए रखा जाए। जनता तक सूचनाएं पहुंचाई जाएं और और लोगों को बताया जाए कि समिति का संघर्ष चल रहा है, जिससे लोग यह जानें कि आत्मा कुचली नहीं जा सकी है और कार्यवाही की तथा शीघ्र परिवर्तन की सम्भावनाएं अभी हैं।

श्री राधाकृष्ण के घर पर पुलिस उनके परिवार को तंग कर रही थी। उनकी गिरफ्तारी के आदेश जारी हो चुके थे और पुलिस लगातार उनके घर जा रही थी और निगरानी रख रही थी। उन्हें भगोड़ा घोषित कर दिया गया था और उनकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया गया था। पुलिस उनका फर्नीचर, टेली-विज़न सेट, रसोई के बर्तन, और यहां तक कि खाना बनाने की गैस का सिलिन्डर तक उठा ले गई थी।

जो पुलिस अधिकारी आदेश-पालन के लिए आया था उसने बहुत-कुछ शर्म से लाल होकर श्रीमती राधाकृष्ण से कहा था, "बहन जी, मैं क्या कर सकता हूं! आदेश ऐसे ही हैं। लेकिन अपने घर से अपना गैस सिलिन्डर मैं भिजवा दूंगा।" श्रीमती राधाकृष्ण ने इसे अस्वीकार करते हुए कहा था कि तब शायद आपको यह दूसरा सिलिण्डर ले जाने के लिए फिर से आना पड़ेगा।

एक गांधीवादी कार्यकर्ता ने संयोगवश प्रधानमंत्री को बताया कि श्रीमती राधाकृष्ण को भारी तंगी उठानी पड़ी, क्योंकि पुलिस उनकी रसोई का सामान तक उठा ले गई। कहा जाता है कि श्रीमती गांधी जवाब में पत्थर की तरह चुप

हो गई। अन्त में कुछ मित्रों के कहने पर अगस्त 1975 में श्री राधाकृष्ण अपने परिवार को बम्बई में एक मित्र के घर ले गए। राधाकृष्ण बंगलौर, मद्रास और बम्बई से ही काम कर रहे थे। प्रचार-सामग्री छापने और बांटने के लिए प्रबन्ध कर लिए गए थे और कार्यकर्ताओं का संगठन किया जा चुका था।

6 सितम्बर 1975 को श्री राधाकृष्ण ने पुलिस के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। इस आत्म-समर्पण का कारण परिवार को तंग किया जाना अथवा व्यक्तिगत कष्ट नहीं था। ऐसा उन्होंने गांधी शान्ति संस्थान के अध्यक्ष श्री आर० आर० दिवाकर की प्रेरणा से किया था। श्री दिवाकर ने उनसे कहा था कि एक सच्चे गांधीवादी को गुप्त रूप से नहीं, खुले में काम करना चाहिए। उनका विश्वास था कि भूमिगत गतिविधि गांधी दर्शन की आत्मा के विरुद्ध है; और यह भी कि गांधी शान्ति-संस्थान अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति में उलझता जा रहा है और इस प्रकार संस्थान को हानि पहुंच रही है। श्री राधाकृष्ण ने कहा कि यदि उनकी भूमिगत गतिविधि से, जिसके वे सेवक हैं, उस संस्थान को हानि पहुंचती है, तो वे स्वयं को गिरफ्तार करा देंगे।

गिरफ्तार होने पर श्री राधाकृष्ण तिहाड़ जेल में रखे गए। लेकिन फरवरी 1976 में जेल से आने के बाद भी पुलिस उन्हें परेशान करती रही। गांधी शान्ति संस्थान के दफ्तर पर दो बार छापे मारे गए। सरकार का कहना था कि गांधी शान्ति संस्थान को विदेशी सूत्रों से पैसा मिलता है और इसका प्रमाण खोज निकालने के लिए ही वे संस्थान के भवन में घुसे हैं। सरकार यह भी मालूम करना चाहती थी कि संस्थान का धन राजनीतिक गतिविधि के लिए तो नहीं दिया जा रहा है। उन्हें इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं मिला, लेकिन फिर भी संस्थान की सहायता-राशि रोक दी गई और तंग किया जाना जारी रहा।

नानाजी जुलाई 1975 में पकड़े गए और उनका स्थान श्री रवीन्द्र वर्मा ने लिया। जब ये भी दिसम्बर 1975 में गिरफ्तार हो गए तो श्री थेंगड़ी इनकी जगह आए। आपत्काल के 19 महीनों के दौरान भूमिगत गतिविधि का लक्ष्य यही रहा कि आपातस्थिति के विरुद्ध संघर्ष का झंडा लहराता रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सूचना-पत्रक, बुलेटिन जारी किए जाते थे, जिनमें भूमिगत आन्दोलन की खबरें होती थीं और पूरे देश में घटने वाली घटनाओं का ब्यौरा रहता था। पूर्ण सेंसर के कारण सरकारी सूचनाओं के अतिरिक्त और कोई खबर जनता को नहीं मिल पाती थी। इस आन्दोलन में दो दौर सत्याग्रह के भी शामिल किए गए थे। पहला दिल्ली और अन्य नगरों में जून 1975 में एक पखवाड़े तक चलना था और दूसरा इतनी ही अवधि तक नवम्बर 1975 में किया जाना था।

भूमिगत कार्यकर्ताओं ने अपने को और अपनी सामग्री को संचरित करने के बड़े ही कुशल तरीके निकाले थे। अक्सर गैर कानूनी साहित्य को वितरण के लिए ले जाने का काम जवान लड़कियों और स्त्रियों से लिया जाता था। जब भूमिगत पुरुष यहां से वहां जाते थे तो वेश बदल लेने के साथ-साथ वे अपने साथ कोई स्त्री, और हो सके तो बच्चा गोदी में लिए स्त्री रखते थे। ऐसे पारिवारिक समूह पर कठिनाई से ही शक हो पाता था।

छापने और साइक्लोस्टाइल करने की बहुत छोटी और हल्की मशीनें इस्तेमाल में लाई जाती थीं। शक न पड़े इसलिए स्टेन्सिल अधिकतर हिन्दी जानने वाली किसी बंगाली या दक्षिण भारतीय लड़की द्वारा हाथ से काटे जाते थे और इन लड़कियों को बार-बार बदल दिया जाता था। कार्यकर्ता कभी टैक्सी में सफर नही करते थे। वे सार्वजनिक परिवहन की बस या स्कूटर ही लेते थे।

भूमिगत आन्दोलन की प्रमुख गतिविधि बुलेटिन, चौपन्ने सूचना-पत्रक आदि तैयार करना और जनता में संचरित करना था। हर राज्य पखवाड़े में एक बार एक हरकारा दिल्ली भेजता था, जो खबरें इकट्ठी करके लाता था और हर बुलेटिन 20000 लोगों को डाक से भेजा जाता था। 'सत्य समाचार' एक पाक्षिक था जो हर महीने की बारहवीं और छब्बीसवी तारीख को दिल्ली से जारी किया जाता था। यह पाक्षिक छः महीने तक प्रभावीं ढंग से काम करता रहा और तब पुलिस ने इसके भूमिगत कार्यालय पर छापा मारा। इसके हर अंक में फुलस्केप आकार के टाइप और साइक्लोस्टाइल किए हुए 16 से 20 तक पृष्ठ रहते थे। इनमें श्री जयप्रकाश के सन्देश, जेल में मर जाने वाले शहीदों की सूची और बन्दीगृहों में पड़े और बाहर कार्यरत कार्यकर्ताओं के उत्साह को बनाए रखने के उद्देश्य से आन्दोलन की गतिविधियों के बारे में विशेष सूचनाएं दी जाती थीं। इस पत्रक का सम्पादन आर्गनाइज़र के सम्पादक श्री वी० पी० भाटिया तब तक करते रहे जब तक इसे बन्द ही न कर दिया गया। राज्यों से निकलने वाले अन्य प्रसिद्ध बुलेटिन ये थे—दिल्ली से 'जनवाणी' और 'मशाल', वाराणसी से 'दर्पण', हैदराबाद से 'वज्रयुग', बम्बई से 'असली समाचार' तथा गोहाटी से 'सत्यव्रत'। जार्ज फर्नेंडीस अपने गुप्त स्थान से अपना निजी पत्रक निकालते थे जिसमें साहित्यिक और काव्यात्मक स्वाद बहुत अधिक रहता था। इसे नियमित रूप से श्रीमती गांधी को भेजा जाता था।

भूमिगत साहित्य को संचरित करने के अपराध में 7000 कार्यकर्ता पकड़े गए थे। दो महीने के सत्याग्रह में 80000 गिरफ्तार हुए—कर्नाटक में 15000, केरल में 9000, बिहार और उत्तर प्रदेश प्रत्येक में 8000 और दिल्ली में 5000। 300 ज़िलों में सत्याग्रह संगठित किया गया। सब तरह के राजनीतिक बंदियों की कुल संख्या 140000 थी।

गर कानूनी साहित्य, चौपन्ने, पर्चे और साइक्लोस्टाइल किए हुए पत्नक अक्सर सरकारी प्रेषण-कार्यालयों के माध्यम से सरकारी प्रेषण-गाड़ियों में, सरकारी प्रचार-सामग्री के बंडलों के बीच छुपाकर और कभी-कभी परिवार-नियोजन के फोल्डरों और चौपन्नों के लिए बने लिफाफों में भेजे जाते थे।

लेकिन सरकार ने भूमिगत कार्यकर्ताओं के विरुद्ध जो भयानक दमन-चक्र चला रखा था और पकड़े जाने पर उन पर जो क्रूरताएं की जाती थीं, उन्होंने इस संघर्ष को दूसरे स्वतन्त्रता-युद्ध के स्तर तक ऊंचा उठा दिया था। इस संघर्ष ने भी अनेक महान शहीदों और वीर पुरुषों को जन्म दिया। इनमें अधिकतर अनदेखे और अनगाए ही रह गए।

चोटी के नेताओं के साथ आम तौर से कुछ शिष्टता बरती जाती थी और जेल में भी उन्हें कुछ मूलभूत सुविधायें दी जाती थीं। यह तो अनाम, निचले कार्यकर्ता ही थे जिन्हें सरकारी दमन का अधिकतर बोझा ढोना पड़ा। सिर्फ उन्हें ही नहीं उनके माता-पिताओं और सम्बन्धियों को भी बहुत-कुछ सहना पड़ा। राजनीतिक बन्दियों पर की गईं अधिकतर नृशंसताएं और क्रूरताएं पुलिस की हवालातों में ही की गईं। एक बार जब बन्दियों को नियमित जेलों में भेज दिया जाता था तो उनके साथ अधिक अच्छा वर्ताव किया जाता था। युवकों और विशेषकर छात्रों ने संघर्ष को सबसे विशद और सबसे कीमती योगदान दिया और झंडे को ऊंचा रखा।

इन बहादुर कार्यकर्ताओं में हेमन्तकुमार विश्नोई का नाम 1975-76 के स्वतन्त्रता-समर के दौरान साहसपूर्ण कृत्यों के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। जब हेमन्तकुमार दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ का मंत्री चुना गया था तभी वह अधिकारियों की नज़रों में आ गया था। वह छात्रों के एक उग्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् से निकट रूप में सम्बन्धित था जिसने विश्वविद्यालय के छात्र संघों के 70 प्रतिशत स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया था। इसलिए परिषद सरकार की निगरानी का लक्ष्य बन गई थी। हेमन्त और विद्यार्थी परिषद् के उसके साथियों ने राज्यों में साफ-सुथरे प्रशासन के लिए श्री जयप्रकाश के आन्दोलन से सम्बन्धित मुद्दों को आधार बनाकर विश्वविद्यालय का चुनाव लड़ा था और उसे जीता था।

बीच के कद और हल्की मूंछों वाला, सौम्य प्रकृति का युवक हेमन्त ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि उसकी त्वचा के नीचे फौलाद भरी है। वह राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का सदस्य था और वाणिज्य-अर्थशास्त्र का स्नातकोत्तर छात्र था। वह एक मध्यवर्गीय शिक्षाविद् परिवार से सम्बन्ध रखता था जो यमुना-पार की एक सादी बस्ती में रहता था। हेमन्त के पिता डा० देवेन्द्र कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय में

पढ़ाते हैं। वे स्वतन्त्रता से पहले के दिनों के राष्ट्रवादी हैं और आज़ादी के लिए कांग्रेस-आन्दोलन में उन्होंने सत्याग्रह किया था।

जून 1975 में अपने अन्य कार्यकर्ता साथियों के साथ हेमन्तकुमार हरियाणा राज्य के रोहतक नगर में एक छात्र-शिविर में भाग ले रहा था। शिविर को महीने के अन्त तक चलना था, लेकिन हेमन्त को 14 जून को दिल्ली विश्वविद्यालय की एक परीक्षा में बैठना था। इसलिए वह एक दिन के लिए राजधानी लौट आया था।

जब वह दिल्ली पहुंचा तो नगर इलाहाबाद के फैसले से तथा प्रधान मन्त्री, संघीय सरकार और देश पर इसकी प्रतिक्रियाओं के अनुमानों से भरा हुआ था। उसने वातावरण को तनावपूर्ण पाया। परीक्षा-केन्द्र तक पहुंचने के लिए उसे लम्बी दूरी पैदल तय करनी पड़ी, क्योंकि दिल्ली परिवहन की बहुत ही थोड़ी बसें सड़कों पर थीं। बसों से प्रधान मन्त्री निवास के सामने श्रीमती गांधी के समर्थन में जन-प्रिय प्रदर्शनों के लिए लोगों को ढोने का काम लिया जा रहा था। अगले दिन हेमन्त छात्र-शिविर में रोहतक लौट गया।

जब 26 जून को आपातस्थिति की घोषणा हुई, तब हेमन्त रोहतक में ही था। शिविर को 30 जून को समाप्त होना था, लेकिन ज़िला मजिस्ट्रेट ने लड़कों से कहा कि वे इसे जल्द ही खत्म कर दें। 28 जून को शिविर समेट दिया गया और हेमन्त दिल्ली लौट आया।

इस बीच दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष अरुण जेटली को पुलिस पकड़ ले गई थी। पुलिस जेटली के घर पहुंची और उसके बारे में पूछा। व्यवसाय से वकील उसके पिता ने बताया कि अरुण घर पर नहीं है। इस पर पुलिस ने तलाशी लेने के लिए घर में घुसना चाहा। अरुण के पिता ने तलाशी के वारंट के बिना उन्हें घर में नहीं घुसने दिया और ऐसा वारंट पुलिस के पास था नहीं। अब पुलिस उसके पिता को ही थाने ले गई और उन्हें वहां रोके रखा।

अगले दिन अरुण ने श्री जयप्रकाश की गिरफ्तारी के विरोध में छात्रों का एक जलूस निकला। वह कुछ लड़कों को इकट्ठा करने में सफल हो गया था। जलूस नारे लगाता हुआ विश्वविद्यालय क्षेत्र में चारों ओर घूमा। इसके बाद अरुण विश्वविद्यालय के काफी हाउस में जा बैठा। कुछ पलों के भीतर ही पुलिस ने काफी हाउस को घेर लिया और मीसा के अन्तर्गत अरुण को गिरफ्तार करके ले गई और उसे तिहाड़ जेल में रख छोड़ा।

अरुण जेटली की गिरफ्तारी के बाद पुलिस हेमन्त विश्नोई की खोज में जुटी। जब हेमन्त दिल्ली लौटा तो वह घर नहीं गया। अपनी वापसी के बारे में घरवालों को उसने बस खबर कर दी। अधिकतर नेता भूमिगत हो गए थे और कोई नहीं जानता था कि कौन कहां है। पहले से ही निर्मित कोई कार्यक्रम अथवा कार्यवाही

की कोई योजना मौजूद नहीं थी। वह नहीं जानता था कि साथी छात्र कार्यकर्ताओं से वह कहां सम्पर्क करे। अपने साथियों के परिवारों को टेलीफोन करने का साहस वह नहीं कर सकता था।

उसके दिमाग में वैसे यह दृढ़ निश्चय था कि आम गिरफ्तारियों का विरोध करने के लिए किसी तरह का कोई आन्दोलन आरम्भ अवश्य किया जाना चाहिए। इस बीच वह अपने उन मित्रों के यहां ठहरता रहा जिनका छात्र-आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध नहीं था। और इसलिए उन पर कोई शक नहीं किया जा सकता था। क्रमशः उसने संघर्ष-समिति से और अभी तक मुक्त एवं भूमिगत अन्य साथियों से सम्पर्क स्थापित कर लिया।

वह अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के महासचिव आर० के० भाटिया से मिलने में सफल हो गया और उनके माध्यम से वह कुछ अन्य कार्यकर्त्ताओं से भी मिला। इन सबने कार्यवाही की एक मोटी योजना बनाई। योजना यह थी कि पहले छात्रों के आम समुदाय से सम्बन्ध स्थापित किया जाये और तब दलों के नेता नियुक्त किये जायें, जिन्हें प्रचार का और साथी छात्रों के साथ विचार-विनिमय एवं बातचीत का काम सौंपा जाए।

हेमन्त का विभिन्न कालेजों में काफी विस्तृत मेलजोल था। इसलिए सब जगह जाकर दलीय नेता चुनने का आरम्भिक काम उसे ही सौंपा गया। इसके बाद दरियागंज में एक कार्यालय बना लिया गया, जहां सब लोग मिलने लगे, समस्याओं पर विचार करने लगे और गतिविधियों के कार्यक्रम तैयार करने लगे। 10 जुलाई को पुलिस ने इस कार्यालय पर छापा मारा। इस जगह किये गये एक टेलीफोन को और दिल्ली पहुंचने की सूचना देते हुए बम्बई विद्यार्थी परिषद् के एक नेता के तार को पुलिस ने पकड़ लिया था। दरियागंज के कार्यालय में पहुंचकर पुलिस ने आर० के० भाटिया, नरेश गौड़ और दो अन्य कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया।

अगली सुबह हेमन्त ने दरियागंज कार्यालय को टेलीफोन किया। उसे पिछली रात की घटना का कोई ज्ञान न था। टेलीफोन पर उसे उल्टे-सीधे जवाब मिले। उसे शक हो गया और इसके बाद वह दरियागंज से दूर-दूर ही रहा। लगभग आधे दर्जन कार्यकर्त्ता पुलिस के जाल में फंस गये।

छापा पूर्वीय दिल्ली की पुलिस ने मारा था। गिरफ्तार लोगों को शाहदरा थाना ले जाया गया। आठ दिनों तक उन्हें हवालात में रखा गया। भाटिया से सूचनाएं प्राप्त करने के लिये उसे हवालात में 36 घंटों तक लगातार खड़े रखा गया।

दिल्ली विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के अध्यक्ष और अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के उपाध्यक्ष श्री ओम प्रकाश कोहली को भी पकड़कर हवालात में बंद कर

दिया गया था। कोहली पोलियो के शिकार हैं और एक टांग से लंगड़े हैं। फिर भी एक पूरे दिन और रात उन्हें खड़े रखा गया। पूलिस ने उर्दू में लिखे एक वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने के लिए उन्हें मजबूर करने की कोशिश की। कोहली ने तब तक हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया जब तक वक्तव्य उन्हें पढ़कर नहीं सुना दिया जाता। इस पर पुलिस ने उन्हें ठोकरों और थप्पड़ों से मारा। जब अब भी उन्होंने वैसा करने से इंकार किया तो थानेदार ने उन्हें दूसरे कमरे में चलने के लिए कहा। जब श्री कोहली बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि अगले ही कमरे में डी० एस० पी० बैठा है। उन्हें आशा हुई कि डी० एस० पी० शायद अधिक युक्ति-संगत होगा और वे झपटकर उसके कमरे में पहुंच गए और थानेदार की शिकायत उससे की। डी० एस० पी० यू० एन० बी० राव ने सख्ती से कहा, "तब तुम उस वक्तव्य पर हस्ताक्षर क्यों नहीं कर देते?" कोहली ने कहा कि जब तक उस वक्तव्य में क्या है, यह मुझे नहीं बताया जायेगा मैं उस पर हस्ताक्षर नहीं करूंगा। इस पर डी० एस० पी० ने अकड़कर उत्तर दिया, "मैं देखूंगा कि तुम हस्ताक्षर करने से कब तक इंकार करते हो।" और कोहली को उसने थानेदार को सौंप दिया। अब कोहली को दूसरे कमरे में ले जाया गया और निर्दयता से पीटा गया। सौभाग्यवश मीसा के अंतर्गत उनके वारंट जारी हो चुके थे और उन्हें जेल ले जाया ही जाना था क्योंकि हवालात में और उन्हें अधिक रोका नहीं जा सकता था।

हेमन्त विश्नोई अब शिकारियों से घिरा जीवन जीने लगा। खाने, काम करने और सोने का उसका कोई निश्चित स्थान नहीं रहा। पुलिस उसकी सूंघ पर थी और वह दो लगातार रातों तक एक ही जगह नहीं सोता था। अपने साथियों से वह यहां-वहां के चायघरों में मिलता था और तब वे लोग अगली योजनाओं पर बातें करते हुए पैदल निकल पड़ते थे।

अब तक छात्र-नेताओं ने एक काफी सुसंगठित जाल तैयार कर लिया था। उनकी अपनी गुप्त भाषा थी। अधिकारियों की एक 'मीनारनुमा' श्रृंखला तैयार कर ली गई थी, जिसकी अलग-अलग मंजिलों को ठीक उतनी ही सूचना दी जाती थी, जितनी उनकी अपनी गतिविधि के लिए आवश्यक होती थी। इस प्रकार पकड़े जाने पर वे अधिक सूचना देने में असमर्थ रहते थे।

16 जुलाई को विश्वविद्यालय को खुलना था। 13 और 14 जुलाई की रात को पुलिस ने ऐसे लगभग 50 छात्र नेताओं को पकड़ लिया, जिनका उनके कालेजों में कुछ भी प्रभाव था।

संघर्ष समिति ने एक पैम्फलेट तैयार कराया जिसमें गिरफ्तारियों की निंदा की गई थी और छात्रों से अनुरोध किया गया था कि वे इस दमन के खिलाफ लड़ें। छात्रों से कहा गया था कि 25 जुलाई का दिन वे मांग-दिवस के रूप में

मनायें और विश्वविद्यालय को बंद कराएं। हेमन्त ने पैम्फ्लेट को छात्रों के बीच बहुत विस्तृत रूप में बंटवाया।

पुलिस को इसकी सूचना मिल गई। लेकिन वे पैम्फ्लेट छापने और वितरित करने वालों पर हाथ नहीं डाल सके। अतः उन्होंने उन लोगों के परिवारों, बुजुर्ग माता-पिताओं, भाइयों, यहां तक कि बच्चों तक को तंग करना शुरू कर दिया। हेमन्त के पिता को धमकी दी गई कि उन्हें गिरफ्तार कर लिया जायेगा और घर पर सील लगा दी जायेगी। उन्हें बताया गया कि उनका बेटा जहां दीखे वहीं उसे गोली मार देने के आदेश पुलिस के पास हैं।

जब पुलिस ने उनके घर को सील करने का फैसला लिया तो उन्हें पहले ही पता लग गया और उन्होंने पुलिस को वैसा करने से रोकने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के यहां अर्जी दे दी। उनका तर्क था कि घर हेमन्त का नहीं है और वह अपने पिता पर आश्रित मात्र है।

25 और 26 जुलाई के दिन विश्वविद्यालय में आतंक के दिन थे। इन दो दिनों में विश्वविद्यालय क्षेत्र में छात्रों से अधिक पुलिस के सिपाही रहे; अध्यापकों को, दिल्ली विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के सदस्यों को और विद्यार्थी-परिषद् से जिसका किसी भी समय सम्पर्क रहा, उसे ही गिरफ्तार कर लिया गया। लगभग 186 लोगों को गिरफ्तार किया गया, जिनमें 120 विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के तो विभागाध्यक्ष समेत लगभग सभी अध्यापकों को पकड़ लिया गया। यहां तक कि विभाग में पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी।

एक अध्यापक श्री गणेशशंकर पालीवाल अपने बगीचे में पानी दे रहे थे। उनकी पत्नी रिश्तेदारों के यहां गई थी और दो छोटे बच्चों को पति के पास छोड़ गई थी। पुलिस उनके घर आई और उस घर की दिशा में भाग आए एक चोर को ढूंढ़ने का बहाना लेकर घर में घुस गई। पालीवाल भी उनके पीछे-पीछे घर में आये। अब पुलिस ने उनका नाम पूछा। उन्होंने अपना नाम बताया। पुलिस ने उनसे प्रार्थना की कि वे एक मिनट के लिए बाहर आ जाएं। जब वे बाहर आए तो उन्हें धकेलकर सामने खड़ी पुलिस की गाड़ी में डाल दिया गया और गाड़ी चल दी। वे अपने पड़ोसियों तक को खबर नहीं कर सके। जब बाद में उनके बच्चों ने रोना शुरू किया, तब पड़ोसी आए।

इस सबने विश्वविद्यालय समाज में एक भय और आतंक पैदा कर दिया और यही चाहा भी गया था। गिरफ्तार अध्यापकों के परिवारों को घोर आर्थिक कष्ट सहना पड़ा क्योंकि अपने साधारण वेतनों के बल पर वे बस गुजारा ही कर पाते थे। रिश्तेदार भी उनकी मदद करने में डरते थे। कोई उनसे मिलने नहीं जाता था। पड़ोसी भी उनसे बात करने से बचते थे।

हेमन्त पुलिस की आंखों में धूल झोंकता रहा और छात्र वर्ग में अपना काम करता रहा। कुछ कालिजों में वह गया भी और छात्रों के सामने बोला भी। आत्माराम सनातन धर्म कालेज में उसने पर्चे बांटे। पुलिस सनातन धर्म कालेज संघ के मंत्री मदन भाटिया को पकड़ ले गई। उसके साथ जो वर्ताव किया गया वह अमानवीय था। मदन के पास समिति द्वारा तैयार किए गए कुछ पर्चे पाए गए थे। पुलिस मदन से यह जानना चाहती थी कि ये पर्चे उसे कहां से मिले और ये कहां और किसके द्वारा छापे गए हैं।

जब पुलिस मनचाही सूचना उससे नहीं निकाल सकी तो वह लड़के को उसके घर ले गई और उसके पिता के सामने उसे पीटा। किसी में, यहां तक कि पड़ो-सियो में भी यह साहस नहीं हुआ कि वे निंदा अथवा विरोध के रूप मे एक उंगली भी उठा सकें। वे सिर्फ इतना ही कर सके कि जैसे ही पुलिस को आते देखा अपने-अपने घरों में घुस गए और अपने दरवाज़े वंद कर लिए। पुलिस का पड़ौस में आना ऐसा आतंक लोगों के दिलों में पैदा कर देता था।

कहानी का अंत यहीं नहीं हो गया। मदन को छावनी के पुलिस थाने में लाया गया, जो अपने क्रूर तीसरे दर्जे के तरीकों के लिए बदनाम था। यहां उसे कोठरी में बंद कर दिया गया और उसके शरीर के बालों पर जलती मोमबत्ती लगाई गई। अन्ततः मदन पीड़ा से चीख उठा। लेकिन चीखकर जो उसने कहा, वह था, "ईश्वर कसम यदि मैं ज़िन्दा बचा तो इस सबका बदला लूंगा।" वह चिल्लाकर बोला, "तुम भी मेरी तरह ही जानते हो कि यह शासन सदा टिकने वाला नहीं है।" कुछ दिन बाद मदन को तिहाड़ जेल में भेज दिया गया, जहां उसके साथी कार्यकर्त्ता उसकी हालत देखकर रो पड़े और उसे उत्साहित करने के लिए उन्होंने सब कुछ किया।

हेमन्त विश्नोई ने 1942 के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की वर्षगांठ 9 अगस्त के दिन कुछ कालिजों में जाने की योजना वनाई थी। श्री निवासपुरी के डी० ए० वी० कालिज को उसने चुना। पुलिस कालेज के बाहर बड़ी संख्या में पड़ी थी। पुलिस के पूरे बंदोवस्त के बावजूद हेमन्त कालेज में घुस गया और एक कक्षा में जाकर अध्यापक को उसने अपना परिचय यूनियन के एक नेता के रूप में दिया और कुछ मिनट छात्रो के सामने बोलने की अनुमति चाही। यह एक आम तरीका है और ऐसी अनुमति सामान्य रूप से दे दी जाती है।

हेमन्त कुछ मिनटों तक छात्रों के सामने बोला। उसने उनसे कहा, "यदि आप लोग बंगला देश का कत्लेआम यहां दोहराया जाना नहीं चाहते तो आपको इस दमन का विरोध करना चाहिए।" छात्रों ने उत्तर में ये नारे लगाये: 'जयप्रकाश ज़िन्दाबाद!' 'संघर्ष समिति जिन्दाबाद!' अब दूसरी कक्षाओं से भी लड़के वहां आ गये और उन्होंने हेमन्त को चारों ओर से घेर लिया। कालिज का

प्रिंसिपल भी उस स्थल पर पहुंच गया। जब प्रिंसिपल ने महसूस किया कि क्या हो रहा है तो उसने पुलिस को टेलीफोन कर दिया।

पुलिस तो आने के लिए हर समय तैयार थी ही। कालेज भवन के ठीक सामने पड़ी पुलिस भीतर की ओर भागी। लेकिन उन्हें देर हो गई। हेमन्त उनकी मुट्ठी में आकर भी निकल भागा, यद्यपि कालेज के भवन को चारों ओर से उन्होंने घेर रखा था और वहां आने-जाने वाले हर व्यक्ति पर उनकी कड़ी नज़र थी। हेमन्त और उसके साथी अपने स्कूटरों पर भाग निकले थे।

15 अगस्त को लाल किले पर स्वतंत्रता दिवस के उत्सव से कुछ गिरफ्तारियां पुलिस ने कीं। भूमिगत कार्यकर्त्ताओं के कुछ स्कूटरों के नम्बर पुलिस को मिल गए थे। इनमें से एक को उसने लालकिले के पास खड़े देखा और इस पहचान के आधार पर गिरफ्तारियां कर ली गईं।

इसके शीघ्र बाद ही भूमिगत साहित्य लिए हुए कुछ और कार्यकर्त्ता भी पकड़े गये। सताए जाने पर कुछ लड़कों ने हिम्मत हार दी और स्वीकार कर लिया कि यह साहित्य उन्हें आर० के० भाटिया ने दिया है। इस पर पुलिस ने भाटिया के परिवार के सभी पुरुषों को पकड़ लिया और उन्हें पीटा और कितने ही दिनों तक हवालात में रखा।

रजत शर्मा एक पतला सूखा-सा लड़का था। जब वह भी पकड़ा गया तो कितनों को ही डर हुआ कि पुलिस के चंगुल से वह जीवित नहीं लौटेगा। लेकिन आश्चर्य की बात कि पुलिस ने पीट-पीट कर रजत को नीला कर दिया, लेकिन एक शब्द भी उससे निकाल नहीं सकी।

सितम्बर के आरम्भ में संघर्ष-समिति ने अपने कार्यकर्त्ताओं का एक अखिल भारतीय सम्मेलन अहमदाबाद में किया। इस सम्मेलन में 22 प्रतिनिधियों ने अर्थात् हर राज्य से एक ने हिस्सा लिया। सम्मेलन में आगे का कार्यक्रम बनाया गया और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क-सूत्र स्थापित किये गये। यह योजना बनी कि नवम्बर में एक देशव्यापी सत्याग्रह किया जाये।

राज्यों के प्रतिनिधि अपने-अपने क्षेत्रों में सत्याग्रह के संगठन के बारे में निर्देश लेकर लौटे। लेकिन दिल्ली मे कार्यकर्त्ताओं से सम्पर्क करना अधिकाधिक कठिन और खतरनाक बनता जा रहा था। जनसंघ के संगठनकर्त्ताओं ने एक दूसरे से मिलने के लिए एक नया तरीका निकाला। वे सार्वजनिक पार्कों जैसे खुले स्थानों पर पिकनिकें आयोजित करते, जहां कार्यकर्त्ता लड़के और लड़कियों के समूह परस्पर मिलने के लिए आते। ऐसे अवसरों पर भूमिगत कार्यकर्त्ता भी पहुच जाते और अन्य भाग लेने वालों से मिलते, सूचनाएं देते-लेते और आगे के काम के लिए निर्देश प्राप्त करते।

ऐसी ही एक पिकनिक 15 अक्तूबर को बुद्ध जयंती पार्क में आयोजित की

गई थी, जिसमें लगभग 50 नवयुवकों और नवयुवतियों ने हिस्सा लिया था। पुलिस को इसकी हवा लग गई। सक्रिय कार्यकर्त्ता भी जान गए कि खबर फूट गई है। लेकिन उन्हें यह पता बहुत देर से लगा, अतः वे संगठनकर्त्ताओं से सम्पर्क करके पिकनिक को रद्द नहीं कर सके।

हेमन्त विश्नोई उनमें था, जिसे खबर के फूट जाने का कोई ज्ञान नहीं था। बुद्ध जयंती पार्क की ओर जाते हुए सरदार पटेल मार्ग पर उसे पुलिस की जीपों का एक जमघट दीख पड़ा। उसे फौरन किसी गड़बड़ी की आशंका हो गई और पिकनिक वालों को खतरे से सावधान करने के लिए वह उद्यान की तरफ भागा। उद्यान के द्वार पर हेमन्त ने एक बस खड़ी देखी, जिस पर 'मेडिकल कालेज, अमृतसर' लिखा कपड़ा झूल रहा था। बस के भीतर अनेक स्त्रियां बैठी थीं जो बाद में महिला पुलिस अफसर और सिपाही निकलीं, जिनका राजेन्द्र नगर और रामकृष्णपुरम् पुलिस थानों से संबन्ध था।

जब हेमन्त पिकनिक स्थल पर पहुंचा तो उसने वहां एक तनाव महसूस किया। पुलिस ने पिकनिक पर आए दल को घेर रखा था और सबको आदेश था कि ताश और दूसरे खेल जो वे खेल रहे थे, खेलते रहें, जिससे कि आने वाले छात्र-नेता धोखे में आ सकें।

हेमन्त स्थिति की गम्भीरता को पूरी तरह नहीं समझ पाया और उसने एक छात्र-कार्यकर्त्ता से बात करने की कोशिश की। तत्काल एक पुलिस अफसर पास आ गया और उसने पूछा कि वह कौन है ? स्थिति को अब समझकर हेमन्त ने उसे चक्कर में डालना चाहा। उसने पुलिस अफसर को बताया कि वह पिकनिक के लिए खाना लाया है और पूछ रहा था कि खाना किसको दिया जाये। पुलिस अफसर को विश्वास नहीं आया। उसने हेमन्त को आदेश दिया कि वह यहीं ठहरे। हेमन्त ने तर्क किया कि उसे जाने दिया जाए जिससे वह द्वार पर रखा सामान यहां ला सके। पुलिस अफसर चिल्ला पड़ा, "चुप रहो, और बैठ जाओ।"

पुलिस अफसर के चिल्लाने से वहां घबड़ाहट फैल गई और लड़के-लड़कियां बचने के लिए इधर-उधर भागने लगे। इस पर पुलिस ने हवा में कुछ फायर किए और पूरा पुलिस दल उस समूह को घेरकर कस आया। लड़कों से कहा गया कि वे अपनी कमीजें उतार दें और उन कमीज़ों से उनके हाथ पीठ-पीछे बांध दिए गए। लड़कियों की चुन्नियां छीन ली गईं और उनके हाथ भी पीछे बांध दिए गए।

हेमन्त विश्नोई ने अपना नाम बता दिया और उसे पुलिस की एक जीप में धकेल दिया गया। अन्य लड़के-लड़कियों को प्रतीक्षा करती बस में भर दिया गया और उन सबको छावनी पुलिस थाने में ले जाकर हवालात में बन्द कर दिया गया।

बंदियों पर ढाए गए अत्याचार
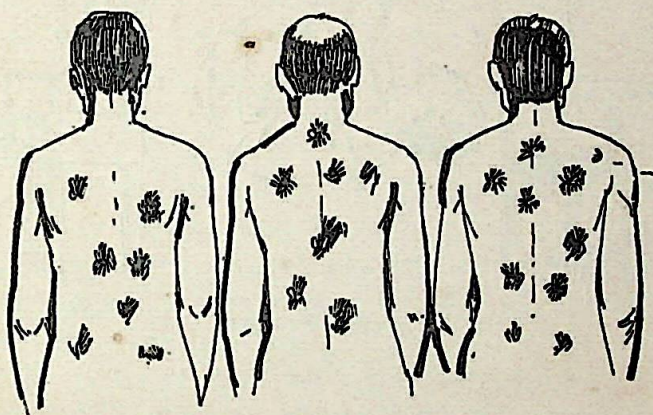
सिगरेट के टुकड़ों तथा मोमबत्तियों से पीठों पर पड़े हुए निशान

कंधे पकड़कर घुटनों से कमर में आघात पहुंचाना
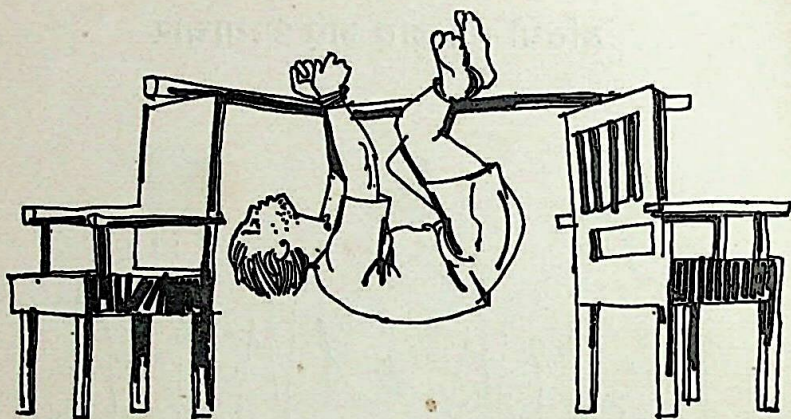
दो कुर्सियों के बीच लटकाना

रस्सी से बांधकर लटकाना
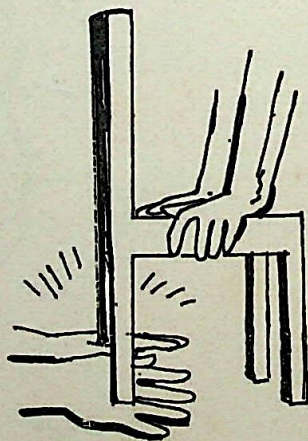
कुर्सी के नीचे उंगलियां रखकर दबाना

सन्ध्या समय हेमन्त को थानेदार के कमरे में लाया गया, जहां शाहदरे का एस० पी० आर० एस० सहाय और डी० आई० जी० प्रीतम सिंह भिन्दर बैठे थे। उन्होंने उससे सवाल पूछने शुरू किए। उसने कुछ सवालों के जवाब दिए, लेकिन जब उन्होंने जानना चाहा कि रात में वह कहां सोया था तो उसने जवाब देने से इंकार कर दिया। उसपर कुछ भी गुज़रे वह उन मित्रों के नाम बताने के लिए तैयार नहीं था, जिन्होंने उसे शरण दी थी। पूछताछ इस मुद्दे पर अटक गई। अब डी० आई० जी० भिन्दर ने उससे कहा "हम जानते हैं, यह बात तुमसे कैसे निकलवाई जाए। अब जाकर लेट जाओ और सोचो। तुमसे फिर मिलेंगे।"

अगले दिन हेमन्त को शाहदरा पुलिस थाने भेज दिया गया। वहां वही प्रश्न उससे फिर किया गया। उसने वही जवाब दोहराया। तब उसे बताया गया कि विजयकुमार मल्होत्रा और एम० एल० खुराना तक ने, जो कुछ वे जानते थे, सब बता दिया है तो छात्र संघ के एक मामूली कार्यकर्त्ता होते हुए भी तुम क्यों नहीं सब कुछ उगल सकते! हेमन्त अब भी चुप रहा।

"तब ठीक है।" सहाय बोला, "अब तुम्हें गर्म किया ही जाए।" उसने दो हट्टे-कट्टे सिपाहियों को बुलाया और हेमन्त को उन्हें सौंप दिया। वे उसे दूसरे कमरे में ले गए, जहां उन दोनों ने उसकी पीठ पर घूंसे बरसाये।

हेमन्त अब याद करता है कि जब वह शिकारियों द्वारा पीछा किए जाते एक पशु का-सा जीवन जी रहा था, तब उसने अपने साथी कार्यकर्ताओं पर पुलिस द्वारा इस्तेमाल किए गए तीसरे दर्जे के तरीकों की दिल दहला देने वाली कहानियां सुनी थीं। उसे स्वयं वैसा सहना पड़ा तब इस विचार से वह कांप-कांप उठा था। तभी गुप्तचरी के आरोप में पाकिस्तानी जेल में बन्दी रखे गए एक भारतीय द्वारा लिखित पुस्तक 'पाकिस्तानी जेलों में तीन वर्ष' उसके हाथ पड़ गई। इस पुस्तक में लेखक ने लिखा था कि यातना का भय स्वयं यातना से बढ़कर होता है। हेमन्त ने यह भी पढ़ा था कि प्राचीन काल में धार्मिक आधारों पर दंडित लोग पीड़ा और भय पर काबू पाने के लिए चीख-चीखकर भगवान की स्तुति गाया करते थे। तब उसने तय किया कि मन्त्रणा दिए जाने पर वह चिल्लाएगा नहीं, बल्कि जब पीड़ा असह्य हो जाएगी तब 'लोकनायक की जय' जैसे नारे लगाएगा।

शाहदरा थाने में हेमन्त की पिटाई और पूछ-ताछ साथ-साथ चली। वे उससे यही सवाल पूछते रहे कि भूमिगत रहते हुए रातों में वह कहां सोया करता था। उन्हें वही एक जवाब उससे मिला। उसने इस विषय पर बात करने से पक्का इन्कार कर दिया। हेमन्त जानता था कि यदि एक बार पुलिस इस मुद्दे पर उसे तोड़ गई, तो उसका विरोध सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।

अब हेमन्त से कहा गया कि वह लेट जाए और अपनी टांगें ऊपर उठा ले।

दो मजबूत सिपाहियों ने उसके पैरों के तलुवों पर डंडे बरसाए। इससे उसके पैर इतने सूज गये कि कितने ही दिनों तक वह कठिनाई से ही पैर रख पाया। जब यह उपाय भी उसे बुलवाने में विफल रहा तो उन्होंने कपड़े उतरवा कर उसे पेट के बल लिटा दिया और सीधे किए गए रबड़ के टायरों से उसे पीटा।

जब यह भी बेकार रहा तो उन्होंने एक नई तरकीब इस्तेमाल की। दो कुर्सियां कुछ दूरी पर रख दी गईं और बैठी हुई स्थिति में उसके शरीर को और पैरों को बांध दिया गया। तब एक बांस उसके घुटनों के नीचे से गुजारा गया और उसे उस स्थिति में ऊंचा उठाया गया। अब बांस को दोनों कुर्सियों के हत्थों से कस दिया गया और उस बांस पर उसे बार-बार चक्कर दिए गए; ठीक वैसे ही जैसे भूनने के स्वयंचालित यन्त्र पर चूजे को घुमाकर भूना जाता है। इसका भी कोई फल नहीं निकला।

तीसरे दर्जे का सहाय का अन्तिम उपाय था, बदनाम 'पानी का उपाय'। उन्होंने उसे उलटा लटका दिया और उसके चेहरे पर ठंडा पानी डाला। लड़का सांस लेने के लिए तड़पता रहा, लेकिन बोला नहीं। तब एस० पी० ने इस तरीके में अपनी एक निजी ईजाद और जोड़ी। उसने कुछ पिसी हुई मिर्चें मंगाईं और उन्हें पानी में मिला दिया। यह पानी लड़के के नथनों में डाला गया। हेमन्त अब बेहोश हो गया। अब जाकर उस 'परपीड़ावादी' ने तौलिया दिया।

अगली सुबह घायल, सूजा हुआ, खून से तर, मिर्चों से जली हुई आंखें और गला लिए उस लड़के को वापस छावनी के थाने में भेज दिया गया। एस० पी० सहाय ने उसकी हिम्मत की तारीफ की। वहां से उसे राजेन्द्र नगर भेजा गया। वहां भी एक थानेदार ने सूचनाएं निकालने के उद्देश्य से हेमन्त पर अपना हाथ आजमाया।

हेमन्त कठिनाई से ही बोल पा रहा था। लेकिन वह जोश के साथ चीखा, "तुम भी जितनी चाहे मन्त्रणाएं मुझे दे लो, लेकिन कुछ मुझसे ले नहीं पाओगे।" और तब वह फर्श पर लुढ़क गया।

अगले दिन जब हेमन्त को भारत सुरक्षा कानून के अधीन अदालत में पेश किया गया, तब वह लगभग अर्धमृत था। वह कठिनाई से खड़ा हो पा रहा या बोल पा रहा था। उसका शरीर नीला पड़ा था और सूजा हुआ था। उसकी आंखें फूली हुई थीं, लाल थीं और आधी मुंदी हुई थीं। लेकिन मजिस्ट्रेट ने अपराधी पर एक नजर तक नहीं डाली और उसे जेल ले जाने के आदेश दे दिये। हेमन्त ने चैन की सांस ली। वह अभी तक जीवित था और पुलिस के पंजों से छूट चुका था। अब वह जीवित रह सकेगा।

इन लड़कों को हमारा अभिनन्दन! कितनी भी क्रूरता और तीसरे दर्जे का

अत्याचार इन्हें बोलने पर विवश नहीं कर सका। ऐसे लड़के बहुत कम निकले, जो यातना को सह नहीं सके और बोल गये।

अनेकों सरकारी अफसर, यहां तक कि पुलिस के अफसर भी सहानुभूतिपूर्ण और सहायक रहे। लेकिन वे अपवाद ही थे, जो नियम को ही सिद्ध करते थे और वैसा अक्सर दोनों के बीच की निजी तालमेल पर निर्भर करता था। निम्न पदों के बेचेहरा लोगों पर यह लागू नहीं होता था, क्योंकि उन्हें तो सदा कड़ाई और रूखेपन का ही व्यवहार मिलता है। 26 जून को प्रातः 8 बजे सुब्रह्मण्यम् स्वामी को किसी ने टेलीफोन पर कहा, "मैं आपके घर आपसे मिलने आऊंगा। यदि आप घर नहीं होंगे तब मैं चिन्ता नहीं करूंगा।" स्वामी को सूचना मिल गई और वे गायब हो गये।

जब दिल्ली में पकड़ा-धकड़ी हुई तब श्री बी० के० मल्होत्रा मसूरी में थे। दिल्ली से एक टेलीफोन उन्हें मिला, जिसने पहले ही उन्हें सूचित कर दिया कि उन्हें पकड़ने के लिए एक पुलिस दल मसूरी के लिए चल चुका है। यदि वे चाहते तो भूमिगत हो जाते, लेकिन उन्होंने वैसा नहीं चाहा। पुलिस 27 जून को मसूरी पहुंच गई।

जब श्रीमती मल्होत्रा मसूरी से दिल्ली लौटीं, तो वे यह मालूम करने के लिए गईं कि उनके पति को कहां ले जाया गया है, जिससे उनकी दवाइयां उन्हें भेजी जा सकें। (उन दिनों श्री मल्होत्रा बीमार थे और उस पहाड़ी स्थान पर आराम कर रहे थे।) पुलिस अफसर ने कहा, "ठीक है, आप कल मुझे टेलीफोन करें और किसी भी जगह का नाम, जहां आप जाना चाहें, ले दें।" अगली सुबह श्रीमती मल्होत्रा ने उसे टेलीफोन किया और कहा, "मेरी योजना चण्डीगढ़ जाने की है।" पुलिस अफसर ने उत्तर दिया, "मैं समझता हूं आप अम्बाला जा रही हैं।" श्रीमती मल्होत्रा ने इशारा समझ लिया और फौरन अम्बाला के लिए चल दीं, जहां उनके पति रखे गए थे।

दिल्ली विश्वविद्यालय के लगभग 200 अध्यापक और कुछ सौ छात्र आपत्काल के दौरान पकड़े गए थे। कुलपति और उपकुलपति को छोड़कर विश्वविद्यालय में महत्त्व रखने वाला कठिनाई से ही कोई व्यक्ति बचा था, जिस पर शक न किया गया हो।

5
ईदी अमीन को भी मात दे दी

पुलिस ने लारेंस फर्नेंडीस के साथ जो क्रूर व्यवहार किया और उसे जो अकथनीय यातनाएं दीं वह एक लहूलुहान कहानी है। लारेंस उग्र ट्रेड यूनियन नेता जार्ज फर्नेंडीस का भाई है। जार्ज भूमिगत हो गया था और पुलिस यह जानकारी निकालने की कोशिश में थी कि वह कहां है।

एक संध्या को, जब धुंधलका छा रहा था, पुलिस लारेंस के घर आई। उसे बहका कर बाहर बुलाया और पकड़ ले गई। उसे सी० ओ० डी० (गुप्तचर कोर अर्थात् दूसरे शब्द में बंगलौर पुलिस के यंत्रणा-गृह में) ले जाया गया। जैसे ही वह कमरे में घुसा, अकस्मात एक सन्ना देने वाले झापड़ से उसका स्वागत किया गया। कुछ मिनटों के लिए तो उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया और वह अचेत-सा हो गया। जब वह अपने में आया तो उसने देखा कि पुलिस ने उसे नंगा कर दिया है। अब दस सिपाहियों ने लाठियों से इतनी ज़ोर से उसे पीटना शुरू किया कि एक के बाद एक लाठियां टूटती गईं।

बाद में इण्डियन एक्सप्रेस के संवाददाता को उसने बताया, "फर्श पर पड़ा मैं दर्द से तड़फड़ा रहा था। मैं गिड़गिड़ाता था, घिसटता था और फिर गिड़गिड़ाता था और वे एक फुटबाल की तरह मुझे ठोकरों से मार रहे थे।" वह फर्श पर ढेर हो गया। उस समय रात के तीन बजे थे। जब वह जागा, तब उसे भयानक प्यास लगी थी। लारेंस ने पानी मांगा। एक अफसर ने एक सिपाही से कहा, इसके मुंह में पेशाब कर दो। लेकिन सिपाही ने दया करके वैसा नहीं किया। तब उन्होंने दो चम्मच पानी से उसके होठों को तर किया। अपने भाई और भाभी के बारे में जो कुछ वह जानता था उसने सब बता दिया था, लेकिन इससे पुलिस को तसल्ली नहीं हुई थी।

तब तक लारेंस की हालत इतनी शोचनीय हो गई थी कि पुलिस डर उठी कि कहीं वह मर न जाए। एक अफसर ने एक जीप तैयार करने का आदेश सिपाहियों को दिया और लारेंस ने अफसर को यह कहते सुना, "हम इसे चलती रेल के सामने फेंक देंगे और कह देंगे कि इसने आत्महत्या कर ली है।" जीप से उसे ब्यालिकायल पुलिस थाने ले जाया गया और अगले दिन फिर सी० ओ० डी० में ले आया गया। यहां पहली बार लारेंस ने एक परिचित महिला का स्वर सुना। यह स्नेहलता रेड्डी के रोने का स्वर था।

लारेंस ने बताया कि अब पुलिस ने उसके घायल शरीर की मालिश के लिए एक मालिश करने वाले को बुलाया। उसने उसके हाथ-पैरों पर तेल लगाया, पर जल्द ही यह कहकर हाथ खींच लिया कि लारेंस की मदद करना, उसके बस से बाहर है। उसने अफसरों को सलाह दी कि इसे अस्पताल पहुंचा दिया जाए। उसकी हालत इतनी खराब थी कि शौच आदि के लिए भी सिपाही उसे उठाकर ले जाते थे।

कुछ समय बाद दो अफसर उसे कार में डाल कर कहीं ले चले। लारेंस ज़ोर-ज़ोर से रो उठा। अफसरों ने कहा कि हवालात में जो कुछ उसके साथ किया गया, उसके लिए वे ज़िम्मेदार नहीं हैं। इस समय तो उनका कर्तव्य यह सिद्ध करना है कि उसे यहां से 150 किलो मीटर दूर चित्रदुर्ग में गिरफ्तार किया गया है।

उसे देवनगिरि ले जाया गया। उससे कहा गया कि उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाएगा और उसे मजिस्ट्रेट से यह कहना होगा कि उसे उसी दिन बस स्टैंड पर पकड़ा गया है। वहां उसे एक कोठरी में डाल दिया गया जो खटमलों और तिलचट्टों से भरी थी। तभी दो स्थानीय इन्सपेक्टर आये और उन्होंने धमकी दी कि यदि पुलिस की यातनाओं के बारे में उसने मजिस्ट्रेट से कुछ भी कहा तो उसके परिवार को खत्म कर दिया जाएगा। उसकी टांगें सूजकर सामान्य से दुगुनी मोटी हो रही थीं, फिर भी उसे मज़बूर किया गया कि वह नंगे पैर चलकर मजिस्ट्रेट के घर तक जाए।

11 मई को लारेंस को वापिस बंगलौर लाया गया। उसकी हालत बहुत ही शोचनीय थी, इसलिए उसे अस्पताल ले जाना ही पड़ा। डाक्टर ने एक्स-रे के लिए कहा, लेकिन पुलिस ने एक्स-रे की अनुमति नहीं दी। इस पर डाक्टर ने गहरी सांस छोड़ी और बोला, "फर्नेडीस, मैं मज़बूर हूं। एक ईश्वर ही तुम्हें बचा सकता है।"

अब पुलिस ने उसे नशीली चीज़ें देना शुरू किया जिनसे उसे पेचिश हो गई, जो लगातार तीन दिनों तक चली। पुलिस ने अब जाकर उसे दवाई दी, क्योंकि मजिस्ट्रेट के सामने पेश करने से पहले वे उसे कुछ बेहतर हालत में लाना चाहते थे। जब वह मजिस्ट्रेट के सामने पहुंचा तो वहां कोई उसकी जमानत देने वाला नहीं था। इसलिए उसे वापस पुलिस हिरासत में ले जाया गया। फिर भी लारेंस ने मजिस्ट्रेट से शिकायत कर दी कि पुलिस हिरासत में उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया है। अब केन्द्रीय जेल की एक अंधेरी, बदबूदार कोठरी में उसे बन्द कर दिया गया।

जब वह आधी बेहोशी की-सी हालत में उस गन्दी कोठरी में पड़ा था तब उसने सुना कि कोई उसे बार-बार पुकार रहा है। आवाज़ें चारों ओर से आ रही

थीं। लारेंस ने सोचा कि उसे व्यामोह हो गया है, लेकिन शीघ्र ही उसने समाजवादी नेता और अब जनता सरकार के रेलमन्त्री मधु दंडवते की आवाज़ पहचान ली। मधु ने चिल्लाकर पूछा, "लारेंस, क्या यह तुम हो? मुझे जवाब दो। क्या तुम्हें यंत्रणा दी गई है?"

लारेंस ने बहुत कमज़ोर आवाज़ में 'हां' कहा और बाहर एक हलचल मच उठी। मधु और दूसरे मीसाबन्दियों ने यह मांग करते हुए भूख हड़ताल कर दी कि लारेंस को इस काल कोठरी से निकाला जाए और बेहतर जगह दी जाए। लारेंस का भाई माइकेल भी उसी जेल में था, लेकिन दोनों भाइयों को एक-दूसरे से मिलने नहीं दिया जाता था। एक बेहतर कोठरी की और एकांत कैद की समाप्ति की मांग करते हुए लारेंस ने दो दिनों तक भूख हड़ताल की। लेकिन, अब तक वह एक ढांचा बन चुका था और उसका वज़न बीस किलो घट गया था।

छूटने से कुछ दिन पहले से जेल के अफसर लारेंस के प्रति कुछ अधिक ही उदार हो गए थे और उन्होंने उसे नारियल का पानी तक पीने को दिया था।

इस दूसरे स्वातंत्र्य-संघर्ष की एक और शहीद है—स्नेहलता रेड्डी, जो प्रसिद्ध फिल्म अभिनेत्री थी और कन्नड़ फिल्म 'संस्कार' की नायिका थी। उसकी आत्मा लम्बे समय तक कर्नाटक पुलिस पर मंडराती रहेगी।

स्नेहलता का अपराध यही था कि उसके परिवार की फर्नेंडीस परिवार से मित्रता थी। थियेटर में और बंगलौर के बुद्धिजीवी वर्ग में स्नेहलता एक प्रमुख व्यक्ति थी। कमलादेवी चट्टोपाध्याय उसके बारे में लिखती हैं, "स्नेहलता एक बड़ी ही भद्र और अनुभूतिशील महिला थीं। वे एक ऊंचे दर्जे की कलाकार थीं और किसी भी समय सक्रिय राजनीति में कोई हिस्सा उन्होंने नहीं लिया था।" अनेकों कलाकारों की तरह वे भी अपने घर को उन्मुक्त रखती थीं, जहां सभी व्यवसायों के लोगों का आना-जाना था।

1976 की गर्मियों के आरम्भ में श्री और श्रीमती रेड्डी मद्रास गए हुए थे। तभी पुलिस उनके बेटे कोणार्क को उठा ले गई। पुलिस ने आधी रात के समय उनके घर पर छापा मारा और सुबह तक पूरे घर को छानती रही। इस बीच उसने स्नेहलता के 84 वर्षीय बूढ़े पिता को पूछताछ के लिए जगाए रखा। रेड्डी दम्पति यह सब सुनकर वापस बंगलौर भागे और पुलिस उनके पीछे-पीछे रही।

अपने बेटे का ठौर-ठिकाना न जानने के कारण स्नेहलता फिक्र से पहले ही पागल हुई जा रही थीं और तभी पुलिस ने उनसे पूछताछ शुरू कर दी। मानसिक और शारीरिक रूप से जर्जर वे रो पड़ीं और यदि पुलिस उनके बच्चों और पति को वापस उन्हें दिला दे तो वे सब कुछ बता देने के लिए तैयार हो गईं।

लेकिन बताने के लिए उनके पास बहुत ही कम था। पुलिस उससे संतुष्ट नहीं थी। पुलिस उन्हें जेल ले गई और उन्हें आठ महीनों तक बन्द रखा। पहले

उन पर भारतीय दण्ड विधान के अन्तर्गत आरोप लगाया गया और बाद में उन पर मीसा लागू किया गया। उन्हें सी दर्जा दिया गया और उनसे बड़ा ही अपमान-जनक व्यवहार किया गया। उनकी हिम्मत टूट गई। दमे की मरीज़ वे पहले ही थीं, अब उन्हें दिल की वीमारी भी हो गई।

जेल के उन दिनों के दौरान जिस घोर निराशा को उन्हें सहना पड़ा, उसकी साक्षी उनकी वह डायरी है जो उन्होंने उस वीच लिखी थी। 26 जुलाई को उन्होंने लिखा, "क्या मुझे छोड़ा नहीं जा सकता या स्वास्थ्य के आधार पर कुछ दिनों की पैरोल नहीं दी जा सकती ? यहां की हालतों से मैं लगभग मर ही चुकी हूं। मेरा दमा पहले कभी इतना निरन्तर और उग्र नहीं रहा है। इंजेक्शनों के वावजूद यहां मैं कभी ठीक नहीं हो पाऊंगी। मेरा स्नायविक विभ्रंश (नर्वस ब्रेकडाउन) होने ही वाला है। मैं उस दिशा में वढ़ रही हूं। मैं घर जाना और अपने लोगों के साथ रहना चाहती हूं। दया करके मुझे जल्द ही यहां से निकालो, कोणार्क के जाने से पहले (वह अध्ययन के लिए विदेश जाने वाला था)।"

29 जुलाई को उन्होंने घरेलू मामलों के कमिश्नर और राज्य के गृह विभाग के सचिव को लिखा, "एक रात मुझे दमे का दौरा पड़ा और एक डाक्टर एक घंटे के वाद ही आ सका। इसके वाद मेरी परीक्षा के लिए चार सर्जनों को लाया गया। उन सबने घोषणा की कि मुझे फौरन अस्पताल भेज दिया जाना चाहिए क्योंकि यहां का वातावरण एलर्जी से भरा है और सब कुछ घिरा-घुटा है। यहां इनका रोग कम नहीं होगा। वीस दिन वाद अधिकारियों ने बताया कि एक भी डाक्टर ने अस्पताल भेजने की सिफारिश नहीं की है।"

जेल अधिकारियों से वे वार-वार अनुरोध करती रहीं कि उनके परिवार को उनसे मिलने दिया जाए। उनकी डायरी में एक जगह लिखा है, "मैं वार-वार पूछती हूं कि वे (परिवार) क्यों नहीं आए हैं। लेकिन कोई जवाव नहीं मिलता। मैंने इन्तज़ार की और इन्तज़ार करती रही। डाक्टर आया और उसने मुझे मानसिक व्यथा में पाया। लेकिन कुछ नहीं किया गया। उसने बताया कि सुपरिंटेन्डेंट ने मेरी मिलाइयां रद्द कर दी हैं, क्योंकि मैंने आई० जी० के सामने उससे दुर्व्यवहार किया था।"

उन्होंने लिखा है, "छवलानी (जेल का सुपरिंटेन्डेंट) नीचतम स्तर का एक परपीड़नवादी (साडिस्ट) है। वह कायर भी है और झूठा भी। ऐसा व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा है। उसकी आदतें गन्दी हैं, वह भोंडा और विकृत मन है। शब्द सख्त हैं लेकिन हर शब्द सच है। उसी के कारण मुझे घोरतम निराशा और जड़ता का सामना करना पड़ा है। मेरे सभी रास्ते बन्द हो गए थे। मेरे विचारों का गला घुट गया था और मैं वेबस हो उठी थी।"

एक जगह लिखा है, "सी वर्ग के कैदियों के साथ यहां मुझे वन्द करने का

कोई मतलब ही नहीं था। यहां हवा नहीं है, एक खिड़की तक नहीं है जहां से जेल के अहाते ही में झांका जा सके।"

एक दूसरी जगह लिखा है, "ये लोग मीसा बंदियों के निकट एक कमरा मुझे दे सकते थे। 'ए' या 'बी' श्रेणी की कोई शर्त मेरी नहीं थी। यहां तो पुरुष या स्त्री किसी का भी कोई संग नहीं है, सैर की जगह नहीं है, ताज़ी हवा नहीं है और किसी से सम्पर्क नहीं है। मैं जानती हूं कि मीसा के नियम उदार और उचित हैं। लेकिन इस आदमी ने खर्च बचाने के लिए या सिर्फ मुझे सताने के लिए यह फंदा डाला है। असल में प्रयोजनपूर्वक ही उसने मुझे यह मालूम नहीं होने दिया कि मेरे अधिकार क्या हैं, जिससे वह मुझे सता सके। यदि वह मुझे मीसा वालों के साथ रखता तो वह जानता था कि वह कुछ भी नहीं कर सकता था। वह निश्चय ही विकृतमन है। तभी उसने जान-बूझकर मुझे यहां रखा है और मुझे सताया है। हे ईश्वर, हर सुबह जागते हुए मुझे डर लगता है। मुझे सताने का कौन-सा नया तरीका वे आज ढूंढ़ लाएंगे।"

पहली अगस्त को उसने लिखा, "जानते-बूझते उपेक्षा की जा रही है। मैं यहां धीमे-धीमे मर जाऊंगी, अतीत के एक भूले हुए गीत की तरह। क्यों ये लोग गैरों के बीच मर जाने के लिए मुझे मजबूर कर रहे हैं?"

स्नेहलता का स्वास्थ्य गिरता गया। उनका दमा बढ़ता गया और उसका दौरा लगभग अविराम पड़ने लगा। उनके निजी डाक्टर को उनके पास नहीं आने दिया गया और उन्हें खतरनाक कार्टिज़ोन दिया गया। अन्त में उन्हें एक महीने के पैरोल पर छोड़ा गया। पैरोल के अन्तिम दिन उन्हें बताया गया कि उन्हें पूरी तरह मुक्त कर दिया गया है। खुशी के मारे वे लगभग पागल हो उठीं। कोई नहीं जानता था कि जेल में दिल की बीमारी भी उन्हें लग गई है।

छूटने के पांच दिन बाद 27 जनवरी को अर्थात् चुनावों की घोषणा के 7 दिन बाद स्नेहलता को बड़ी ज़ोर का दिल का दौरा पड़ा और वे मर गईं। कमलादेवी के अनुसार स्नेहलता एक छरहरी, यौवनपूर्ण व्यक्ति थीं। लेकिन जब स्नेहलता जेल से निकलीं तो भारी, असामान्यरूप से फूली हुई, जर्जर और प्रौढ़ लग रही थीं।

यह जानते हुए भी कि श्री जयप्रकाश रोगग्रस्त हैं, नज़रबन्दी के दौरान उनके साथ जो व्यवहार किया गया वह अवांछित रूप से सख्त था। ऐसा लगता था जैसे सरकार उन सब परेशानियों के लिए उन्हें सज़ा दे रही थी जो कुशासन के विरुद्ध लड़ाई के लिए जनता को उत्तेजित करके उन्होंने सरकार के लिए पैदा की थीं।

नज़रबन्दी के 130 दिनों के दौरान जिन हालातों में वे रहे, उनका वर्णन करते हुए श्री जयप्रकाश ने (मित्रों को लिखे गए एक पत्र में) लिखा है, "मुझे

पूरी तरह अकेला (एकान्त कैद में) रखा गया। यह पूरी तरह अकेले रहना मुझे बहुत पीड़ा देता था।" ऐसा कोई नहीं था, जिसके साथ वे मुक्त भाव से बात कर सकते। इस अकेलेपन ने उन्हें "एक प्रकार की मानसिक मन्त्रणा" दी।

श्री जयप्रकाश ने अधिकारियों से अनुरोध किया कि हज़ारों गिरफ्तार लोगों में से किसी एक को उनके साथ रख दिया जाये, जिससे नज़रबन्दी के दौरान विचार विनिमय करने के लिए एक उचित साथी उन्हें मिल जाए। लेकिन सरकार ने इस प्रार्थना को ठुकरा दिया। अन्त में यह छूट दी गई कि जयप्रकाश का निजी नौकर गुलाब यादव नज़रबन्दी के दौरान उनके साथ रह सकेगा। लेकिन श्री जयप्रकाश को निजी नौकर की नहीं, एक साथी की ज़रूरत थी।

उनके कमरे के हर तरफ सशस्त्र सन्तरी तैनात किये गये थे। उन्हें खुले में थोड़ी चहल-कदमी करने तक की इजाज़त नहीं थी। वैसा करना उनके दिल के लिए लाभदायक रहता। वैसा वे तभी कर सके जब चण्डीगढ़ स्थित डाक्टरी शिक्षा एवं शोध के स्नातकोत्तर संस्थान के हाते में स्थित अस्पताल के विश्राम गृह में उन्हें भेज दिया गया।

अन्ततः सरकार ने श्री जयप्रकाश को तब छोड़ा जब "उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि जो रोग मुझे है उसका निदान नहीं किया जा सका है और मेरे बचने के आसार बहुत ही कम हैं।" तब भी सरकार ने घोषणा यह की कि उन्हें पैरोल पर छोड़ा जा रहा है, जो एक झूठा वक्तव्य था, क्योंकि उन्हें बिना शर्त छोड़ दिया गया था।

चण्डीगढ़ में नज़रबन्दी के दौरान श्री जयप्रकाश पर जो क्रूर अकेलापन थोपा गया था उस पर एक शोकप्रद प्रकाश, स्नातकोत्तर संस्थान अस्पताल के विश्राम-गृह में नज़रबन्दी के बीच उनके साथ रहे एक नौकर की उस मानसिक हालत से पड़ता है, जिस हालत को वह पहुंचा दिया गया था।

कठोरता पूर्वक और बार-बार उस सेवक को चेतावनी दी गई थी कि वह श्री जयप्रकाश से अथवा उनके आस-पास के किसी भी आदमी से बिलकुल न बोले, नहीं तो उसे कड़े से कड़ा दंड भुगतना पड़ेगा। इससे वह नौकर एकदम जड़ हो उठा। वह गम्भीर चेहरा लिए, होंठों को सिए अपना काम करता रहता था। अपने परिवार के लोगों से भी वह बिलकुल नहीं बोलता था। अगर कोई उससे बोलने की कोशिश करता भी तो वह उसे एकदम यह कहकर रोक देता, "बात मत करिये, सरकार खत्म हो जाएगी।"

श्री जयप्रकाश के स्नातकोत्तर संस्थान से छूट जाने और उस नौकर की इस कठिन काम से मुक्ति हो जाने के बाद भी वह बदल नहीं सका और जो भी उसे विश्वास दिलाता कि अब वह श्री जयप्रकाश की सेवा में नियुक्त नहीं है और अब वह मुक्त रूप से बात कर सकता है, तो वह यही कहता, "नहीं श्रीमान् ! कभी

नहीं।" वह बड़बड़ाता, "मैं कभी बात नहीं करूंगा। मैं भगवान की कसम खाकर कहता हूं, मैं कभी नहीं बोलूंगा। सरकार खत्म हो जाएगी; मेरा परिवार खत्म हो जाएगा। नहीं, नहीं।" तब वह अधीनता प्रदर्शित करते हुए अपने कानों को हाथ लगाता। अन्त में उस आदमी को मानसिक चिकित्सा के लिए भेजना पड़ा।

त्रिवेन्द्रम में एक संकरी गली में एक बहुत विस्तृत पर सबसे अलग-थलग एक दुमंज़िला भवन है। यह देश के सबसे अधिक बदनाम यन्त्रणा-गृहों में से एक प्रसिद्ध हो गया है। यह केरल पुलिस की भयावह अपराध शाखा का मुख्यालय है। यहां की दीवारों पर क्रूर हत्याओं, हाथ-पैर कटे शरीरों, धड़ों से कटे, खून चूते सिरों और मृतकों की सूनी दृष्टि वाली खुली आंखों के बहुत बड़े-बड़े चित्र लगे हुए हैं। गन्दी और अंधेरी कोठरियां इसके यन्त्रणा-कक्ष हैं।

एक सीढ़ी ऊपर एक लम्बे-चौड़े कार्यालय में पहुंचती है, जहां एक युवक आई० पी० एस० अफसर जयराम पडिक्कल बैठता है जो नीचे की मंज़िल के नरक का निदेशक है। इस कमरे में कई टेलीफोन और विविध प्रकार के इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र रखे हैं, जिनसे कमरे में एक आडम्बरपूर्ण लेकिन भयजनक वातावरण की सृष्टि होती है। वहां एक निकट सर्किट का टेलीविज़न भी रखा है, जिसमें नीचे यन्त्रणा कक्षों में बेबस बन्दियों पर किए जाते भयावह अत्याचारों के शानदार दृश्य वह देख सकता है। न सिर्फ यह कि जयराम इन राक्षसी कृत्यों को अदृश्य रहकर देख सकता था, बल्कि इनका निर्देशन भी कर सकता था।

जो व्यक्ति इस भयावह भवन में एक बार घुस गया, वह सही-सलामत वापस नहीं लौटा। उसे अपंग बना दिया गया, उसके स्नायु तोड़ दिए गए और उसका जीवन सदा के लिए बर्बाद कर दिया गया। पिटाई, लोगों की टांगों को छड़ों से बांधकर उन्हें लटका दिया जाना और घंटों-घंटों लटकाए रखना, यह सब खास किस्म की उन यन्त्रणाओं के मुकाबले कुछ भी नहीं था, जिन्हें जयराम और उसके अफसरों ने सोच निकाला था। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं बर्बर था, बेलन का तरीका। इसमें आदमी को एक बेंच पर इस तरह बांध दिया जाता था कि उसका सिर एक सिरे पर लटक जाए। तब लकड़ी के लम्बे और भारी एक बेलन को उस की टांगों पर रखा जाता था। दो पुलिस वाले बेलन के दोनों सिरों पर बैठ जाते थे अथवा छत से लटकी रस्सियों को पकड़कर खड़े हो जाते थे और बेलन को टांगों पर फिराते थे। इससे अक्सर हड्डियों के स्नायु टूट जाते थे और हड्डियां चटख उठती थीं। कमर से नीचे का शरीर एकदम पिलपिला हो उठता था। तेज़ पीड़ा से आदमी चीख भी नहीं सकता था, क्योंकि बेंच पर लिटाने के लिए नंगा करने के बाद कच्छे आदि को उसके मुंह में ठूंस दिया जाता था। अक्सर यह कार्यवाही शुरू होने के एकदम बाद ही आदमी बेहोश हो जाता था। लेकिन पुलिस

अपना काम पूरा करने में विश्वास रखती थी और उसके बाद उस अचेत शरीर को कोठरी में फेंक दिया जाता था।

त्रिवेन्द्रम के यन्त्रणा-गृह का एक दूसरा राक्षसी खिलवाड़ था, आदमी के गले की कंठमणि को दो उंगलियों से जकड़ना और उसे भींचना। इस उपाय के बाद आदमी कई दिनों तक पानी भी नहीं निगल सकता था।

जिन लोगों को पकड़कर अपराध शाखा के इस यन्त्रणा-गृह में ले जाया गया, उनके बारे में अक्सर फिर कभी कुछ पता नहीं लगा। वे एकदम गायब ही हो गये। ऐसे दो उदाहरण अब सामने आये हैं और उन्होंने जनता में एक ववंडर पैदा कर दिया है। ये पी० राजन और विजयन नायर नाम के दो नवयुवकों के उदाहरण हैं।

राजन कालीकट के प्रादेशिक इंजीनियरिंग कालिज का छात्र था। 1 मार्च 1976 की सुबह होस्टल पर छापा मारकर अपराध शाखा उसे पकड़ ले गई थी। इसके बाद राजन का कुछ पता नहीं चला।

केरल पुलिस अपराध-शाखा का मुख्यालय एक और लुप्त व्यक्ति, वारक्कल में किताबों की दुकान चलाने वाले एक पुरुषोत्तमन पिल्लई के पुत्र विजयन नायर के मामले में भी उलझा हुआ है। विजयन को त्रिवेन्द्रम नगर के व्यस्त ईस्ट फोर्ट बस स्टाप से भरे दिन में पुलिस हिरासत में लिया गया था। यह घटना 5 मार्च 1976 को घटी थी। विजयन को इसी वदनाम मुख्यालय में ले जाया गया और लगभग 10 दिनों तक उसे 5 अन्यों के साथ एक कोठरी में रखा गया।

कोठरी के इन साथियों में से एक ने एक संवाददाता को बाद में बताया कि विजयन को इतनी बुरी तरह यन्त्रणा दी गई थी और उसका शरीर इतना क्षत-विक्षत कर दिया गया था कि जनता के सामने उसे प्रस्तुत करने में पुलिस को बहुत परेशानी होती।

विभिन्न राज्यों की लोक संघर्ष समितियों ने जो विवरण सम्पादित किए हैं, उनसे राजनीतिक बंदियों पर पुलिस द्वारा की गई क्रूरताओं का एक स्वरूप उभरता है। जब सत्याग्रहियों को पुलिस हिरासत में लिया जाता था, तो उनके खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं किया जाता था। कुछ दिनों तक उन्हें गैर कानूनी कैद में रखा जाता था और इस दौरान उन्हें निम्न प्रकार की शारीरिक यातनाएं दी जाती थीं :—

1. नंगे शरीर पर हील वाले जूते पहनकर जोर-जोर से चलना।
2. पैरों के तलुवों पर बेंतों से मार लगाना।
3. टांगों पर एक भारी बेलन रखकर और इसके दोनों सिरों पर एक-एक पुलिस वाला बिठाकर उसे फिराना।
4. आदमी को घण्टों Z की स्थिति में झुकाकर स्थिर रखना।

5. रीढ़ की हड्डी पर मार लगाना।
6. हाथों को प्यालानुमा करके उनसे दोनों कानों पर तब तक चोट करना जब तक कि खून न बहने लगे और व्यक्ति अचेत न हो जाये।
7. बन्दूक के कुंदों से पीटना।
8. शरीर के छिद्रों में करेन्ट वाले तार प्रवेश कराना।
9. व्यक्ति को नंगा करके उसे बर्फ की सिल्लियों पर लिटाना।
10. व्यक्ति के शरीर को जलती सिगरेट से एवं मोमबत्ती की लौ से दागना।
11. व्यक्ति को भोजन-पानी न देना और नींद न आने देना और तब उसे अपना ही पेशाब पीने के लिए मजबूर करना।
12. व्यक्ति को नंगा करके, उसका चेहरा काला करके उसे सार्वजनिक स्थानों में घुमाना।
13. कलाइयों से बांधकर लटका देना।
14. व्यक्ति को 'विमान' पर चढ़ाना, अर्थात् उसके हाथों को एक लम्बी रस्सी से पीठ-पीछे बांध देना और रस्सी को ऊपर एक गरारी पर डालकर खींचना। इस प्रकार व्यक्ति बीच हवा में झूलता रह जाता है।

हरियाणा, कर्नाटक, केरल और मध्य प्रदेश की पुलिस ने ऐसे परपीड़नवादी आचरण में विशेष रुचि दिखाई। केन्द्र की अथवा राज्यों की सरकारें इन नृशंसताओं के बारे में न जानने का दावा नहीं कर सकतीं क्योंकि इन सभी सरकारों को इस विषय पर बार-बार आवेदन दिए गए। लेकिन ये बहरी बन उठीं। इतना ही नहीं, इन्होंने विरोध और प्रतिरोध मिटा डालने की आशा में ऐसे तरीकों के इस्तेमाल को प्रोत्साहन भी दिया।

गिरफ्तार लोगों की पिटाई मामूली बात है और यह कोई खबर नहीं है और संवाद के योग्य भी नहीं है। इसलिए हमने इन विवरणों में से सिर्फ असामान्य मामलों को ही छांटा है।

विमान पर चढ़ाना, लगता है, कर्नाटक पुलिस का एक बड़ा ही प्रिय खिलवाड़ था। विवरणों में कहा गया है कि गिरफ्तार सत्याग्रहियों में से लगभग हर तीसरे को "निर्दयता से पीटा गया, अन्न-जल नहीं दिया गया और विमान पर चढ़ाया गया।" केरल पुलिस का शौक था कि कैदी को कच्छा तक उतारकर नंगा कर दिया जाए और दस से बारह तक का सिपाहियों का दल उसे एक साथ पीटे। हिरासत में रहते हुए उन्हें कोई खाना नहीं दिया जाता था। यदि उनके शरीरों पर पिटाई के चिह्न बहुत प्रकट दीखते थे, तो उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया जाता था और एक जगह से दूसरी जगह बदला जाता रहता था। मध्यप्रदेश घमंड कर सकता है कि उसने अधिकतम लोगों को राजनीतिक बंदी बनाया और उनके साथ बर्बरतम व्यवहार किया। भोपाल में पोलियों की मरीज़ एक सात साल

की लड़की को बन्धक के रूप में हिरासत में ले लिया गया जिससे उसकी मां, भूमिगत श्रीमती रुक्मणी को आत्मसमर्पण के लिए मजबूर किया जा सके। श्रीमती रुक्मणी ने स्वयं को गिरफ्तार करा दिया, लेकिन उनकी बेटी को फिर भी नहीं छोड़ा गया। ग्वालियर ज़िला जेल में राजनीतिक नज़रबन्दियों को बदनाम डाकुओं के साथ रखा गया और उनसे उन्हें गालियां दिलायी गयीं।

देवास में आठ सत्याग्रहियों को पुलिस थाने ले जाकर उनके कपड़े उतार दिए गए और लकड़ी के डंडे उनके शरीरों के विवरों में डाले गए। उन्हें मजबूर किया गया कि वे एक-दूसरे के साथ गुदा-मैथुन एवं मुख-मैथुन करें और पुलिस वालों ने इन दृश्यों से अपना मनोरंजन किया। बाद में उन्हें हुक्म दिया गया कि वे जनसंघ एवं उसके नेताओं के विरुद्ध नारे लगायें और दल से इस्तीफे पर हस्ताक्षर करें, नहीं तो उनकी बेटियों पर उन्हीं के द्वारा बलात्कार कराया जाएगा।

रात के 11 बजे कैदियों के लिए ज़मानतें दाखिल की गईं, लेकिन इस पर भी उन्हें छोड़ा नहीं गया। चार बजे सुबह उन्हें जगाया गया और मीलों दूर ले जाकर कन्नाद के जंगल में छोड़ दिया गया जिससे अगली सुबह वे अदालत में पेश न हो सकें और इस प्रकार उनकी ज़मानतें ज़ब्त हो जायें। मध्य प्रदेश संघर्ष समिति ने प्रधानमंत्री, संघीय गृहमंत्री और राज्य के मुख्यमंत्री को लिखित विरोधपत्र दिए, पर सब बेकार।

पश्चिमी बंगाल में सत्याग्रहियों के साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया गया और सिलीगुड़ी, अलीपुर, मिंदनापुर और बांकुरा में उन्हें अपराधियों के साथ रखा गया।

राजस्थान की खासियत थी, सख्त पिटाई के साथ-साथ राजनीतिक नज़र-बंदियों को बिजली के झटके देना।

बंसीलाल की रियासत, हरियाणा महज़ परपीड़न के मामले में सबसे आगे निकल गया। गिरफ्तार सत्याग्रहियों को उनके जूते उनके सिरों पर रखकर बाज़ारों में घुमाया जाता था। उन्हें डंडों से पीटा जाता था। ठोकरें मारी जाती थीं और अपमानित किया जाता था। एक स्थानीय स्कूल-शिक्षक जयप्रकाश का मामला इनमें विशेष है। उसे सर्दी के दिनों में रात भर खुले में नंगा खड़ा रखा गया और साथ ही बाल्टियां भर-भरकर पानी उस पर डाला गया। पूरी रात उसे सोने नहीं दिया गया। बाद में उसे रस्सियों से बांधा गया और मुंह काला करके एक साइकिल-रिक्शा पर बिठाकर नगर-भर में घुमाया गया। पुलिसवाले उसे पीटते और उसके ऊपर थूकते उसके साथ चले। करनाल में तीन गिरफ्तार सत्याग्रहियों को पहले नंगा करके पीटा गया और फिर उन्हें लिटा दिया गया और तीन सिपाही उनके शरीरों पर उछले-कूदे।

उत्तर प्रदेश भी क्रूरता में पीछे नहीं रहा, यद्यपि उसने बहुत थोड़ी मौलिकता

प्रदर्शित की। यहां अधिकतर पिटाई ही की गई। एक मामले में एक सत्याग्रही की उंगलियों को एक तख्ते के नीचे रखकर कुचल दिया गया।

भारतीय पुलिस के तीसरे दर्जे के तरीके पुराने और उजड्ड हैं और ये मुगलों के समय से उन्हें विरासत में मिले हैं। भारतीय पुलिस, लगता है, यंत्रणा के क्षेत्र में आधुनिक तकनीकी तरीकों और कैदी से सूचनाएं निकालने के परिष्कृत उपायों से पूरी तरह अनजान है। स्पष्ट है कि इस कला से अमरीका, यूरोप और सोवियत रूस में जो नये सुधार किए गए हैं, उनके बारे में इन्होंने सुना तक नहीं है। इनका आदर्श शायद युगांडा का ईदी अमीन है।

आपातस्थिति के दौरान सरकार की किसी कार्यवाही ने कानून के शासन और सभ्य आचरण के स्थापित मापदण्डों को उतना जर्जर नहीं किया जितना कि बंदी प्रत्यक्षीकरण के नागरिक-अधिकार के स्थगन ने किया। इसने पुलिस को पूरी छूट दे दी कि वे राजनीतिक आधार पर गिरफ्तार लोगों को जितनी देर उनकी सनक की अथवा परपीड़न वृत्ति की तुष्टि के लिए आवश्यक हो हवालात में रखें। गिरफ्तार लोगों के प्रति पुलिस के दुराचार की अदालत द्वारा जांच से इस तरह पुलिस मुक्त हो गई।

इस 'प्रतिष्ठित सूची' में दिल्ली ने चालीस स्त्रियों सहित 2409 व्यक्ति जोड़े। इनमें से तीन प्राकृतिक कारणों से जेल में मर गए। भारतीय जेलों की जैसी हालत है, उसे देखते हुए तिहाड़ के वासियों को कोई गम्भीर शिकायत नहीं रही। खाना अधिक अच्छा दिया जा सकता था, लेकिन पुराना जेल नियम इसी की इजाज़त देता था। पहले 5 महीनों में हालत काफी खराब रही, लेकिन बाद में उसमें सुधार हो गया।

महिला राजनीतिक बंदियों को प्रमुखतः घिचपिच के कारण कष्ट उठाने पड़े। जेल में स्त्रियों का केवल एक वार्ड है और वेश्याओं तथा अपराधिनियों समेत सब प्रकार की स्त्रियां उसी में रखी जाती हैं। ग्वालियर की राजमाता विजयराजे और जयपुर की राजमाता गायत्री देवी को भी उसी वार्ड में रखा गया था, यद्यपि उन्हें केबिन दे दिए गए थे और अपना खाना स्वयं पकाने की अनुमति भी उन्हें थी।

इस द्वितीय स्वतंत्रता-संघर्ष ने एक और उत्साहवर्धक दृश्य उपस्थित किया। आपातस्थिति ने जो दमघोट अवस्थाएं पैदा कीं उनसे विशेषकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अपहरण से रुष्ट होकर लेखक, नाटककार और कवि अपने एकान्त कोने से निकल पड़े और उन्होंने घृणित आपातस्थिति के विरुद्ध आवाज़ उठाई।

इसका शानदार उदाहरण महाराष्ट्र से मिला है। प्रसिद्ध मराठी लेखिका 68 वर्षीया कुमारी दुर्गा भागवत दो वर्ष पहले तक राजनीति में बिल्कुल भी रुचि नहीं रखती थीं और अपने समाजवैज्ञानिक शोध एवं साहित्य में गहरी डूबी थीं।

लोगों पर छा रही भय की मानसिकता ने और आपातस्थिति द्वारा देश में

पदा की गई कब्रगाह की शान्ति ने कुमारी भागवत को बुरी तरह झंझोड़ डाला। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगी रोक ने तो जैसे उनका सांस ही रूंध दिया हो। उन्होंने अपने मित्रों के बीच घोषणा की, "अपनी आत्मा को रूंध देने की अपेक्षा मैं मर जाना अधिक पसंद करूंगी।" अपने होंठों पर ऐसे ज्वालापूर्ण शब्द लिए उन्होंने उन असह्य स्थितियों के विरुद्ध एक अकेली स्त्री का युद्ध छेड़ दिया।

सितम्बर 1976 में मराठी साहित्य सम्मेलन ने कुमारी भागवत को एक वर्ष के लिए अपना अध्यक्ष चुना। महाराष्ट्र में यह सम्मान बड़ा ही काम्य माना जाता है। अधिवेशन यशवंतराव चह्वाण के नगर कराड़ में होना तय हुआ था और स्वयं यशवंतराव स्वागत समिति के अध्यक्ष थे।

सम्मेलन का अधिवेशन जुलाई में हुआ। लगभग 10 हज़ार व्यक्ति इस त्रिदिवसीय समारोह में शामिल हुए। दुर्गा ने अपने उद्‌गार प्रकट करने के लिए यही अवसर चुना। उन्होंने बिना किसी भय या संकोच के आपातस्थिति और देश पर लगे सेंसर की निंदा की। उन्होंने यहां तक योजना बनाई कि विशेषकर आपात-स्थिति की एवं सामान्यतः सरकारी नीतियों की निंदा करते हुए एक अध्यक्षीय प्रस्ताव पेश किया जाए। उन्हें इस पेशकश से मनाकर रोका गया जिससे मेज़बान श्री चह्वाण परेशानी से बच सकें।

इस पर उन्होंने एक चाल का सहारा लिया। उन्होंने अध्यक्ष की ओर से एक प्रस्ताव पेश किया जिसमें, बम्बई में उस समय गम्भीर रूप से बीमार पड़े महान् देशभक्त श्री जयप्रकाश नारायण की शीघ्र रोगमुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई थी और यह सुझाव दिया गया था कि उनके स्वास्थ्य की कामना के लिए श्रोता दो मिनट तक खड़े होकर प्रार्थना करें।

श्री यशवंतराव चह्वाण समेत सभी श्रोता प्रस्ताव से प्रेरित होकर खड़े हो गए। कुमारी भागवत अपनी बात कह गई थीं। बाद में श्री चह्वाण ने अपनी स्थिति को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि उनके विश्वास के अनुसार आपात-स्थिति आवश्यक है और कुछ भी हो इन्दिरा गांधी उनकी नेता हैं और वे उनकी नीतियों को स्वीकार करते हैं।

अब पूरी तरह उत्तेजित दुर्गा सिर्फ एक साहित्यकार या शोध-विदुषी नहीं रह गई थीं। आपातस्थिति के विरुद्ध और उसके नाम पर की गई नृशंसताओं के विरुद्ध वे एक धर्मयोद्धा बन गई थीं। जहां भी वे जातीं और बोलने के लिए उन्हें बुलाया जाता, वे घोषणा करतीं, "साहित्यकार दुर्गा को भूल जाओ। वह मर चुकी है। मैं तो अब नागरिक स्वतंत्रता का लौटाया जाना देखने के लिए ही ज़िन्दा हूं।"

अगस्त-सितम्बर 1976 में कुछ घटनाएं घटीं, जिन्होंने कुमारी भागवत और महाराष्ट्र सरकार के बीच मामला बहुत तनावपूर्ण कर दिया। अब तक सरकार

उन्हें छूने तक से हिचकिचा रही थी, क्योंकि महाराष्ट्र के लोग उन्हें भारी सम्मान और प्रशंसा प्रदान करते हैं।

अगस्त में ऐलफिंस्टन कालिज के छात्रों ने बम्बई में अपने कालिज के एक समारोह में उन्हें निमंत्रित किया। उन्होंने छात्र संगठन-कर्त्ताओं से पहले ही साफ कह दिया कि इन दिनों भाषण का उनका विषय घृणित आपातस्थिति ही रहता है। उन्होंने उन्हें सलाह दी कि इस निमंत्रण के बारे में वे अपने प्रधानाचार्य से अनुमति ले लें। संगठन-कर्त्ताओं ने कुमारी भागवत को बुलाने की अनुमति प्रधानाचार्य से ले ली, लेकिन जो भागवत जी ने उनसे कहा था वह ज्यों का त्यों उन्होंने प्रधानाचार्य को नहीं बताया। सामान्य रूप में अनुमति दे दी गई।

कुमारी भागवत समारोह में आईं और वे आपातस्थिति में किए गए अपमानों और अपनी ही जनता के विरुद्ध सरकार द्वारा किए गए अनैतिक कार्यों के बारे में बोलीं। अधिकारियों ने घोषणा की कि यह भाषण सरकार के विरुद्ध छात्रों को भड़काने की कार्यवाही से तनिक भी कम नहीं है।

दूसरा अवसर बम्बई में जेकब्स सर्किल में गणेश उत्सव पर आयोजित एक समारोह था। इस उत्सव को लोकमान्य तिलक ने एक महान् देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय उत्सव बना दिया था। यहां दुर्गा जी ने एक सामरिक भाषण दिया और खुले रूप में लोगों को प्रेरित किया कि वे दमन के सामने न झुकें और संविधान ने जो अधिकार उन्हें दिए हैं, उनके लिए लड़ें। आमतौर से दुर्गा जी बहुत उत्तम वक्ता नहीं हैं, लेकिन इस अवसर पर उनका भाषण भावना और उत्तेजना से ऐसा भरा हुआ था कि श्रोता उसमें बह गए। सरकार की निंदा करते हुए लोगों ने नारे लगाए और गरजे, "इन्दिरा गांधी मुर्दाबाद!"

यह चरम सीमा थी। राज्य सरकार को अब कुछ न कुछ करना ही था। अगले ही दिन उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

आम चुनाव में जनता पार्टी की विजय के बाद उस समय तक छोड़ दी गईं दुर्गा भागवत को महात्मा गांधी की समाधि पर हुए शपथ-समारोह में भाग लेने के लिए दिल्ली बुलाया गया था। लंबी दूरी से चलकर वे दिल्ली आईं। जब वे नई दिल्ली स्टेशन पर उतरीं तो उन्होंने देखा कि उन्हें लेने के लिए कोई भी नहीं आया है। दिल्ली में वे अजनबी थीं और कहां जाना है यह भी नहीं जानती थीं। सौभाग्य से एक महाराष्ट्री सज्जन प्लेटफार्म पर थे, जिन्होंने उन्हें पहचान लिया और अपने घर चलने के लिए निमंत्रित किया। राजघाट के महत्त्वपूर्ण समारोह में दुर्गा जी ने भाग लिया।

एक अन्य महान मराठी लेखक को भी, जिन्होंने आपातस्थिति के और कांग्रेस सरकार के कुशासन के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी, बम्बई में चुनावों में मिली विजय को मनाने के लिए किए गए समारोह में निमंत्रित किया- गया था। लेकिन

उन्होंने जाने से इंकार कर दिया था। उनका कहना था कि वे राजनीतिज्ञ नहीं हैं। न कभी रहे हैं और न कभी रहेंगे। वे इस पाप से लड़ने के लिए अपने घर से बाहर वक्ती तौर पर ही निकले थे। अब क्योंकि दानव मारा जा चुका है, इसलिए उनके विचार से उनका काम खत्म हो चुका है और अब वे अपनी मेज़ पर वापिस लौट रहे हैं। ये थे मराठी के प्रसिद्ध नाटककार एवं व्यंग्यकार श्री पी० एल० देशपांडे, जिन्होंने चुनावों के दौरान बम्बई एवं पूना में जनता उम्मीदवारों के पक्ष में प्रचार किया और अपने परिहास एवं वक्तृता से श्रोताओं का मनोरंजन किया तथा जनता पार्टी के उम्मीदवारों के लिए लाखों मत प्राप्त किए।

एक अन्य साहित्यिक संन्यासी, जिन्हें राजनीति में कोई रुचि नहीं थी और जिन्होंने स्वयं को अपने साहित्यिक कार्य तक सीमित कर रखा था, बिहार के श्री फणीश्वरनाथ रेणु थे। ये राज्य सरकार के कुशासन, अकुशलता एवं भ्रष्टाचार के विरोध में श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा 1974 में राज्य में आरम्भ किए गए आन्दोलन में कूद पड़े थे। श्री जयप्रकाश के नेतृत्व में निकाले गए ऐतिहासिक विराट जुलूस में ये भी शामिल थे और इन्होंने लाठियों का और अश्रु गैस का सामना किया था और जेल गए थे।

'मैला आंचल', 'तीसरी कसम' और अनेक महान उपन्यासों के प्रसिद्ध लेखक रेणु उस समय रोग-ग्रस्त थे। उन्हें कई बीमारियां थीं और पेट में कैंसर का फोड़ा उनमें से एक था। लेकिन वे इतने अधिक उद्वेलित हो उठे थे कि उन्होंने अपनी एकान्त साधना छोड़कर बाहर आने और श्री जयप्रकाश द्वारा घोषित महान लक्ष्य के लिए लड़ने का फैसला किया। कौन जानता है कि जेल-निवास और राजनीतिक संघर्ष के बीच जो खतरे उन्हें उठाने पड़े, उन्हीं के कारण 56 वर्ष की आयु में अप्रैल 1977 में उनकी अकाल मृत्यु हुई।

आपातस्थिति और सरकारी दमन के विरोध में रेणु ने केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए गए पद्म श्री' को लौटा दिया था और बिहार सरकार द्वारा दी जाने वाली 250 रु० मासिक की पेन्शन को लेने से इन्कार कर दिया था।

एक लम्बी अंधेरी रात में भारत के आकाश में अनेकों अन्य नक्षत्र ऐसे निश्चय ही चमके होंगे, जिन्हें इस अध्याय में स्थान मिलना चाहिए। लेकिन इस पुस्तक को तैयार करने के लिए इतना कम समय मिला है कि इस विशाल देश में उन सब नक्षत्रों को ढूंढ़ निकालने का काम, और उनके बारे में लिखने का काम लगभग असम्भव है।

पूरे देश में कुल मिलाकर 150000 लोग जेलों में ठूंसे गए। इनमें 40000 नज़रबन्दी थे (जिन्हें बिना किसी विशेष आरोप के पकड़ लिया गया था)। शेष सत्याग्रही थे, जिन्होंने स्वयं को गिरफ्तार कराया था। 5000 अकाली भी इनमें शामिल हैं।

6
शुक्ल की दादागीरी

योजना मन्त्रालय में श्री विद्याचरण शुक्ल का काम एकदम उल्लेखनीय नहीं था। अच्छा होता वे सुरक्षा उत्पादन मन्त्रालय में ही बने रहते, जहां उनके उद्यमी व्यक्तित्व को अधिक सम्भावनाएं मिलतीं। उन्हें अपना सही काम सूचना और प्रसारण मन्त्रालय में मिला, जहां आपातस्थिति की घोषणा होते ही श्रीमती गांधी ने उन्हें श्री इन्दर गुजराल के स्थान पर भेज दिया था। यह उनके दिल का काम था। यहां नामवरी काफी थी और फिल्म स्टारों, विशेषकर नायिकाओं का चहचहाता सम्पर्क था। आपत्कालीन स्थितियों के आते ही जन सम्पर्क के साधनों पर नियंत्रण सबसे अधिक ज़रूरी हो उठा था और जैसे ही उन्होंने रीढ़-रहित पत्रकार उद्योग और फिल्मी दुनिया के कमज़ोर व्यक्तित्वों पर अपना वज़न डालना शुरू किया, उन्होंने देखा कि वे तो वस्तुतः बने ही इसी काम के लिए थे।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय में शुक्ल ने किसी को ज़रा सिर तक नहीं उठाने दिया। 28 जून शनिवार को दोपहरी के समय उन्होंने कार्यभार संभाला और प्रेस सूचना ब्यूरो के प्रमुख सूचनाधिकारी डा० ए० आर० बाजी दो बजे के लगभग दिल्ली के बड़े समाचार-पत्रों के सम्पादकों को, उसी दिन चार बजे नये मंत्री के साथ बैठक की सूचना दे रहे थे।

यह बैठक एकत्र सम्पादकों को सदा याद रहेगी। इस नई बैठक ने बता दिया कि आगे सूचना और प्रसारण मंत्रालय की नई कार्यपद्धति क्या रहेगी। जिन्होंने इस बैठक में भाग लिया, उनमें थे—'इंडियन एक्सप्रेस' के श्री एस० मुलगांवकर, 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के श्री जार्ज वर्गीज़, 'टाइम्स आफ इंडिया' के श्री गिरिलाल जैन, 'स्टेट्समैन' के श्री सुरिन्दर निहालसिंह तथा 'पैट्रियट' के श्री विश्वनाथ। 'नेशनल हेरल्ड' के श्री एम० चलपति राव उसमें नहीं थे।

तीन दिन के अंधेरे के बाद समाचार-पत्रों को बिजली अभी-अभी ही दी गई थी। सेंसर ने पूरा नियंत्रण लागू कर दिया था और तीन दिनों तक न छपने के बाद अखबार फिर से निकले थे। लेकिन सभी के हाथ-पैर कट चुके थे और वे क्षत-विक्षत थे। कुछ ने सम्पादकीय कालमों को खाली छोड़ दिया था, कुछ ने सेंसर द्वारा काटे गए हिस्सों पर चिप्पियां चिपकाकर खबरों को छापा था। सम्पादकों ने टैगोर की कविताओं को फिर से याद किया था। 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस' ने सम्पादकीय कालम में टैगोर की इस प्रसिद्ध कविता को प्रकाशित किया था :

जहां मन भयरहित हो,
और सिर ऊंचा उठा रहे;
जहां ज्ञान उन्मुक्त हो;
जहां संसार को संकरी घरेलू दीवारों से
खण्डों में तोड़ा न गया हो;
जहां शब्द सत्य की गहनता में से निकलते हों;
जहां अनथक प्रयास पूर्णता की ओर
अपनी बांहें फैलाता हो;
जहां विवेक की साफ धारा,
रूढ़ स्वभाव की नीरस रेगिस्तानी रेती में
अपना रास्ता खो न बैठी हो;
जहां तुम सतत विस्तृत होते
विचार और कर्म में मन का नेतृत्व करते हो;
हे पिता! स्वतंत्रता के इस स्वर्ग में
मेरा यह देश जागे।

'मेनस्ट्रीम' के श्री निखिल चक्रवर्ती ने अपने सम्पादकीय लेख के स्थान पर टैगोर की एक अन्य कविता को 'आज के लिए टैगोर' शीर्षक देकर छापा :

हे मेरी मातृभूमि भय से मुक्ति ही वह स्वतन्त्रता है जिसकी मांग मैं तुम्हारे लिए करता हूं—भय जो ऐसा छाया-दैत्य है, जिसे तुम्हारे अपने अपरूप सपनों ने रूप दिया है।

युगों के बोझ से मुक्ति—बोझ जो तुम्हारे सिर को झुकाए हुए है, तुम्हारी कमर को तोड़ रहा है और भविष्य की पुकार के प्रति तुम्हारी आंखों को अंधा किए हुए है।

गहरी नींद की ज़ंजीरों से मुक्ति—नींद, जिससे तुमने रात की स्तब्धता से स्वयं को जकड़ रखा है और सत्य के साहसिक पथ का संकेत करने वाले नक्षत्र का अविश्वास तुम कर रही हो।

नियति की अराजकता से मुक्ति—नियति, जिसके कमज़ोर बादवान अंधी, अनिश्चित हवाओं की मुट्ठी में हैं और जिसकी पतवार मृत्यु जैसे रूढ़ और ठंडे हाथ में है।

पुतलियों के संसार में रहने के अपमान से मुक्ति—उस संसार में जहां गतिविधि मस्तिष्क रहित तारों से संचालित की जाती है, विवेकशून्य स्वभाव से सब दोहराया जाता है; जहां पुतलियां क्षणिक नकलची जीवन में उतरने के लिए खेल संचालक की आज्ञा की धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा करती हैं।...

अपने दफ्तर में जब मंत्री महोदय संपादकों के सामने बोल रहे थे तो वातावरण के तनाव को साफ महसूस किया जा सकता था। सम्पादकों ने पाया कि यह शुक्ल अतीत में उनके जाने-पहचाने शुक्ल से भिन्न था और पहले जैसा मिलनसार और मित्रतापूर्ण नहीं था। यह एकदम एक दूसरा अवतार था। यह डाक्टर जैकिल नहीं, अब मि० हाइड था और एकदम ठंडा गम्भीर और निरंकुश था। क्या वह अभिनय कर रहा था ?

एकदम आरम्भ में ही शुक्ल ने साफ शब्दों में स्पष्ट कर दिया कि सरकार सम्पादकों के काम से खुश नहीं है और उन्हें अपने तरीकों को बदलना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि जो हो चुका है (अर्थात् आपातस्थिति का लागू किया जाना) उसके बारे में उनके निजी मत हो सकते हैं, लेकिन सरकार को कार्यवाही करनी है, आपातस्थिति को लागू करना है और उसके लक्ष्यों को पूरा करना है। उन्होंने सम्पादकों को कठोर चेतावनी दी कि आगे से खाली स्थान नहीं छोड़े जायेंगे और, टैगोर से हों या नेहरू से, कोई उद्धरण नहीं दिए जायेंगे। उनका कहना था कि आज के संदर्भ में ये उद्धरण अप्रासंगिक हैं।

श्री मुलगांवकर उनमें एक थे, जिन्होंने पूर्ण सेंसर के विरोध में सम्पादकीय कालम को खाली छोड़ दिया था। उन्होंने अपनी बात को संगत सिद्ध करना चाहा। शुक्ल ने यह कहकर उन्हें चुप करा दिया कि उन्हें ऐसा नहीं करने दिया जाएगा।

श्री जार्ज वर्गीज ने उन तीन दिनों का जिक्र किया जब बिजली कट गई थी और अखबार नहीं निकल सके थे। शुक्ल ने इस बात से इंकार नहीं किया कि बिजली सरकार के इशारे पर काटी गई थी। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस तरीके का सहारा सरकार को इसलिए लेना पड़ा क्योंकि उनका सेंसर का प्रबंध अभी पूरा नहीं हुआ था और सरकार ने महसूस किया था कि जब तक प्रबंध पूरे न हो जायें अखबारों को बंद कर देना ही उत्तम रहेगा।

एक सम्पादक बोल उठे, ऐसी तानाशाही को स्वीकार करना उनके लिए असम्भव है। "तब ठीक है !" मंत्रीजी ने उत्तर दिया, "हम देखेंगे कि आपके अखबार से कैसे बरता जाए।"

मंत्रीजी के वक्तव्य ने एकत्र सम्पादकों को सन्न कर दिया। तब श्री गिरिलाल ने बहस करनी चाही। उन्होंने कहा कि ऐसे प्रतिबंध तो अंग्रेज़ी शासन में भी नहीं लगाए गए थे। शुक्ल ने बीच में ही उन्हें काट दिया, "यह अंग्रेज़ी शासन नहीं है। यह राष्ट्रीय आपातस्थिति है।"

इसके साथ ही संवाद भंग हो गया और बैठक में एक स्तब्ध खामोशी छा गई। बैठक बर्खास्त हो गई और सम्पादकगण क्षुब्ध और उद्वेलित दीख पड़ने लगे।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय में शुक्ल एक पराकाष्ठाबादी सिद्ध हुए।

उन्होंने तत्काल अपनी शक्तियों को इस बात में लगाया कि देश के विविध जनसम्पर्क माध्यमों को, सरकार के और दल के प्रचार के एकान्तिक, संश्लिष्ट, शक्तिशाली यंत्र के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने वर्तमान चार समाचार एजेन्सियों को उनके मंत्रालय द्वारा निर्देशित एक अकेली इकाई में एकरूप कर देने का विचार उठाया। आकाशवाणी और दूरदर्शन सरकार के कोलाहलपूर्ण प्रचारयंत्र बन गए। इन दोनों ने व्यक्ति-पूजा के प्रचार का उपक्रम तक किया, जो 'फ्यूहरर' की पूजा का प्रचार करने वाले नाज़ी जर्मनी के गाँयवल रेडियो की क्षोभकर याद दिलाता है।

इसी लक्ष्य के लिए उन्होंने समाचार-पत्रों, विशेषकर विशाल महानगरीय अखबारों को भी अपनी इच्छा के अनुरूप एक स्वरूप में ढालने की कोशिश की, जिससे कि सभी जन-सम्पर्क माध्यम मंत्रालय के संचालन में एक आर्केस्ट्रा की तरह काम कर सकें। जिन पत्रों ने झुकने से इंकार किया, उन्हें सरकारी विज्ञापन न देकर दण्डित किया गया। ऐसे दण्डित अखबार लगभग सौ थे।

अखबारों की बांहें मरोड़ने का काम पूरे जोश से शुरू कर दिया गया। आमतौर से मालिक अथवा मुख्य व्यवस्थापक की बांह ही मरोड़ी जाती थी, सम्पादक की नहीं, क्योंकि उसका बहुत त्वरित परिणाम निकलता था। सरकार की नज़रों में सम्पादकों की कोई गिनती नहीं थी।

हिन्दुस्तान टाइम्स के मामले में कोई परेशानी नहीं थी क्योंकि इसके मालिक श्री०के०के०बिरला हर तरह तैयार थे। आपातस्थिति के पहले ही दिन हिन्दुस्तान टाइम्स के सूचना-पट्ट पर यह लिखकर लगाया गया था कि सब कर्मचारी आपातस्थिति के आदेशों का मन, वचन, कर्म से पालन करें। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी से समर्थित पत्र की कर्मचारी यूनियन ने प्रबन्धकों के साथ मिलकर यह ध्यान रखा कि आपातस्थिति पूरी तरह लागू की जानी है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के सम्पादक श्री जार्ज वर्गीज़ को दुहरे सेंसर के नीचे काम करना पड़ा, क्योंकि सरकारी सेंसर के अतिरिक्त पत्र में प्रकाशित खबरों और अभिमतों पर प्रबंधकों ने अपने निजी बंधन भी लागू किए थे। जब खबरें, फीचर और लेख कम्पोज़ होने के लिए नीचे जाते थे, तो कम्पोज़ीटर उस सामग्री पर कड़ी नज़र रखते थे और प्रबन्धकों को इशारा कर देते थे। तब प्रबंधक उस सामग्री को बिना सम्पादक को बताए सीधे सेंसर के पास मंजूरी के लिए भेज देते थे।

चंडीगढ़ में 'ट्रिब्यून' के ट्रस्ट ने स्वतन्त्रता की कीमत इस रूप में चुकाई कि उसके सरकारी विज्ञापन रोक दिए गए और अन्य तरीकों से उसे तंग किया गया। उस पर दबाव डाला गया कि वह वर्तमान संपादक को बदलकर सरकार की दृष्टि

से अधिक अनुकूल अन्य कोई व्यक्ति नियुक्त करे। मद्रास का 'हिन्दू' और श्री तुषारकान्ति घोष की 'अमृत बाज़ार पत्रिका' पहले ही सरकारी हथेली को चाट रहे थे और वे कोई समस्या नहीं थे। यही हालत कलकत्ता के 'हिन्दुस्तान स्टेंडर्ड' और 'आनन्द बाज़ार पत्रिका' तथा बम्बई के 'फ्री प्रेस जर्नल' की थी।

वामपंथी 'पैट्रियट' को सरकारी और अन्य विज्ञापनों की दृष्टि से सूची से निकाल दिया गया था, क्योंकि यह पत्र संजय को एक महान नेता बनाने के अभियान में हिस्सा नहीं ले रहा था और इसने उसे अपने पहले पृष्ठ से दूर ही रखा था। 'मदरलैंड' को तो ठीक आरम्भ में ही कुचल दिया गया था। दिल्ली के हिन्दी और उर्दू के समाचार पत्रों में 'मिलाप' और 'तेज' सरकारी संरक्षण में थे। लेकिन 'प्रताप' पूर्व-सेंसर की दो अवधियों और सरकारी एवं स्थानीय विज्ञापनों की मनाही के कारण डगमगाता बढ़ रहा था।

पंजाब के समाचारपत्रों के केन्द्र जालन्धर से खबर आई थी कि उस सुबह के आरम्भिक घण्टों में ही पुलिस ने अखबारों के दफ्तरों पर छापे मारे थे, प्रेसों को बन्द कर दिया था और अखबारों की छप चुकी प्रतियों को ज़ब्त कर लिया था। बाहर के स्थानों को भेजे जाने के लिए तैयार प्रातःकालीन संस्करणों से लदी टैक्सियों को भी रोक लिया गया था। एक घण्टे बाद अधिकारियों ने अखबारों की ज़ब्त प्रतियों को मुक्त कर दिया और प्रकाशकों को अनुमति दे दी कि वे आगे छापें और भेजें।

चण्डीगढ़ में पंजाब सरकार के एक प्रवक्ता ने यह स्पष्टीकरण दिया कि जालन्धर के समाचारपत्रों पर इसलिए छापा मारा गया था, क्योंकि सरकार को सूचना मिली थी कि पत्र सेनाओं के लिए जारी की गई सरकारी आदेश न मानने से सम्बन्धित श्री जयप्रकाश की अपील को छाप रहे हैं।

इन्दौर से प्राप्त सूचना में बताया गया कि उस नगर में आधी रात से कुछ ही बाद अखबारों की बिजली काट दी गई थी और सुबह का कोई अखबार प्रकाशित नहीं हो सका था।

'स्टेट्समैन' के श्री सी० आर० ईरानी और 'एक्सप्रेस' के श्री रामनाथ गोयनका ने काबू आने से इन्कार कर दिया था और इसके बाद से शुक्ल की फरेबी चालों और दमनकारी तरीकों को इन दोनों समाचारपत्रों के विरुद्ध प्रेरित कर दिया गया।

शुक्ल ने पहले यह कोशिश की कि परेशान करने वाले पत्रों के निर्देशक बोर्डों पर सरकारी प्रतिनिधि थोपे जाएं। कुछ समय के लिए 'इण्डियन एक्सप्रेस' बोर्ड में सरकार के अपने प्रतिनिधि रखे भी गए। लेकिन 'स्टेट्समैन' के श्री ईरानी ने इस पेशकश का अन्त तक जमकर विरोध किया। माफिया गुंडागीरी की हर चाल आजमाई गई। उन्होंने अपने अधिकारों के लिए अदालतों में साहसपूर्ण संघर्ष

किया और सरकार के लहू सने हाथों को अपने से दूर रखा।

जब समाचार-पत्रों का 'टाइम्स आफ इण्डिया' समूह अगस्त में जैनों को वापिस किया गया तो मालिक श्री अशोक जैन को शुक्ल ने बुलाया और सुझाव दिया कि वे अपने नये बोर्ड में संजय गांधी के प्रतिनिधि को रखें। अब अशोक जैन श्रीमती गांधी से मिले और उनसे पूछा कि क्या कोई विशेष कदम उठाए जाने हैं? तो उनका उत्तर था, "जैसा ठीक समझो करो।" थोड़ा रुककर उन्होंने सुझाव दिया कि उन्हें संजय से मिल लेना चाहिए और इस बारे में बात कर लेनी चाहिए।

13 जुलाई को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पर पूर्व-सेंसर लागू किया गया। वर्गीज़ का अनुमान था कि सम्भवतः ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि (क) राजनीतिक बंदियों को छोड़ने और आपातस्थिति में ढील देने के बारे में श्री बलराज मधोक का एक पत्र; (ख) आपातस्थिति एवं सरकार की आलोचना करते हुए आचार्य कृपलानी का एक पत्र और (ग) उच्चतम न्यायालय में श्रीमती गांधी के आवेदन पर सुनवाई के स्वीकृत अभिलेख, प्रेस ट्रस्ट के विवरण के स्थान पर निजी संवाददाता की रपट 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने छापी थी।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुनवाई की रपट का जहां तक संबंध है, वर्गीज़ ने मुख्य सेंसर अधिकारी हैरी डि पेन्हा की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। बाद में पेन्हा ने अपनी राय बदल दी। लेकिन वर्गीज़ ने पेन्हा के परिवर्तित निर्देशों की उपेक्षा कर दी, क्योंकि रपट में सिर्फ कार्य-पद्धति विषयक बहस थी और कोई तर्क नहीं थे।

कुछ भी हो इसे हिन्दुस्तान टाइम्स पर पूर्व-सेंसर लागू करने का बहाना बना लिया गया। श्री वर्गीज़ ने इस आदेश को चुनौती दी और बताए जाने की मांग की कि उन्होंने सेंसर संबंधी नियमों अथवा निर्देशों की किस धारा को तोड़ा है, जिससे पूर्व-सेंसर लागू करना पड़ा है।

अब तक शुक्ल ने समाचार-पत्रों से बरतने का एक आश्चर्यजनक तरीका विकसित कर लिया था, जिसे उन्होंने कठोरता के साथ और नैतिकता के पूर्ण अभाव के साथ इस्तेमाल किया। इन तरीकों को पर्याप्त उचित ढंग से लागू करने के लिए अपने मंत्रालय में वे एक पुलिस अफसर के० एन० प्रसाद को विशेष अधिकारी बनाकर ले आए। बाद में इस अफसर की असाधारण सेवाओं की प्रशंसा में पदोन्नति करके उसे अतिरिक्त सचिव बना दिया गया। पुलिस का आदमी काम कराने का सिर्फ एक ही प्रभावी तरीका जानता है और वह है तीसरे दर्जे का तरीका एवं ताकत, और हर मामले में उसने उन्हीं तरीकों का इस्तेमाल किया। उसकी जबान उसके तरीकों की तरह ही अक्खड़ थी।

दोष-दर्शन, मंगल-भाषण और दो-मुंही बात—ये ऐसे जहर थे, जिन्होंने सरकार के वक्तव्यों और आचरणों की विश्वसनीयता को पूरी तरह दूषित कर

डाला। शब्दों के शब्द-कोश में दिए अर्थों से विपरीत अर्थ निकाले जाने लगे।

उदाहरण के लिए जब सूचना मंत्री ने लोकसभा में इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि देश की चार समाचार-एजेंसियां अपनी इच्छा से परस्पर मिलकर एक 'समाचार' बन गई हैं, तो श्रोताओं ने जान लिया कि मंत्री जानते हैं कि वे सब जानते हैं कि मंत्री ने चार समाचार-एजेंसियों के निर्देशकों की पीठों पर पिस्तौलें लगाकर यह विलय उनसे कराया है और चिन्हित जगह पर उनसे हस्ताक्षर करा लिए हैं।

जब शुक्ल कसमें खाकर लोक सभा में यह कह रहे थे कि देश में पूर्व-सेंसर अब नहीं रहा है, उस समय बम्बई उच्च न्यायालय में सेंसर के विरुद्ध एक आवेदन की सुनवाई चल रही थी, जिसमें यह आरोप था कि एक समाचार पत्र को इसलिए दंडित किया गया क्योंकि उसने छापने से पहले एतराज़ किए गए लेख को पूर्व सेंसर के सामने पेश नहीं किया था।

ऐसे उदाहरण हैं जब किसी समाचार की रपट को अथवा लेख को सेंसर द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकार कर लिया गया और फिर टेलीफोन पर ज़बानी आदेश देकर उसे छपने से रोक दिया गया। एक सेंसर द्वारा मंजूर एक खबर आगे एक दूसरे सेंसर द्वारा काटी-छांटी जाती थी। सेंसर की शक्तियों का दुरुपयोग कांग्रेस दल के भीतरी झगड़ों से सम्बन्धित खबरों को दबाने में भी किया जाता था, यद्यपि इनका राष्ट्र की आन्तरिक अथवा बाह्य सुरक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं था। मन्त्रियों के व्यक्तिगत मित्रों की रक्षा में और उनसे सम्बन्धित भद्दी खबरों को दबाने में भी इसका गलत इस्तेमाल किया जाता था।

जब यह देख लिया गया कि दैनिक समाचार-पत्र सेंसर के आदेशों के सामने भीगी बिल्ली बन चुके हैं, तब सरकार ने एक दूसरी योजना चलाई, जिसे 'आत्म-सेंसर' कहा गया। इस योजना के अन्तर्गत दैनिक समाचार-पत्रों के संपादकों से यह आशा की जाती थी कि वे जो छाप रहे हैं उसका, सेंसरशिप आदेश के नियमों एवं 'मार्ग-निर्देशों' के अनुसार, स्वयं सेंसर करें। इन 'मार्ग-निर्देशों' की कोई कानूनी मान्यता नहीं थी, लेकिन दैनिक समाचार-पत्रों ने इन्हें नम्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया था। सरकार के दृष्टिकोण से यह योजना बहुत बढ़िया चल रही थी, क्योंकि सरकार अब दावा कर सकती थी कि देश में कोई सेंसर नहीं है और जो प्रतिबन्ध लागू हैं वे संपादकों ने स्वयं अपने ऊपर लगाए हैं।

जब भी कोई अखबार सरकार को अरुचिकर कोई खबर अथवा आलोचना छापता तो आत्म-सेंसर को समाप्त कर दिया जाता और पत्र को फिर पूर्व सेंसर के हवाले कर दिया जाता, जिसके अनुसार पत्र के पूरे पृष्ठों को सेंसर की मंजूरी के लिए उसके सामने पेश करना पड़ता। सेंसर असाधारण रूप से अधिक देर तक पत्र को रोके रखता, यहां तक कि उस संस्करण का छपना ही बेकार हो जाता।

प्रेस की स्वतन्त्रता और उन्मुक्तता को सच्चे रूप में मार देने और दफना देने का सुनिश्चित करने के उद्देश्य से सरकार ने दो अन्य उपाय भी किए। पहला यह कि कानून को रद्द करके पत्नों की स्वतन्त्रता के सिद्ध संरक्षक, समाचारपत्न-परिषद् को भंग कर दिया गया। दूसरे, उसी दिन आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर रोक का घृणित अध्यादेश, 1975 (जिसे बाद में कानून बना दिया गया) लागू कर दिया गया।

सरकार का दावा था कि यह कानून 1951 के आपत्तिजनक प्रेस सामग्री अधिनियम को फिर से लागू किए जाने से अधिक कुछ नहीं था, क्योंकि वह अधिनियम 1954 में चुक गया था। नये कानून में "आपत्तिजनक सामग्री" की परिभाषा बहुत ही विशद की गई थी। इसमें "ऐसे सभी शब्द, संकेत अथवा दृश्य-चित्र शामिल थे जो भारत के राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री अथवा संघ की मन्त्रि परिषद के किसी सदस्य, लोकसभा-अध्यक्ष अथवा राज्यपाल के प्रति अपमानजनक हों।" इस सूची में प्रधानमन्त्री एवं केन्द्रीय मन्त्रियों का शामिल किया जाना विशिष्ट महत्त्व रखता है।

इसके अतिरिक्त 1951 के कानून में जब किसी कार्यकारी अधिकारी को किसी प्रेस से ज़मानत मांगनी होती थी और किसी प्रेस का ज़ब्त करना होता था तो वैसा करने से पहले उसे सेशन्स न्यायाधीश के सामने आवेदन करना पड़ता था। लेकिन वर्तमान कानून में ज़मानतें मांगने और प्रेसों को ज़ब्त करने का अधिकार कार्यकारी अफसरों को प्रदान कर दिया गया और त्रस्त पक्ष को अधिकार दिया गया कि पहले वह केन्द्रीय सरकार से अपील करे और उसके बाद ही उच्च न्यायालय में जाए।

सूचना मन्त्री एवं उनकी मालकिन प्रधानमन्त्री, दोनों भारतीय समाचार पत्नों द्वारा जान-बूझकर किए गए कृत्यों के एवं गफलतों के काल्पनिक पापों के आरोप पत्नों के 'एकाधिकारी पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी' मालिकों पर सार्वजनिक मंचों से लगाते थे। पर निजी तौर पर सरकार उन्हीं एकाधिकारी पूंजीवादियों को पूरा संरक्षण भी देती थी और उनसे दल के लिए मोटे चन्दे इकट्ठे करने में उसकी आत्मा कोई चुभन महसूस नहीं करती थी।

सरकारी प्रवक्ता लगातार यह घोषणा करते थे कि एकाधिकारी पूंजी के दुष्ट प्रभाव से मुक्त करने एवं सक्रिय पत्नकारों की स्वतन्त्रता एवं उन्मुक्तता उन्हें वापिस दिलाने के उद्देश्य से भारतीय प्रेस को 'व्यापक बनाने' एवं उसे 'कड़ी से अलग' करने की उनकी मंशा है। लेकिन वस्तुतः, सरकार ने ऐसा करना कभी चाहा नहीं। वह वर्तमान स्थिति से एकदम प्रसन्न थी। इसके अतिरिक्त समाचार-पत्नों के मालिकों को समय-समय पर 'एकाधिकारी पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी' कहकर सरकार उन्हें धमका भी सकती थी और उनसे अधिकाधिक जोश के साथ

सरकारी आदेश भी पूरे करा सकती थी। लेकिन उनके मुकाबले संपादकों से सरकारी आदेशों का पालन कराना उतना आसान नहीं था। उनमें कुछ सनकी ऐसे थे जो इसे लेकर हंगामा खड़ा कर सकते थे।

सच्चाई यह थी कि सम्बन्धित एकाधिकारी पूंजीपतियों में से दो ने तो एकदम लीद ही कर रखी थी। इनमें एक थे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के श्री के० के० बिरला, जिन्होंने अपने को, अपने वित्तीय साधनों को एवं समाचार पत्रों को सरकार की तथा दल की सेवा में पहले से ही समर्पित कर रखा था। दूसरे 'टाइम्स आफ इण्डिया' समूह के मालिक शान्तिप्रसाद जैन थे। शायद अपनी अनेकों परेशानियों के कारण वे इतने कमज़ोर थे कि वे सरकार से झगड़ा मोल लेने की मन:स्थिति अथवा स्थिति में बिल्कुल नहीं थे। यदि उन्हें उनकी अपनी खाल में छोड़ दिया जाए तो सरकार के लिए कुछ भी करने को वे तैयार थे। अन्य महानगरीय समाचार पत्र इस श्रेणी में नहीं आते थे, यद्यपि दो को छोड़कर सभी आज्ञाकारी और अनुकूल थे।

के० एन० प्रसाद के अतिरिक्त, जो एक सार्जेन्ट-मेजर की तरह मन्त्रालय को चलाता था, वरिष्ठ अधिकारी तक मन्त्री महोदय से खुश नहीं थे। वरिष्ठ अधिकारियों के साथ शुक्ल की बैठकें कुछ ही मिनटों में समाप्त हो जाती थीं। यदि कभी कोई तर्क या वहस शुरू भी होती, तो मन्त्री महोदय के यह कहते ही वह फौरन खत्म हो जाती कि "ये आदेश ऊपर के हैं।" और ऐसा बहुत अक्सर होता था। मन्त्री के अधिकारियों को शिकायत थी कि जब भी वे लोग उनसे मिलते हैं, केवल आदेश लेने के लिए ही मिलते हैं और परामर्श देने की कोई गुंजाइश रहती ही नहीं।

एक बार 'मेनस्ट्रीम' के प्रभावशाली संपादक श्री निखिल चक्रवर्ती शुक्ल से सेंसर के उस दुरुपयोग के बारे में बहस कर रहे थे, जिसके अधीन सेंसर को उन मामलों पर भी लागू कर दिया जाता था, जिनका सरकार की नीतियों से अथवा देश की सुरक्षा से कोई सम्बन्ध नहीं था।

मन्त्री महोदय ने श्री चक्रवर्ती से अनुरोध किया, "यदि आप चाहें तो सरकार की आलोचना करें, लेकिन भगवान् के लिए संजय को न छुएं।" चुनाव में पराजय के बाद शुक्ल ने यह स्वीकार किया कि यद्यपि अब यह एक लचर दलील मालूम पड़ेगी, पर सूचना और प्रसारण मन्त्रालय के सामने कोई और चारा नहीं था और वे ऊपर के आदेशों का ही पालन कर रहे थे।

इससे यह पता लगता है कि संजय गांधी, जिसे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अतिरिक्त संवैधानिक सत्ता कहकर निन्दित किया था, 'समाचार' की गतिविधियों का संचालन करने और दिल्ली प्रशासन को चलाने के साथ-साथ सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय की कार्यवाहियों का भी निर्देशन कर रहा था।

शुक्ल ने सत्वहीन फिल्म उद्योग के साथ भी यही लुका-छिपी का खेल खेला। यह एक तानाशाह का प्रेम-घृणा का सम्बन्ध था। आकर्षक फिल्म स्टारों की संगति में वे अपनी पूरी रौनक पर होते थे। फिर भी यदि कोई उनकी सनक के आगे सिर झुकाने में चूक जाता था, तो वे उसे मीसा की धमकी दे डालते थे। यदि कोई गायक शुक्ल के सुर में गाने से इन्कार कर देता था, तो आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर उसके रिकार्ड बजाने बन्द कर दिए जाते थे। यदि कोई अभिनेत्री उनकी मांग को पूरा नहीं करती थी, तो कर की चोरी के अपराध में उसके घर पर छापा मारा जाता था। यदि कोई निर्माता वांछित मनोरंजन प्रदान करने में विफल रहता था, तो उसकी फिल्में सेंसर में अटक जाती थीं। अपना मनचाहा कराने के लिए चकमा देना, बरस पड़ना और आतंकित करना ही शुक्ल का तरीका था।

जब राजधानी में युवक कांग्रेस द्वारा आयोजित संगीत-प्रदर्शन में प्रसिद्ध गायक किशोर कुमार आ नहीं पाए, तो आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर उनके गीतों पर रोक लगा दी गई। शुक्ल ने संगीत-सम्राज्ञी लता मंगेशकर को, निजी स्तर पर आयोजित समारोहों में न गाने के अपने सिद्धान्त को छोड़ देने के लिए बाध्य किया। उन्होंने यहां तक चाहा कि वे एक युवक नेता के घर पर गायें। लेकिन लता जी ने यहां अपनी अंतिम सीमा खींच ली थी।

अन्य स्थानों की तरह फिल्म उद्योग में भी शुक्ल ने अपने गुर्गे पाल रखे थे, जो विभिन्न सौदों को तय करने में शुक्ल और उद्योग के बीच मध्यस्थता करते थे।

अखिल भारतीय फिल्म निर्माता परिषद् के अध्यक्ष श्री जी० पी० सिप्पी शुक्ल के मित्र और अंतरंग थे। वस्तुतः बम्बई के अविराम दौरों के बीच मन्त्री महोदय के ठहरने और मनबहलाव का प्रबन्ध सिप्पी ही देखते थे।

1975 के मध्य में सिप्पी ने फिल्म 'शोले' की कुछ प्रतियां विदेश भेजने की अनुमति मांगी। यह कहा गया कि उन्होंने पिकेडिली की एक फर्म के साथ इंग्लैंड और यूरोप में इस फिल्म के प्रदर्शन का समझौता किया है। फिल्म-सेंसर के बोर्ड ने कुछ आपत्तियां उठाई थीं, क्योंकि फिल्म हिंसा और सेक्स से भरपूर थी। शुक्ल ने आदेश दिया कि सेंसर बोर्ड 24 घंटे के भीतर फिल्म को सही घोषित कर दे और इसकी प्रतियां निर्यात करने की अनुमति निर्माता को दे दी जाए।

साधारण कार्यपद्धति के दौरान इस काम को निपटाने वाले अधिकारी ने लंदन में भारतीय उच्चायुक्त को एक टेलेक्स भेजकर कहा कि प्रतियां आयात करने वाली लंदन की फर्म के विषय में जांच कर ली जाए। अगले दिन जवाब मिल गया कि पिकेडिली में अथवा इंग्लैण्ड में कहीं भी ऐसी कोई फर्म नहीं है। कार्यकारी अधिकारी ने संबंधित संयुक्त सचिव को इस बारे में लिखकर भेजा।

सचिव ने अधिकारी की सतर्कता की तारीफ की और उसकी टिप्पणी को अपने हस्ताक्षर के साथ मंत्री महोदय के पास भेज दिया। अगली सुबह मंत्री ने संयुक्त सचिव को आदेश दिया कि वह छुट्टी पर चला जाए। फाइल को एक लम्बी टिप्पणी के साथ सम्बन्धित अधिकारी के पास वापिस भेज दिया गया। मंत्री महोदय ने लिखा कि उन्होंने तथ्यों की जांच कर ली है और फिल्म के निर्यात के समझौते से वे सन्तुष्ट हैं। उन्होंने अनावश्यक रुकावट डालने के कारण उस अधिकारी को डांटा और फिल्म को तत्काल मुक्त कर देने के आदेश दिए।

फिल्म वित्त निगम के अध्यक्ष पद से श्री बी० के० करंजिया का इस्तीफा एक रहस्य ही बना रह गया है। शुक्ल ने इस घटना से सम्बन्धित खबरों को भी सेंसर कर दिया था। लेकिन इसका एक स्पष्टीकरण है।

प्रतियोगिता से इतर फिल्मों का अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह फिल्म वित्त निगम के तत्वावधान में जनवरी 1976 में बम्बई में हुआ था। श्री करंजिया उस उत्सव की प्रबंध-समिति के अध्यक्ष थे और श्री जगतमुरारी मंत्रालय में उत्सवों के निदेशक थे। 23 दिसम्बर 1975 को मंत्रालय में अपने दाहिने हाथ, सचिव श्री एस० एम० एच० बर्नी को शुक्ल ने भेजा कि वह फिल्म उद्योग को समारोह में भाग लेने के लिए प्रेरित करे।

उत्सव समिति और फिल्म उद्योग के प्रतिनिधियों की उस दिन बम्बई में हुई बैठक में बर्नी ने खड़े होकर कहा कि वे यहां यह कहने के लिए आए हैं कि फिल्म उद्योग समारोह को अपने हाथ में ले ले। एक वरिष्ठ फिल्म अभिनेता ने कहा कि सचिव शायद यह चाहते हैं कि उद्योग अपना नैतिक समर्थन और सहयोग दे और वह देने में हमें खुशी ही होगी। बर्नी ने उत्तर दिया कि नहीं, नैतिक समर्थन और सहयोग का प्रश्न नहीं है। वे चाहते हैं कि उद्योग इस समारोह को अपने हाथ में ले ले, क्योंकि जो लोग इसे संभाल रहे हैं वे अयोग्य साबित हुए हैं। उन्होंने कहा कि निदेशक महोदय फिल्मों अथवा फिल्म उत्सवों के बारे में कुछ भी नहीं जानते। उसी मेज़ पर बर्नी के साथ ही श्री बी० के० करंजिया और जगत मुरारी भी बैठे थे। उन्हें इससे बहुत गहरा सदमा पहुंचा। बर्नी ने उनकी तरफ देखा तक नहीं।

जब बैठक भोजन के लिए विसर्जित हुई, तो श्री बी० के० करंजिया बर्नी के पास पहुंचे और बोले कि वे बैठक में तमाशा नहीं करना चाहते थे, लेकिन सचिव वहीं और उसी समय उनका इस्तीफा स्वीकार कर लें। जगतमुरारी ने भोजन करने से इन्कार कर दिया। विरोध का उन्होंने यही तरीका अपनाया।

शुक्ल और उनके पिट्ठुओं ने, जिन्हें परेशान अधिकारी 'छोटे शुक्ल' के नाम से पुकारते थे, नई दिल्ली में हुए छठे अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह में बड़ी ही तबाही मचाई। मंत्रालय और उत्सव निदेशालय ने यह घोषणा की थी कि

मंत्रियों तक को फिल्म समारोह के टिकट खरीदने पड़ेंगे। कोई भेंटस्वरूप टिकट जारी नहीं किए जाएंगे। लेकिन वास्तविक व्यवहार में कम से कम सौ भेंट रूप टिकट प्रतिदिन मंत्री शुक्ल के घर वालों और मंत्रालय के लोगों के लिए जारी किए जाते रहे।

शुक्ल का विचार था कि उत्सव की जूरी की अध्यक्षता करने के लिए सोफिया लारेन को बुलाया जाए। इस सूची में अन्य थे, एलिजावेथ टेलर एवं ब्रिजिटे वार्डोत। जूरी की अध्यक्षता के लिए श्री सत्यजित रे को तभी निमंत्रित किया गया, जब मिस लारेन ने आने से इन्कार कर दिया।

उत्सव में समाचार पत्रों को जाति-बाह्य करार दे दिया गया। लगभग 290 फिल्में दिखाई गई थीं। इनमें केवल 40 प्रेस को दिखाई गईं। इन 40 में 25 प्रतियोगिता वर्ग की थीं और सिर्फ 15 सूचना वर्ग की। प्रेस के शो दिसम्बर-जनवरी के महीने में सुबह सात बजे के अप्राकृतिक समय पर शुरू होते थे और दोपहर ग्यारह बजे तक लगातार चलते थे।

शुक्ल और उनके पिट्ठू भारत द्वारा आयोजित इस अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव के लिए किसी सही भारतीय फिल्म को प्राप्त करने में भी विफल रहे। उन्होंने मृणाल सेन की 'मृगया' के बारे में सोचा था। लेकिन मृणाल ने इसे यूरोप के उत्सव में भेजना अधिक पसन्द किया। श्री श्याम वेनेगल ने अपनी 'मंथन' को भेजना स्वीकार कर लिया था, लेकिन मंत्री महोदय बेनेगल द्वारा 'निशान्त' को शिकागो और लन्दन उत्सवों में भेजे जाने पर उससे नाराज़ हो गए। शुक्ल की इच्छा के विरुद्ध बेनेगल ने प्रधानमन्त्री के हस्तक्षेप पर 'निशान्त' को मुक्त करा लिया। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का एक अधिकारी 'मन्थन' देखने के लिए बम्बई गया, लेकिन वह आधी फिल्म देखकर ही उठ आया और इसके बाद बेनेगल ने दिल्ली से कोई सूचना प्राप्त नहीं की। शुक्ल ने एक बार सोचा कि 'शोले' को भेज दिया जाए। लेकिन अन्त में मन्त्रालय ने बहुत-कुछ एक साधारण बम्बइया फिल्म 'मौसम' को भारतीय प्रविष्टि के रूप में स्वीकार कर लिया। फिल्मों एवं फिल्म कलाकारों को राष्ट्रीय पुरस्कार वितरण का वार्षिक समारोह सूचना एवं प्रसारण मन्त्री के लिए अपनी कृपा बांटने का अवसर होता है। 1976 के समारोह के लिए शुक्ल ने तय किया कि उत्सव में नृत्य के लिए हेमा मालिनी को बुलाया जाए। जब बताया गया कि उसका कार्यक्रम पहले से ही बम्बई में निश्चित है, तो शुक्ल का उत्तर था, "उसे लाओ। मैं उसे यहां चाहता हूं। यह आदेश है।"

मन्त्रालय के लोग जानते थे कि जब शुक्ल किसी आकर्षक अभिनेत्री को आदेश देता है तो इन्कार करना उसके लिए सहज नहीं होता। हेमा आई, लेकिन अपनी शर्तों पर ही आई।

1976 के आरम्भ में होटलों की ओबराय श्रृंखला ने सूचना एवं प्रसारण मंत्री से प्रार्थना की कि विदेशों में अपने होटलों का विस्तार करके भारत में पर्यटन का विकास करने के लिए उन्हें धन दिया जाए।

अमेरिका की मोशन पिक्चर्स एक्सपोर्ट एसोसिएशन का लगभग 5·2 करोड़ रुपया सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के यहां अटका पड़ा था। एसोसिएशन इस बात के लिए राजी हो गई थी कि भारत सरकार इस धन का इस्तेमाल कर ले। एक धुंधला-सा समझौता यह था कि इस धन का उपयोग देश में सिनेमा के विकास के लिए किया जाए। अब ओबराय चाहते थे कि विदेशों में उनके होटलों के विकास के लिए यह धन उन्हें दे दिया जाए। शुक्ल ने एक अधिकारी से कहा कि वह जल्द से जल्द इससे संबंधित एक प्रस्ताव तैयार करे।

अधिकारी ने सोचा कि यह एक बड़ी धनराशि का मामला है। इसलिए उसने आर्थिक मामलों के मन्त्रालय और पर्यटन विभाग दोनों को लिखकर पूछा कि क्या ओबराय ने इस बारे में उनसे भी प्रार्थना की है ? दोनों ने 'नहीं' में जवाब दिया। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के अधिकारी के सुझाव पर आर्थिक मामलों के मन्त्रालय ने एक बैठक बुलाई, जिसमें पर्यटन विभाग के और ओबराय के प्रतिनिधि भी आए। जब शुक्ल को इस बात का पता लगा तो उन्होंने 'अपना मुंह बहुत खोलने के लिए' उस अधिकारी को डांटा और उसे आदेश दिया कि वह आर्थिक मामलों के मन्त्रालय को लिखे कि यह धन ओबराय को देने में सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय को कोई एतराज़ नहीं है।

ऐसा पत्र विधिवत् चला गया। आर्थिक मन्त्रालय के हैरान अधिकारियों ने एक दूसरी बैठक बुलाई, जिसमें सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के अधिकारी से पूछा गया कि उसके मन्त्रालय ने अचानक विचार-परिवर्तन क्यों किया। अधिकारी ने स्पष्ट किया कि मन्त्रालय ने इस धन के वाणिज्यिक उपयोग के बारे में पहले विचार नहीं किया था। अब क्योंकि ऐसा एक प्रस्ताव आया है, इसलिए फिल्म वित्त निगम, इम्पेक और बच्चों की फिल्म सोसायटी को कुछ धन देकर, बाकी बची राशि को प्रार्थी को दे देने की बात पर मन्त्रालय विचार करेगा। यह बची हुई राशि लगभग 3·5 करोड़ रुपये बनी।

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के अधिकारी को बाद में पता चला कि विदेशों में अपने होटलों पर ओबराय ने कुछ वर्ष पहले विश्व बैंक द्वारा दिए गए ऋण से काफी अधिक खर्च किया था। रिज़र्व बैंक अब पूछ रहा था कि उनके होटलों पर खर्च किया गया वह अतिरिक्त धन विदेशी मुद्रा में उनके पास कहां से आया।

यह अतिरिक्त धन लगभग पांच करोड़ रुपया था। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के अधिकारी का अनुमान था कि मन्त्रालय से जो धन ओबराय चाह रहे हैं, उसका इस्तेमाल वे रिज़र्व बैंक को सन्तुष्ट करने के लिए करेंगे। इस प्रकार

उसका अन्दाज़ा था कि इस धन में किसी भी कटौती का ओबराय विरोध करेंगे। लेकिन वह गलत निकला। ओबराय दिए गए 3·5 करोड़ पर राज़ी हो गए और इससे भी आश्चर्यजनक बात यह कि आर्थिक मामलों के मन्त्रालय ने चुपचाप इस लेन-देन को मंजूरी दे दी। यह घटना मार्च 1977 के आस-पास घटी थी।

कलकत्ता के मेट्रो सिनेमा समूह का सरकार द्वारा लिया जाना शुक्ल के झांसा देने और धौंस जमाने के तरीके का एक उदाहरण है। एक सुबह शुक्ल ने सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के एक अफसर को बुलाया और आदेश दिया कि बम्बई एवं कलकत्ता के मेट्रो सिनेमा समूहों को सरकारी नियन्त्रण में ले लिया जाए। जब हैरान अधिकारी ने पूछा कि कैसे, तब शुक्ल ने कहा, "मैंने मामले का अध्ययन कर लिया है। इन समूहों में तस्कर घुसे हुए हैं और कर्मचारियों को नियमित वेतन नहीं दिया जाता। इस प्रकार हमारे पास एक मज़बूत कारण है।"

अधिकारी ने यह जानना चाहा कि इस विशाल सम्पत्ति को किन नियमों के अधीन कब्ज़े में लिया जाए। शुक्ल ने उत्तर दिया, "नियमों के बारे में भूल जाओ। इस काम को करने के लिए सभी प्रकार की पुलिस सहायता तुम्हें मिलेगी।" मन्त्री ने समझाया कि प्रतिकूल प्रचार का भी डर नहीं है, क्योंकि प्रेस कठोर सेन्सर के अधीन है। कुछ दिन बाद शुक्ल ने उस अधिकारी का फिर बुलाया और कहा कि उन्होंने महाराष्ट्र एवं पश्चिमी बंगाल के मुख्यमन्त्रियों से बोल दिया है और उसे कलकत्ता जाकर वहां के मेट्रो सिनेमा-समूह पर अब कब्ज़ा कर लेना चाहिए।

अधिकारी अब भी चिन्ता में था। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय इन व्यापारिक सिनेमाघरों को लेकर क्या करेगा? फिल्म प्रदर्शित करना अथवा वितरित करना तो मन्त्रालय का काम नहीं है। वह इन सिनेमाघरों को कैसे चलायेगा? मन्त्री महोदय ने उससे कहा कि वह विधि मन्त्रालय से सलाह ले। विधि मन्त्रालय उस अधिकारी से सहमत निकला। फिल्मों का प्रदर्शन अथवा वितरण केन्द्रीय सरकार के कार्यों में से एक नहीं है। "लेकिन यदि आपके मन्त्री इन कार्यों को करने के इच्छुक हैं, तो वे संविधान में संशोधन करा सकते हैं।" विधि मन्त्रालय के अधिकारी ने व्यंगपूर्वक कहा।

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधिकारी ने आकर शुक्ल से बताया। मन्त्री महोदय ने यह सुझाव सुना और बोले, "तब तो कोई समस्या ही नहीं है। हम संविधान में संशोधन करा लेंगे।"

उस अधिकारी की चतुराई को धन्यवाद कि उसने संविधान को बचा लिया। उसने सुझाव दिया कि मेट्रो समूह को वित्त निगम के नाम में लिया जा सकता है। लेकिन प्रश्न था कैसे?

फरवरी के आरम्भ में उस अधिकारी को यह स्पष्ट फरमान देकर कलकत्ता

भेज दिया गया कि आवश्यक हो तो पुलिस की सहायता लेकर भी मेट्रो समूह को अधिकार में ले लिया जाए। कलकत्ता पहुंचने पर अधिकारी ने पाया कि अधिकतर मन्त्री और राज्य के उच्चतम अधिकारी दिल्ली गए हुए हैं। इसलिए वह राज्य के सूचना विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी से मिला और उसकी सहायता से रातों-रात भूमि अधिग्रहण कानून के अन्तर्गत एक नोटिस उसने छपवा लिया। नोटिस में लिखा था कि केन्द्रीय सरकार मेट्रो सम्पत्ति पर अधिकार करने का इरादा रखती है।

इस दस्तावेज को लेकर अगली सुबह वह मेट्रो के मैनेजर के दफ्तर में पहुंच गया। मैनेजर को यह बताते हुए उसने बात शुरू की कि सरकार मेट्रो के प्रवन्धकों की तस्करी की तथा अन्य गैरकानूनी गतिविधियों की पूरी जानकारी रखती है और सरकार ने कार्यवाही करने का निश्चय किया है और वे सब जल्द ही जेल में होंगे। डरे हुए मैनेजर ने प्रार्थना की कि उसे बख्श दिया जाए। अधिकारी ने इस शर्त पर मैनेजर के प्रति दया दिखाने का वचन दिया कि वह भवन और अन्य तालियां आदि उसे सौंप दे। मैनेजर ने अधिग्रहण आदेश को पढ़ा और फौरन उस मांग को पूरा किया। कुछ ही मिनटों में पुलिस मेट्रो के भवनों पर पहरा दे रही थी और सरकार के आदमी सम्पत्ति का ब्यौरा तैयार करने के लिए बुला लिए गए थे। टिकट बेचना बन्द कर दिया गया था और लोगों से कहा गया था कि जो टिकट बिक चुके हैं उनके पैसे वापस ले लें। कुछ ही दिनों में काम पूरा हो गया और मेट्रो को अपनी जेब में डालकर अधिकारी नई दिल्ली लौट आया।

फिल्म के लोगों के साथ शुक्ल का जो उद्धत व्यवहार था, जो भाषा वह इस्तेमाल करता था, उनके जो मनमाने अपमान उसने किए थे, उनसे उद्योग में उसके मित्र भी उसके विरुद्ध हो गए थे। जब चुनावों की घोषणा हुई तो उसने फिल्म के अभिनेताओं को कांग्रेस के लिए प्रचार करने का आदेश दिया। लेकिन जनता में शासक-दल के प्रति इतना क्रोध था कि उसने चोटी के अभिनेताओं को भी नहीं बख्शा। उत्तर प्रदेश में प्रचार करते हुए दो शीर्षस्थ अभिनेताओं को मंच पर बोलने नहीं दिया गया। शत्रुघ्न सिन्हा के अनुसार शुक्ल ने उसे धमकी दी थी कि यदि उसने बिहार में कांग्रेस दल के लिए काम नहीं किया तो उसे बड़ौदा डाइनेमाइट मामले में फंसा लिया जाएगा।

जब आपातस्थिति हटा ली गयी और हवा में आए बदलाव ने बता दिया कि जनता पार्टी एक ताकतवर विरोधी के रूप में उभर रही है तो फिल्म उद्योग के कुछ नये अभिनेताओं ने समझ लिया कि अत्याचारी को उठा फेंकने का यही अच्छा मौका है। अब नहीं किया तो कभी नहीं किया। 13 मार्च को आनन्द भ्राताओं (देव, विजय और चेतन), प्राण, शत्रुघ्न सिन्हा और अमोल पालेकर समेत फिल्म व्यक्तित्वों के एक समूह ने फिल्म के लोगों का आह्वान किया कि वे

जनता पार्टी के समर्थन में खुलकर काम करें। जुहू विलेपार्ले मैदान में उनकी सभा शानदार रूप में सफल रही। निर्माता-निर्देशकों और अभिनेताओं ने जनता को बताया कि किस तरह अपमान और भय से उन्हें दबाकर रखा गया था। इस सभा का असर दूर-दूर तक महसूस किया गया। शुक्ल के क्षेत्र के सिनेमा घर, जो पहले कांग्रेस का समर्थन कर रहे थे, अब जनता पार्टी के चुनाव दफ्तर बन गए।

फिल्म के कुछ लोग थे जो नेहरू परिवार के प्रति अपनी व्यक्तिगत वफादारी के कारण इस नयी लहर से दूर रहे। लेकिन अनेकों सन्ध्याओं में शुक्ल का मेज़बान जी० पी० सिप्पी तक शुक्ल के उत्पीड़क तरीकों की निन्दा करता था। जब शुक्ल के हारने की खबर बम्बई पहुंची तो फिल्म उद्योग ने विजय के उपलक्ष्य में अनेक भोज देकर उसे मनाया।

7
सेंसर पागल हो उठा

जनता पार्टी ने आपातकाल के दौरान सेंसर के काम का जो अध्ययन और विश्लेषण किया है, उससे पता लगता है कि, "सेंसर आदेश को आरोपित न करने के निर्णय से पहले के 18 महीनों के बीच सेंसर में ढील देना तो बहुत दूर की बात है समय के बीतने के साथ-साथ उसे अधिकाधिक व्यापक रूप में इस्तेमाल किया जाता रहा। पूर्व-सेंसर और कुछ मजमूनों के प्रकाशन पर पूरा प्रतिबन्ध केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों ने ऐसे प्रयोजनों के लिए भी लगाया था, जिनका मार्गनिर्देशों अथवा सेंसर की निर्धारित संहिता से कोई भी संबंध नहीं था।"

सेंसर लगभग प्रतिदिन टेलीफोन पर पूर्व-सेंसर के जबानी आदेश देता था। आदेश भंग करने पर दंड दिया जाता था। अदालती कार्यवाहियों एवं फैसलों को दबाने अथवा उन्हें 'मुलायम' करने के लिए संसद की कार्यवाहियों को पूरी तरह छुपाने के लिए और प्रमुख मुद्दों पर विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण को जानने से जनता को रोकने के लिए पूर्व-सेंसर का इस्तेमाल किया जाता था। मुख्य लक्ष्य यह था कि खबरों पर पूरा नियन्त्रण रखा जाए।

सरकार की विभिन्न उलझनों को ढकने के लिए कुछ चुने हुए व्यक्तियों के पक्ष-पोषण और अन्यों का भंडाफोड़ करने के लिए भी सेंसर का प्रयोग किया जाता था। कभी-कभी टिप्पणी और कभी 'प्रतिकूल टिप्पणी' पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता था। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के तबादले पर कोई समाचार अथवा टिप्पणी नहीं दी गई। पांडिचेरी लाइसेंस घोटाले में जालसाज़ी के आरोपों में फंसे कांग्रेसी संसत्सदस्य तुलमोहनराम के मामले की कार्यवाही पूर्व-सेंसर के अधीन रही। अक्सर सार्वजनिक रुचि की विभिन्न घटनाओं पर केवल 'समाचार' की रपटों, जिनका मतलब था सरकारी विवरणों, के छापे जाने की ही अनुमति दी गई थी।

'जबानी सेंसर आदेशों' की सूची में निम्न पर प्रतिबन्ध शामिल थे :

दिल्ली में झुग्गियों के गिराए जाने के बारे में सभी रपटों, विवरणों, फोटो-चित्रों तथा शीर्षकों पर;

अगली सूचना तक बोनस के बारे में रपटों, टिप्पणियों, लेखों अथवा सम्पादकीय लेखों पर;

बोनस को लेकर की गयी सांकेतिक हड़तालों पर;

जम्मू और काश्मीर के केन्द्र के साथ संबंधों को लेकर अफ़ज़ल बेग के भाषणों पर ;

मीसा के नज़रबन्दों से मिलने पर रोक लगाने के दिल्ली प्रशासन के आदेशों को रद्द करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के फ़ैसले पर।

डी० डी० ए० द्वारा जामा मस्जिद के चारों ओर के मकान गिराए जाने की रपटों अथवा चित्रों पर, सिवाय उनके जिन्हें डी० डी० ए० ने जारी किया हो अथवा मंजूर किया हो। सम्पादकीय लेखों को पहले डी०डी० ए० से मंजूर कराना होगा ;

कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव के मसौदे के विवरणों पर;

वन्य पशु बोर्ड की बैठक में किए गए इस प्रश्न पर कि अमुक महाराजा के भाई को शिकार का लाइसेंस क्यों दिया गया ;

श्री जयप्रकाश नारायण की बम्बई यात्रा का पूर्व-सेंसर होगा। कोई चित्र इस्तेमाल नहीं किए जाएंगे;

यह तथ्य तक कि वित्तमन्त्री श्री सी० सुब्रह्मण्यम् ने अपने बजट भाषण के दौरान कुछ देर के लिए आराम किया, प्रेस की रपटों में नहीं लिखा जाना था;

सेंसर को तथा सेंसरशिप एवं आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन पर रोक सम्बन्धी विधेयक को लेकर चल रहे अदालती मामले से सम्बन्धित संसदीय प्रश्नों पर पूरा प्रतिबन्ध;

फिल्म वित्त निगम से श्री बी० के० करंजिया के त्यागपत्र एवं नये अध्यक्ष की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध।

31 मार्च के सेंसर के एक आदेश में कहा गया था—कोका कोला निर्यात निगम को लेकर किए गए लोक सभा प्रश्न पर 'समाचार' की रपट ही छापी जाएगी। यदि नहीं तो पूर्व-सेंसर।

अप्रैल 1976 के बीच दिया गया एक अन्य आदेश इस प्रकार है, "सेंसर तुर्कमान गेट की घटना का सरकारी ब्यौरा दे रहा है। इसे उभार कर नहीं छापा जाना है। प्रस्तावित शीर्षक के साथ ही इसे इस्तेमाल किया जाना है। किसी और शीर्षक के लिए पूर्व-अनुमति लेनी होगी।"

एक और आदेश इस प्रकार है, "संजय गांधी आज अपने सम्मान में दिए गए एक समारोह में से उठकर चले गए। इसकी कोई रपट अथवा चित्र नहीं छापा जाना है।"

एक अन्य आदेश कहता है, "लंदन में दुकान से चोरी के अपराध में अभिनेत्री नर्गिस की गिरफ्तारी की खबर नहीं छापी जानी है।"

अन्य प्रतिबन्धित मुद्दे इस प्रकार थे :

बोइंग रिश्वतों की रपट (22 जून)

बेगम विलायत महल द्वारा नयी दिल्ली रेलवे स्टेशन पर धरना देने की खबर (22 मई),

डालमिया जैन एयरवेज़ के मामले में फैसले की खबर,

रोहतक में आज (9 जून) बंसीलाल के भाषण की हर रपट में से पाकिस्तान के साथ भावी संबंधों अथवा संघर्ष का कोई भी ज़िक्र निकाल दिया जाए,

14 जुलाई तक उगांडा के एन्टेवे हवाई अड्डे पर इज़रायली हमले की कोई खबर, टिप्पणी, चित्र नहीं छापा जाएगा, विशेषकर हमले (8 जुलाई) को संगत ठहराते हुए,

एन्टेवे पर हमले को लेकर सुरक्षा-परिषद की बहस (10 जुलाई),

एक सेंसर-निर्देश (29 जुलाई) को लेकर 'स्टेट्समैन' की याचिका पर दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले से सम्बन्धित कोई खबर या टिप्पणी नहीं,

आचार्य विनोबा भावे की ओर से राधाकृष्ण बजाज का वक्तव्य, जिसे 'समाचार' प्रसारित कर रहा है, सुर्खी देकर छापा जाना चाहिए (10 अगस्त),

राज्यसभा सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी द्वारा आज (10 अगस्त 1976) संसद् में उठाए गए पाइंट आफ आर्डर के बारे में कोई खबर या टिप्पणी नहीं छापी जाएगी, न ही उनके बारे में संसद् से सम्बन्धित किसी अन्य रपट का इस्तेमाल किया जाएगा,

श्री केवल सिंह से 'न्यूयार्क टाइम्स' के विलियम बोर्डर की भेंट वार्ता को प्रकाशित नहीं किया जाएगा।

19 दिसम्बर 1976 को जारी किए गए एक अन्य निर्देश में था, "कांग्रेस के भीतर के तथा युवा कांग्रेस एवं अखिल भारतीय कांग्रेस के बीच के अन्तर्दलीय झगड़ों से सम्बन्धित वृत्तान्तों, टिप्पणियों तथा रपटों को छपने से तत्काल रोक दिया जाएगा। ऐसा, विशेषकर पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा एवं केरल के बारे में किया जाएगा।

एक अन्य आदेश में कहा गया कि 14 दिसम्बर को श्री संजय गांधी का जन्मदिन मनाने के बारे में मुख्यमन्त्रियों एवं कांग्रेसी नेताओं का कोई वक्तव्य प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिए।

8 जनवरी 1977 का एक आदेश था, "नेताओं की बैठकों समेत कांग्रेस के अन्तर्दलीय मामलों से सम्बन्धित सभी वृत्तान्तों को कृपया पूर्व-सेंसर के लिए भेजा जाए।

खबरों के ऊपर ऐसे व्यापक पंजे के फैले होने के बावजूद वस्तुतः यह चमत्कार ही है कि मुख्य सेंसर अधिकारी, हैरी डि पेन्हा को भारतीय एवं विदेशी सभी पत्रकारों से प्रशस्ति प्राप्त हुई।

जैसी कि उम्मीद थी, नई दिल्ली में कार्यरत विदेशी संवाददाताओं ने सेंसर

के नये कठोर नियमों के विरुद्ध विद्रोह किया। एक तो यह कि विदेशी संवाददाताओं द्वारा विदेशों के अपने कार्यालयों को टेलीफोन द्वारा संवाद भेजने को रोकना अथवा उसकी जांच करना बहुत ही कठिन था। फिर कुछ लोग अपने समाचार सेंसर के माध्यम से भेजते थे, लेकिन बाद में टेलीफोन पर छोड़े गए हिस्सों को पूरा कर देते थे।

'वाशिंगटन पोस्ट' के लेविस एम० साइमन्स को 13 जून को देश से निकाल दिया गया था। 14 जुलाई को 'फाइनेंशियल टाइम्स' लन्दन के केविन रेफर्टी को भारत में प्रवेश की इजाज़त नहीं दी गई थी। 'लन्दन टाइम्स' के पीटर हेज़लहर्स्ट को और 'लन्दन डेली टेलीग्राफ' के पीटर गिल तथा 'न्यूज़वीक' की कुमारी लोर्ना जेन्किन्स को 20 जुलाई को उस समय देश से चले जाने के आदेश दिए गए, जब उन्होंने सेंसर के नियमों का पालन करने के वचन-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

भारत में विदेशी संवाददाताओं के निष्कासन की इस शृंखला और उनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस ने काफी शोर मचाया। 21 जुलाई को विदेशी संवाददाताओं की रपटों पर पूर्व-सेंसर सरकार ने समाप्त कर दिया, लेकिन मार्गनिर्देशों का एक क्रम जारी किया, जिनका पालन न करने पर विदेशी संवाददाताओं को निष्कासित किया जा सकता था। बी० बी० सी० ने 23 जुलाई को भारत में अपना समाचार-संग्रह का कार्य बन्द कर दिया और यह घोषणा करते हुए कि नये नियम अस्वीकार्य हैं, नई दिल्ली के अपने संवाददाता को वापस बुला लिया।

25 जुलाई को मार्गनिर्देशों के स्थान पर सरकार ने एक दस्तावेज़ जारी किया, जिसके अनुसार संवाददाताओं के लिए आवश्यक हो गया कि सेंसर के निर्देशों के प्रकाश में अपनी रपटों की पूरी ज़िम्मेदारी वे स्वयं लें और अधिकतर विदेशी संवाददाताओं ने इस संशोधित दस्तावेज़ पर दस्तखत कर दिए। फिर भी एसोसियेटेड प्रेस के संवाददाता एडवर्ड कोडी को 7 अगस्त को देश से निकाल दिया गया और 12 अगस्त को यू० एस० आई० ए० ने यह घोषणा की कि वे 'वायस आफ अमेरिका' के संवाददाता को वापस बुला रहे हैं, क्योंकि वे सरकार द्वारा लागू की गई सब शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकते।

पूरे के पूरे भारतीय प्रेस तथा व्यक्तिगत सम्पादकों एवं पत्रकारों ने उनके प्रति सरकार के इस अन्यायपूर्ण रवैये पर क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की ?

यह मानना पड़ता है भारतीय पत्र आमतौर से इस अन्याय के विरुद्ध उठ खड़े होने में विफल रहे। एक आधुनिक राज्य में जनता के प्रतिनिधि बनने अथवा सूचनाओं के संचरण के माध्यम की एक साधारण भूमिका तक को निभाने में

समाचार-पत्र असफल रहे। स्पष्ट है कि भारतीय समाचार-पत्रों के ढांचे में ही ऐसी कोई जन्मजात कमी है जो उनके लिए यह असम्भव बना देती है कि वे प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए मुकाबले पर खड़े हो सकें और आवश्यकता पड़ने पर कष्ट सह सकें और बलिदान दे सकें।

आपातस्थिति के उन्नीस महीनों के बीच के दृश्य को देखकर एक तथ्य स्वयं प्रकट है: जब किसी पत्र के मालिक का एकमात्र व्यवसाय अखबार चलाना हो तथा कोई अन्य वाणिज्यिक हित समझौता करने के लिए उसे विवश न करता हो, तभी अखबार का मालिक अपने पत्र की ईमानदारी और स्वतन्त्रता के लिए और उसके माध्यम से प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने को प्रेरित होता है। यह बात जितनी 'स्टेट्समैन' के लिए सच निकली, उतनी ही 'इण्डियन एक्सप्रेस' के लिए भी।

'इण्डियन एक्सप्रेस' के मालिक श्री रामनाथ गोयनका प्राथमिक रूप में एक पत्र-प्रकाशक हैं, जो बाद में बिचलकर दूसरे उद्योगों में भी पहुंच गए, लेकिन समाचारपत्र उद्योग ही उनका मुख्य आधार है। श्री ईरानी पूरे समय काम करने वाले एक पत्रकार हैं और अपने पत्रकार-उद्योग में वे गहराई से डूबे हैं और इसका उन्हें गर्व भी है। दूसरी ओर, जहां किसी अखबार का मालिक एक एकाधिकारी पूंजीपति है, जो अखबार का एक अनुपस्थित स्वामी है तो कोई भी बलिदान देकर अपने पत्र की ईमानदारी को बनाए रखने की दिखावटी चिन्ता भी वह नहीं करता।

उसके लिए, अखबार उसके अन्य उद्योगों में से बस एक उद्योग है। इन सभी को उसकी पूंजी पर अच्छी कमाई करके उसे देनी चाहिए। कुछ भी और वह नहीं चाहता। उसके लिए अखबार एक दूसरे प्रकार की फैक्टरी है, जो पटसन या सीमेंट के स्थान पर खबरें पैदा करती है। साथ ही इससे राजनीतिक प्रभाव भी उसे प्राप्त होता है। इसलिए स्वयं उसकी और उसके व्यापारिक हितों की उन्नति के लिए इस महत्त्वपूर्ण स्वत्व से लाभ उठाया जाना ही चाहिए। यदि उसका अखबार उसके अन्य प्रमुख हितों के रास्ते में आता है तो उसे अखबार को डुबा देने या संपादक को अथवा अखबार की नीति को बदल देने में कोई हिचक नहीं होती। ऐसी मानसिक स्थिति में प्रजातंत्र में, प्रेस की उदार एवं सार्वजनिक भूमिका की किसी बौद्धिक अवधारणा की कल्पना भी असम्भव है।

अखबार के ऐसे ढांचे में संपादक एवं अन्य पत्रकार अच्छे वेतन पाते हैं, अच्छा खाते-पीते हैं। सम्पन्नता से मुलायम पड़ जाने के कारण अपने कन्धे उचकाने और व्यवस्था के अनुकूल चलने के सिवाय काम का कोई और रास्ता वे सोच ही नहीं सकते। उनके लिए सिद्धान्तों के अथवा आदर्शवाद के लिए उठ खड़े होने की धारणा एकदम अग्राह्य होती है। हम इस व्यवहारवादी दर्शन को यह कहकर तर्कसंगत ठहराते हैं कि ऐसे ढांचे में किसी संपादक अथवा पत्रकार के

लिए सिद्धान्त के लिए लड़ना असम्भव है, क्योंकि वह एक बड़ी मशीन के पहिये में एक पेंच से अधिक कुछ और नहीं है। जार्ज वर्गीज़ ने इस सिद्धान्त का भंडा फोड़ा। उन्होंने सम्पादक के अपने कर्तव्यों को गम्भीरता से निभाया। वे उसकी कीमत चुकाने के लिए भी तैयार रहे और दरअसल उन्होंने चुकाई भी।

यह दावा किया जा सकता है कि श्री वर्गीज़ का मामला एक अपवाद है, जो नियम को ही सिद्ध करता है और अन्यों के लिए इस उदाहरण का अनुसरण व्यवहार्य नहीं है; और यह भी कि मुद्दे को बहुत दूर तक खींच ले जाना हर तरह व्यर्थ होगा। यह भी दावा किया जा सकता है कि, जैसा 'इण्डियन एक्सप्रेस' और 'स्टेट्समैन' में हुआ, जहां मालिक मुकाबला करने, प्रेस की आज़ादी के अर्थ लड़ने और सरकार से दो-दो हाथ करने के लिए तैयार हों, वहीं संपादक और उसके पत्रकार इस धर्मयुद्ध में हिस्सा ले सकते हैं और वांछित परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

आधुनिक दैनिक समाचार पत्र को चलाने में लगने वाली विशाल पूंजी भी एक महत्त्वपूर्ण कारण बनती है, जो उस किसी भी साहसिक कदम को निरुत्साहित करती है, जो इतनी कीमती सम्पत्ति को ही उलट-पलट कर दे।

प्रेस की स्वतन्त्रता को सुनिश्चित करने के लिए यह अनिवार्य है कि अखबार का मालिक सिर्फ अखबारवाला हो और जैसा कि अमेरिका में है वह सिर्फ समाचार पत्र प्रकाशित करने का ही धंधा करता हो। इसके अतिरिक्त, अन्य व्यापारिक अथवा औद्योगिक हित रखने से उसे कानूनन रोका जाना चाहिए। सिर्फ ऐसा कानून ही व्यक्तिगत वाणिज्यिक उन्नति के लिए सार्वजनिक हित की कीमत पर समाचार पत्र का दुरुपयोग करने के लोभ से उसे रोक सकता है। एक समाचार पत्र भी वैसी ही एक सार्वजनिक संस्था है, जैसा कि सरकार का मन्त्री होता है। यदि कानून बनाकर अन्य वित्तीय हित न रखने के लिए मन्त्री को मजबूर किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि कानून के द्वारा एक समाचार पत्र को भी स्वच्छ और लोभ से दूर न रखा जा सके।

संपादक (सामूहिक अर्थ में पूरा संपादकीय विभाग) जब तक उन्मुक्त न हो, तब तक प्रेस की स्वतन्त्रता सुरक्षित रखी नहीं जा सकती। संपादकीय विभाग की स्वायत्तता तभी सुनिश्चित हो सकती है, जब उसे समाचार पत्र के संचालन के व्यापारिक पक्ष से पृथक् कर दिया जाए। ऐसा पेरिस के 'लेमांड' एवं 'लाफिगारो' तथा स्कैंडिनेविया के अन्य समाचार-पत्रों के साथ किया गया है और काम बहुत सन्तोषजनक रूप में चला है।

'लन्दन टाइम्स' और 'गार्जियन' में एक परम्परा रही है कि उनके सम्पादक सरकार से 'नाइटहुड' का खिताब तक स्वीकार नहीं करते। पश्चिम में

प्रतिष्ठावान् समाचार पत्र न सिर्फ सन्देह से ऊपर रहने का ध्यान रखते हैं, बल्कि वैसे दीखते भी हैं। भारत के बड़े समाचार पत्र भी यदि ऐसी ही परम्पराएं अपना लें तो इससे उनकी न्यायनिष्ठा की नामवरी और पूरे के पूरे भारतीय प्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ने में भी बहुत दूर तक सहायता मिलेगी।

आपातस्थिति ने जिस एक अन्य सच्चाई को उभारा है, वह यह कि आवधिक पत्रकारिता ही थी जिसने पत्रकार की आस्थाओं से उत्पन्न वास्तविक साहस प्रदर्शित किया और सरकार से टक्कर ली और खुशी के साथ कष्ट एवं दंड सहे।

जब पूर्व सेंसर का आदेश दिया गया तो श्री रमेश थापर अपने प्रभावशाली मासिक सेमिनार' को बन्द कर देने में नहीं हिचकिचाए। यह एक युक्तिसंगत कदम था और हिचकने की इसमें कोई बात ही नहीं थी। श्री निखिल चक्रवर्ती ने 'मेनस्ट्रीम' के माध्यम से अपने मत व्यक्त करने के अपने अधिकार के लिए अन्त तक लड़ाई की और सीधे सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के भीतर तक जाकर लड़ने का प्रशंसनीय साहस दिखाया। उन्होंने कभी अपना कदम वापस नहीं लिया और जो, जो है उसे वह कहने में कभी चूक नहीं की और 'उच्च कुल के राजनीतिक चूज़े' संजय गांधी की उस समय आलोचना की जब भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी तक उस बिगड़ैल बालक को 'एक अतिरिक्त संवैधानिक सत्ता' के सिवाय अधिक कुछ कहने का साहस नहीं कर सकी। रक्षत पुरी के 'स्टर' ने कुल्हाड़े की चोट को बहादुरी से और बिना भिनभिनाए सहा। बम्बई के अनुभवी ए० डी० गोरवाला ने तब तक अपना झंडा ऊंचा रखा जब तक 'ओपीनियन' को ज़बरदस्ती बन्द ही नहीं कर दिया गया। बम्बई के ही राजमोहन गांधी के पत्र 'हिम्मत' ने काफी हिम्मत दिखाई। पूना के तीन साप्ताहिकों 'मानुष', 'साधना', 'सोहबत' ने सरकार के साथ अपनी लड़ाई जारी रखी। इसी तरह अनेकों अन्य आवधिक पत्रिकाएं रहीं, जो इन त्रासजनक उन्नीस महीनों के दौरान प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए लड़ती हुई अन्त को प्राप्त हुईं और जिनके नाम अभी भी प्रतिष्ठा सूची में अंकित किए जाने हैं।

जहां तक व्यक्तिगत सम्पादकों एवं पत्रकारों का सम्बन्ध है, वर्तमान जनता सरकार में सूचना एवं प्रसारण मन्त्री श्री एल० के० अडवानी ने अपनी मीठी शैली में उन्हें तीन श्रेणियों में बांटा है। पहली वह जिसमें बहुत ही थोड़े-से वे सम्पादक आते हैं, जिन्होंने पत्रकारिता के अपने साहस की कीमत चुकाई अथवा जो सरकार के कुटिल षड्यन्त्र के शिकार बने। इनमें थे—'इण्डियन एक्सप्रेस' के श्री कुलदीप नायर, 'मदरलैंड' के श्री के० आर० मलकानी, 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के श्री सुन्दर राजन् एवं श्री विक्रम राव तथा दिल्ली और देश के अन्य हिस्सों के थोड़े-से अन्य लोग।

श्री कुलदीप नायर ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण की अर्जी देकर अदालत में लड़ाई

लड़ी और जीते और सरकार को मूर्ख बनने पर विवश किया। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के सहायक सम्पादक श्री सुन्दर राजन् के पीछे गुप्तचर लगाए गए, उनके दफ्तर के कमरे पर छापा मारा गया, वहां की चीजों की छानबीन की गई और अन्त में उन्हें जेल भेज दिया गया। कारण यह कि उन्होंने आपातस्थिति के अधीन भारत के बारे में कटु सत्यों की रपट विदेशी प्रेस को भेजने का साहस किया था। उनका मूल अपराध यह था कि उन्होंने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के अहाते में सेंसर-शिप के विरुद्ध कर्मचारियों की एक सभा संगठित की थी। इसमें 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' समूह के दो सौ पत्रकारों ने भाग लिया था। प्रबन्धकों ने इस विरोध सभा के प्रति अपनी ठोस असहमति श्री सुन्दर राजन् को सूचित की थी।

बड़ौदा में 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के संवाददाता श्री विक्रम राव को बड़ौदा डायनामाइट मामले में फंसाया गया। उन्हें यन्त्रणा दी गई और कुछ महीनों तक कैद में रखा गया। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के प्रबन्धकों ने इस मामले में न्यायालय का फैसला आने तक अपने निजी निर्णय को स्थगित रखने के बदले श्री राव से छुटकारा पाने की कायरतापूर्ण आतुरता दिखाई। प्रबन्धकों ने उन पर, "राष्ट्र-विरोधी गतिविधियों" का आरोप तक लगाया। आपातस्थिति के खत्म होते ही और सरकार बदलते ही प्रबन्धकों ने उनका पद उन्हें वापस दे दिया है।

दूसरी श्रेणी उन बहुसंख्यक लोगों की थी, जो एक वीर पुरुष के तत्त्व से तो निर्मित नहीं थे, लेकिन जिन्होंने उदास चुप्पी धारण करके देश में घटने वाली घटनाओं से अपनी असहमति जाहिर की और जहां परिस्थितियों ने उन्हें मजबूर किया वहां अपनी पत्रकारिता के औपचारिक कर्त्तव्यों का पालन करते जाने से अधिक उन्होंने कुछ नहीं किया। तीसरी श्रेणी उनकी थी, जिनका वर्णन श्री अडवानी ने यह कहकर किया है कि "उनसे जब झुकने की आशा की गई, तो उन्होंने रेंगना शुरू कर दिया।" इस तीसरी श्रेणी की यह बहुसंख्या ही थी जो न सिर्फ अत्याचारी के सामने रेंगी और गिड़गिड़ाई बल्कि जो निर्लज्जता के साथ सरकारी बैंड-बाजे में शामिल हो गई और जिसने संजय की प्रशंसा में एवं उसके स्वागत में समूह-गीत गाए। इन्होंने अपने इस रुख में कि ये अपने देवता के सामने घुटने भी टेकते रहे और साथ ही संविधान एवं लोकतान्त्रिक मापदण्डों के प्रति अपने समर्पण की कसमें भी खाते रहे, कोई अन्तर्विरोध नहीं देखा।

निस्सन्देह इनमें किसी ने भी कभी यह सपना नहीं देखा था कि श्रीमती गांधी जल्द ही प्रधानमंत्री पद से हटने वाली हैं। इन्हें इसमें कोई सन्देह नहीं था कि उनकी सरकार युगों तक चलेगी। कांग्रेस ने देश पर 30 वर्षों तक शासन किया और वह हमेशा ही करती रहेगी।

भारतीय प्रेस के भावी स्वास्थ्य की दृष्टि से यह मामला छानबीन के योग्य

है। हो सकता है पत्रकार लोग स्वयं ही इस प्रश्न पर खोजबीन के लिए एक आयोग बैठायें।

महानगरों के समृद्ध समाचारपत्रों के सम्पन्न सम्पादक-मंडल को व्यावसायिक वेतनभोग वृत्ति का यह शाप होता है कि वे देश की राजनीतिक समस्याओं में सिर्फ सम्पादकीय (दूसरे शब्दों में अकादमीय) रुचि लेने के ही अभ्यस्त होते हैं। अपनी व्यावसायिक कुशलता एवं नैतिक लोकाचार, इन दोनों ही दृष्टियों से वे देश के अन्य पत्रकारों के लिए आदर्श बन जाते हैं। महानगरीय समाचारपत्र ही देश के शेष पत्रों के लिए गति-निर्धारक बनते हैं। आरम्भ से अब तक इसी तथ्य ने भारतीय पत्रकारिता को विपाक्त बनाया है।

सम्भवत: ऐसा हुआ है कि यह व्यावसायिक वेतनभोग वृत्ति स्वतन्त्रता मिलने के एकदम बाद ही भारतीय पत्रकारिता में घुस गई और इसने इस व्यवसाय के उच्चतर मूल्यों का क्षय किया। कारण कि सम्पन्नता उन्हें सुरक्षा से चिपके रहने को बाध्य करती है, जो बदले में उन्हें मुलायम बनाती है और उस आदर्शवाद को बढ़ावा देती प्रतीत नहीं होती जिसकी मांग है, बलिदान।

हो सकता है यह, व्यवसाय में आने वालों को दी गई पत्रकारिता की शिक्षा का अथवा उसके अभाव का दोष हो। शायद यह स्थिति पत्रकारिता-व्यवसाय के लिए गम्भीर संस्थानिष्ठ प्रशिक्षण एवं शिक्षा की अनिवार्यता के पक्ष-पोषक तर्क को ही बल देती है। इस शिक्षा में नैतिक मूल्यों एवं समाज के प्रति पत्रकार के कर्त्तव्य पर उचित ज़ोर उसी तरह दिया जाना चाहिए जैसे कि डाक्टर के प्रशिक्षण में चिकित्सा की नैतिकता शामिल होती है। पत्रकार को भी हिप्पोक्रेट की प्रसिद्ध शपथ के आधार पर निर्मित एक शपथ अवश्य लेनी चाहिए।

सम्भवत: इस देश के लिए ज़रूरी है कि पत्रकारिता को एवं सामान्यत: सभी सार्वजनिक संचार माध्यमों को विषय बनाकर उच्चतर शिक्षा का एक संस्थान स्थापित किया जाए जो एक आधुनिक समाज एवं लोकतान्त्रिक राज्य में पत्रकार की भूमिका की एक बौद्धिक एवं आध्यात्मिक प्रतीति प्रत्याशियों को कराए। हमारे यहां विभिन्न स्तरों की योग्यता दिलाने वाले अनेकों पत्रकारिता विभाग एवं विद्यालय हैं। लेकिन इस व्यवसाय की उच्चतर शिक्षा के लिए एक ऐसे प्रतिष्ठित पीठ की बड़ी भारी आवश्यकता है जो भारतीय पत्रकारिता के लिए ठीक परम्पराएं निर्मित कर सके और व्यक्तिगत एवं व्यावसायिक ईमानदारी पर ज़ोर दे सके।

न्यायपालिका उच्च न्यायालय स्तर पर शुक्ल और उनके पिट्ठुओं द्वारा त्रस्त प्रेस की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक सामने आई, लेकिन अफसोस यह है कि जब उच्च न्यायालय ने प्रेस को संरक्षण दिया तब भी प्रेस उस संरक्षण का लाभ उठाने का साहस नहीं कर सका। भय की मानसिकता इतनी गहरी घुस गई थी कि उसने

पत्रों के संचालकों के विवेक एवं निर्णय-क्षमता को जड़ बना दिया था।

साथ ही यह भी माना जाना चाहिए कि राजनीतिक वादी न्याय के लिए उच्चतम न्यायालय में आने में हिचकते थे। इसका कारण था वर्षों से चली आ रही वचनबद्ध न्यायाधीशों की चर्चा और जिन्हें आमतौर से सैद्धान्तिक कारण कहा गया है उनसे प्रेरित होकर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों में वरिष्ठ को छोड़ कर कनिष्ठ का पदोन्नत किया जाना।

सरकार ने इन तथ्यों को झूठ नहीं बताया था। उसका तर्क था कि मीसा में किए गए संशोधनों ने नज़रबन्दियों का अदालत में जाने का अधिकार क्योंकि खत्म कर दिया है, इसलिए आवेदन को अस्वीकृत कर दिया जाना चाहिए।

दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति शेप रंगराजन् का मत था कि जीवन एवं स्वतन्त्रता के अधिकार भारतीय संविधान के साथ अस्तित्व में नहीं आए थे। वे मूलभूत नैसर्गिक अधिकार हैं, जिन्हें संविधान ने सिर्फ संरक्षण प्रदान किया है और इन अधिकारों का स्थगन उन्हें पूरी तरह समाप्त नहीं कर देता।

सुनवाई समाप्त होने के दो दिन बाद श्री नायर को छोड़ दिया गया। अदालत को उनके छोड़ दिए जाने की सूचना देते हुए सरकारी वकील ने सुझाव दिया कि अब आवेदन पर किसी फैसले की ज़रूरत नहीं है। फिर भी न्यायमूर्ति रंगराजन् ने इस आधार पर फैसला दिया ही कि इसका दूसरे मामलों पर महत्त्वपूर्ण असर पड़ने वाला है।

उनके फैसले में कहा गया : बन्दी प्रत्यक्षीकरण के अधिकार का स्थगन नहीं किया गया है। बस, कानून द्वारा स्वतन्त्रता को नियमित करने की कोशिश की गई है। किसी व्यक्ति की निजी स्वतन्त्रता को खत्म करने के चरम अधिकार कार्यकारिणी के पास नहीं हैं। निस्संदिग्ध रूप में स्वतन्त्रता एक सामान्य कानूनी अधिकार है। कानून का शासन कार्यकारी सत्ता के आरज़ी इस्तेमाल की अनुमति नहीं देता। नज़रबन्द करने वाले अधिकारी को न सिर्फ इस बात से सन्तुष्ट होना चाहिए कि नज़रबन्दी आवश्यक थी, बल्कि उसके आधारभूत कारणों को सिद्ध करने की सामर्थ्य भी उसमें होनी चाहिए।

श्री नायर के आवेदन में दिए गए तथ्यों को चुनौती नहीं दी गई थी और यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं था कि वे सार्वजनिक अनुशासन को भंग करने जा रहे थे।

वस्तुत: इस निर्णय ने यह स्थापित कर दिया कि आपातस्थिति के दौरान भी नज़रबन्दी के मामलों का पुनर्निरीक्षण करने का अधिकार अदालतों के पास है और नज़रबन्दी की सही आवश्यकता के बारे में अदालतों को सन्तुष्ट करने में अधिकारियों को सक्षम होना चाहिए। इस प्रकार ऐसा लगा कि मीसा में किए गए संशोधन रद्द कर दिए गए हैं।

इस फैसले के शीघ्र बाद ही न्यायमूर्ति रंगराजन् की बदली सुदूर आसाम में गौहाटी में कर दी गई।

'साधना' के मामले में उच्च न्यायालय के श्री वी० डी० तुल्ज़ापूरकर और श्री एन० सी० गाडगिल ने पूना के साधना प्रेस की ज़ब्ती के सरकारी आदेश को रद्द कर दिया और कुछ प्रासंगिक टिप्पणियां कीं, जो यहां संक्षेप में दी जाने योग्य हैं और जिनपर हमारे देश की कार्यकारी सत्ता को अच्छी तरह चिन्तन करना चाहिए और उन्हें अपने भीतर पचाना चाहिए।

फैसले में साधना प्रेस के बन्द कर दिए जाने को, सम्बन्धित सत्ता अथवा अधिकारी को दिए गए अधिकार के घोर दुरुपयोग का ज्वलन्त उदाहरण माना गया।

'साधना' पूना की एक अत्यन्त प्रतिष्ठित साप्ताहिक पत्रिका है। इसे अहिंसा, स्वतन्त्रता व्यक्तिगत उन्मुक्तता एवं लोकतन्त्र के देवदूत समाजवादी ऋषि साने गुरुजी ने आरम्भ किया था। यह पत्रिका अपने सम्पादकीय लेखों की गम्भीरता एवं साहसिकता के लिए जानी-मानी है। सरकार ने 'साधना' के 11 अंकों को ज़ब्त घोषित कर दिया था और अन्ततः साधना मुद्रणालय को ही बन्द कर दिया था। इस स्तर पर साधना ट्रस्ट ज़ब्ती के सरकारी आदेशों के विरुद्ध आवेदन लेकर उच्च न्यायालय में पहुंचा।

निर्णय में घोषणा की गई कि ज़मानत मांगने के और उसकी ज़ब्ती के आदेश अवांछित, अन्याय्य, गैर कानूनी और विधि की दृष्टि से गलत हैं।

फैसले में कहा गया, "एक नागरिक के रूप में लेखक को अधिकार है कि वह आपातस्थिति के दौरान सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों एवं लागू किए गए उपायों की आलोचना करे और यह कहे कि ये फासिस्ट प्रवृत्तियों के सूचक हैं। यह अधिकार तब तक उसे है, जब तक आलोचना अनुमति सीमा को पार नहीं करती और नियम छत्तीस (6) की उपधारा (ई) अथवा (एफ) के अन्तर्गत वह हानिकर नहीं मानी जाती। तब तक उसे उत्तेजक अथवा आपत्तिजनक नहीं माना जा सकता। पूरे (रद्द) लेख को अच्छी तरह पढ़कर हम इस स्पष्ट मत पर पहुंचे हैं कि यद्यपि लेख अलंकृत शैली में की गई आलोचना से भरपूर है, जो कुछ सीमा तक उन नेताओं के प्रति थोड़े असन्तोष को उत्तेजित कर सकती है, जिन्होंने उन उपायों को लागू किया है, फिर भी कानून और व्यवस्था को भंग करने अथवा गड़बड़ी फैलाने अथवा नियम 36 (6) (ई) के अन्तर्गत आ सकने योग्य हिंसा को बढ़ावा देने का कोई इरादा अथवा प्रवृत्ति इस आलोचना में निहित नहीं है।"

फैसले में टिप्पणी की गई : "कुछ भी हो, यह देखकर हम उद्विग्न हैं कि इन लेखों की परीक्षा करने वाली सत्ता अथवा सम्बन्धित अधिकारी ने हर प्रकार की असहमति एवं आलोचना में सरकार के लिए तथा कानून एवं व्यवस्था के लिए

खतरा ही देखा है। इसे पूरी तरह दोष-पूर्ण दृष्टिकोण ही माना जाएगा।"

फैसले में आगे कहा गया : "इस सत्ता अथवा सम्बन्धित अधिकारी को श्री जयप्रकाश नारायण का नाम तक एक अभिशाप प्रतीत होता है। क्योंकि उनके बारे में जो भी कहा गया अथवा किया गया है, वह कितना भी हानिरहित क्यों न रहा हो, इसे अत्यन्त घातक एवं अहितकर ही बताया गया है।

प्रसिद्ध पत्रकार वाई० डी० लोकूरकर की हठ उस समय उचित रूप में पुरस्कृत हुई, जब बम्बई उच्च न्यायालय ने उनके दो लेखों, "पूर्व सेंसरशिप—प्रकृति एवं सीमा" तथा "आपातस्थिति एवं अदालतें," के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाने की सेंसर की कार्यवाही को रद्द कर दिया। न्यायमूर्ति आर० पी० भट्ट ने फैसला देते हुए घोषणा की कि सेंसर ने क़ानून को गलत समझा है और उसने अप्रासंगिक मुद्दों को विचार में ले लिया है। इस पर सेंसर ने अपनी समाचार एजेंसियों के माध्यम से राज्य के सभी समाचारपत्रों के सम्पादकों को निर्देश भेजे कि श्री वाई० डी० लोकूरकर की याचिका पर बम्बई उच्च न्यायालय का फैसला पूर्व-सेंसर किया जाएगा।

लोकूरकर ने बम्बई उच्च न्यायालय में एक और याचिका दाखिल की और फैसले के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाने की सेंसर की कार्यवाही को चुनौती दी। उच्च न्यायालय ने याचिका को स्वीकार किया और लोकूरकर द्वारा दाखिल नई याचिका के विचाराधीन होने के बारे में किसी समाचार अथवा रपट के प्रकाशन को रोकने के किसी भी कदम अथवा कार्यवाही को लागू करने से बम्बई के सेंसर को रोकते हुए अंतरिम राहत प्रदान की।

अब नई दिल्ली के मुख्य सेंसर ने सभी समाचार एजेंसियों के लिए निर्देश जारी किए कि लोकूरकर द्वारा नई याचिका के बम्बई उच्च न्यायालय में स्वीकृत हो जाने के बारे में कोई खबर न छापी जाए। श्री लोकूरकर ने अदालत से एक और प्रार्थना की कि मुख्य सेंसर को उनकी याचिका में एक पक्ष बनाया जाए और उन्होंने एकतरफा आदेशात्मक निषेधाज्ञा प्राप्त कर ली, जिसमें बम्बई के सेंसर और नई दिल्ली के मुख्य सेंसर, दोनों को यह निर्देश था कि लोकूरकर की नई याचिका से सम्बन्धित किसी खबर या रपट के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाते हुए समाचार-एजेन्सियों अथवा समाचारपत्रों को जारी की गई किन्हीं भी आज्ञाओं को वापस लिया जाए और प्रत्यादेश दिया जाए। अन्त में सेंसर अधिकारियों के वकील ने खुली अदालत में वक्तव्य दिया कि उन आदेशों को वापस ले लिया गया है।

सेंसर ने लोकूरकर के मूल मामले में न्यायमूर्ति भट्ट के फैसले के विरुद्ध अपील दाखिल की। इस अपील की सुनवाई दिसम्बर 1975 में लगभग एक सप्ताह तक होती रही। अन्ततः सेंसर ने अपील को खर्चे सहित रद्द हो जाने दिया।

शुक्ल के माफिया का दिमाग उस समय घूम ही गया जब कलकत्ता में राज्य

की बंगाली पत्रिका 'वसुमति' को डी० ए० वी० पी० द्वारा सरकारी विज्ञापन देने से इन्कार कर दिया गया। डी० ए० वी० पी० केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय का तीसरे दर्जे का वह हथियार है, जो अनुकूल बनने में विफल समाचारपत्रों पर चलाया जाता है। इसके बाद संजय की चौकड़ी ने राज्य के मुख्यमंत्री श्री सिद्धार्थशंकर राय के विरुद्ध प्रचार करने के लिए दो प्रभावशाली स्थानीय पत्रों की सेवाएं भी प्राप्त कीं।

जहां तक विद्याचरण शुक्ल का प्रश्न है, कहा जाता है, चुनाव-प्रचार के दिनों तक में उन्होंने प्रेस के आचरण पर अपनी नाराजगी व्यक्त की थी। दिल्ली में कार्यरत 35 संवाददाताओं को एक चाय-पार्टी में उन्होंने कहा बताते हैं, 'कुछ पत्र तो ऐसा व्यवहार कर रहे हैं जैसे कि जनता पार्टी सत्ता में आ ही गई है।" जब चुनावों की घोषणा के बाद सेंसर को ढीला किया गया तो सूचना एवं प्रसारण मंत्री और उनके पिट्ठू संपादकों एवं पत्रकारों को यह चेतावनी देने में न हिचकिचाए कि वे पैरोल पर हैं और उनके आचरण की देखभाल की जा रही है और वे जानते हैं कि गलत आचरण करने वालों के साथ क्या व्यवहार किया जाए।

पत्रकारों की कितनी भी अन्य कमज़ोरियां तथा कमियां क्यों न हों, लेकिन राजनीतिज्ञों की अकड़ और डींग को गले से नीचे उतारना उनके लिए कठिन होता है। मनमाने अपमान को भी वे क्षमा नहीं कर पाते। राजनीतिज्ञ (जो प्रचार के लिए प्रेस पर इतना अधिक निर्भर करते हैं) उनसे उस ढंग से बात करें तो वे सह नहीं पाते।

बदला लेने में असमर्थ होने पर पत्रकार भले ही कुछ समय के लिए दबे पड़े रहें, पर उनकी स्मृति बहुत तेज़ होती है और जब मुकाबला किसी राजनीतिज्ञ से हो तो संवाददाताओं का कथन ही अंतिम होता है। राष्ट्रपति निक्सन ने प्रेस से अपमानपूर्वक व्यवहार किया और यह पाठ सीखने के लिए उन्हें भारी कीमत चुकानी पड़ी। विद्याचरण शुक्ल इसे अब सीख रहे हैं। अच्छा हो, दूसरे राजनीतिज्ञ पहले ही इसे अच्छी तरह याद कर लें।

8
कुछ मामले : समाचार पत्र

नीचे हम कुछ मामलों का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं, जो श्री शुक्ल के दादागीरी के तरीकों को असल रूप में स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं।

श्री शुक्ल के सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय ने सबसे पहले श्री रामनाथ गोयनका की 'इण्डियन एक्सप्रेस' शृंखला को लिया। इसके विशेष कारण थे, जिनका इन समाचारपत्रों द्वारा किए गए किन्हीं विशेष पापों से कोई सम्बन्ध नहीं था। वस्तुतः दूसरे समाचारपत्रों की तरह ही इण्डियन एक्सप्रेस ने भी अपने को सेंसर के हवाले कर दिया था और उन परिस्थितियों के बीच यथासम्भव ठीक तरह चल रहा था।

श्री गोयनका को दण्ड देने का निश्चय पक्का करने के बाद सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय तथा प्रधानमन्त्री के सचिवालय ने इण्डियन एक्सप्रेस पर प्राथमिक दोषारोप निम्न दो मुद्दों पर किए :

1. आपातस्थिति की उपलब्धियों का प्रचार न करना, और
2. सम्पादकीय नीति में भटकाव।

यह आरोप लगाया कि उसने सरकार की नरम आलोचना करते हुए कुछ लेख छापे हैं।

सत्ता की नाराज़ी श्री गोयनका को जुलाई 1975 में सूचित की गयी और उन्हें बताया गया कि यदि वे अपनी इस नकारात्मक नीति पर अड़े रहे तो उनके परिवार के तीनों व्यक्तियों अर्थात् श्री रामनाथ गोयनका स्वयं, उनके पुत्र भगवानदास और पुत्रवधू सरोज सीखचों के पीछे डाल दिये जाएंगे।

इस प्रकार उकसाये जाने पर भी 'एक्सप्रेस' सरकार के प्रति उदासीन ही रहा और उसने संजय गांधी को भी खास प्रचार नहीं दिया। असल में समूह के कुछ भाषाई समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में, विशेषकर दक्षिण में प्रकाशित होने वाले पत्रों में, सरकारी नीतियों की हलकी-फुलकी आलोचना भी की गई।

अगस्त में 'एक्सप्रेस' समूह के विरुद्ध कार्यवाही की धमकी को दुहराया गया। श्री गोयनका को सूचित किया गया कि यदि वे अपने तरीकों को बदलेंगे नहीं तो उनके विरुद्ध पहले चलाए गए, आयकर के मामलों को फिर से शुरू कर दिया जाएगा।

अक्टूबर में प्रसिद्ध उद्योगपति एवं हिन्दुस्तान टाइम्स के मालिक श्री०के०के०

बिरला, जो अब तक नम्बर 1, सफदरजंग मार्ग स्थित चौकड़ी के बहुत निकट पहुंच गए थे, एक मध्यस्थ की भूमिका में सामने आए। उन्होंने श्री गोयनका को सूचित किया कि सरकार 'एक्सप्रेस' के प्रबन्धक मण्डल में निर्देशकों के रूप में अपने प्रतिनिधि नियुक्त करना चाहती है, और सरकारी प्रतिनिधि बोर्ड में बहुमत में होने चाहिए, अर्थात् श्री गोयनका के पांच निदेशकों के मुकाबले (अध्यक्ष समेत) उनके छः। उन्हें यह भी कहा गया कि प्रधान संपादक श्री एस० मुलगांवकर को बर्खास्त कर दिया जाए। बाद में यह सुझाव दिया गया कि बिड़ला नयें मंडल के अध्यक्ष बनाए जायें।

31 अक्टूबर को बिड़ला के साथ गोयनका शुक्ल से मिलने आए और पहली बार सीधे मन्त्री महोदय ने उन्हें बताया कि सरकार 'एक्सप्रेस' के निदेशक मंडल में अपने प्रतिनिधि बहु संख्या में चाहती है।

श्री गोयनका ने समझ लिया कि वे श्री शुक्ल की मांग से सीधे इंकार नहीं कर सकते और उन्होंने देर लगाने के तरीके का सहारा लिया। उन्होंने कहा कि वे नामों की एक सूची तैयार करेंगे और सरकार उस सूची में से पांच या छः निदेशक चुन सकती है अथवा उसके स्थान पर सरकार नामों की एक सूची तैयार कर ले और वे उनमें से पांच चुन लेंगे।

इनमें कोई भी प्रस्ताव सरकार ने पसन्द नहीं किया। एक और महीना बीत गया। मामला अटका रहा। श्री शुक्ल अधीर हो उठे और श्री गोयनका पर दबाव बढ़ा दिया गया। गोयनका ने अब अच्छी तरह समझ लिया कि झुकने का समय आ गया है। इसके अतिरिक्त उनके पुत्र श्री भगवानदास घबड़ा रहे थे और सरकार की मांगों को मान लेने के लिए अपने पिता पर दबाव डाल रहे थे।

श्री गोयनका ने इंडियन एक्सप्रेस के लिए एक नीति पत्रक तैयार किया, जिसमें 'एक्सप्रेस' समूह के लिए सम्पादकीय नीति के प्रमुख निर्देश निर्धारित किए गए थे। यह एक काफी अनिबद्ध दस्तावेज था, लेकिन इसमें किसी भी निरंकुश शासन के प्रति समर्थन न देने का संकेत ज़रूर था। 'एक्सप्रेस' समूह की सम्पादकीय नीति को निर्धारित करके गोयनका ने बोर्ड में पांच सरकारी प्रतिनिधियों के साथ साथ निर्देशक मंडल के अध्यक्ष के रूप में श्री के० के० बिड़ला को स्वीकार करने की अपनी प्रस्तुता व्यक्त कर दी। अध्यक्ष के कर्त्तव्य निश्चित कर दिए गए थे। उसे नीति पत्रक में दी गई नीतियों के लागू किए जाने का निरीक्षण करना था। इस प्रयोजन के लिए वे सम्पादकों से सीधा सम्पर्क कर सकते थे।

दिसम्बर 1975 के अन्त में सरकार ने अपने पांच निर्देशक अर्थात् सर्व श्री पी० आर० रामकिशन, विनय के० शाह, ए० के० एन्टोनी, कमलनाथ, तथा जी० डी० कोठारी को नियुक्त कर दिया। कमलनाथ कलकत्ता का था और संजय गांधी का पिट्ठू और प्रतिनिधि था और बोर्ड की बैठकों में जो कुछ होता था उसकी
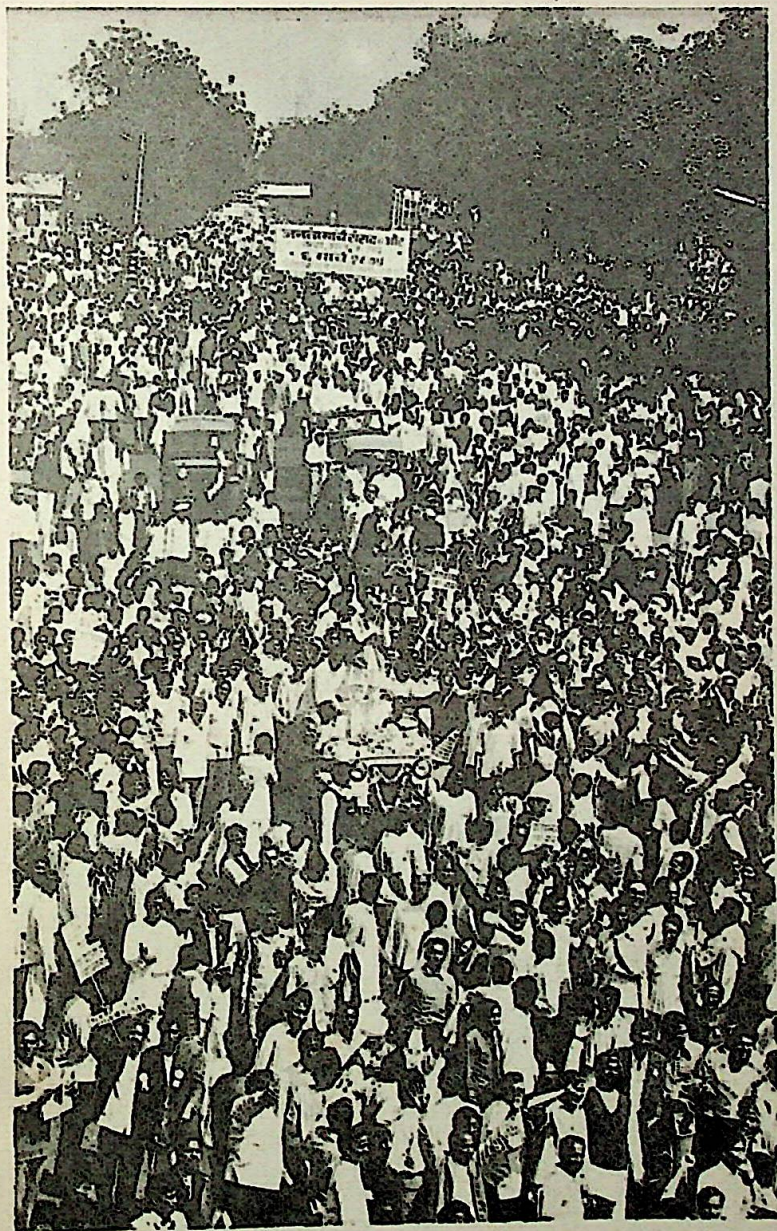
5 मार्च, 1975 को लोक संघर्ष समिति द्वारा आयोजित जनता मोर्चा ने राजधानी दिल्ली में विशाल जुलूस निकाला ।

7 नवम्बर 1975 को श्रीमती गांधी अपने निवास के सामने आयोजित एक रैली में भाषण दे रही हैं।
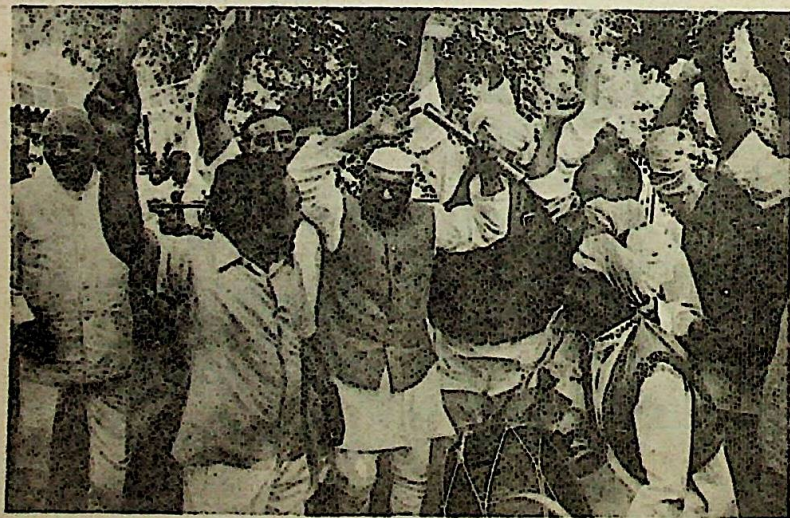
7 नवम्बर 1975 को जब श्रीमती गांधी की अपील पर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय घोषित किया गया, दिल्ली प्रशासन के तत्कालीन चीफ एक्जीक्यूटिव कौंसिलर श्री राधारमण श्रीमती गांधी के निवास पर आयोजित इन्दिरा समर्थक रैली में नाच रहे हैं।

भूमिगत कार्यकर्ता के० आर० मलकानी (सम्पादक, मदरलैण्ड), ओ० पी० कोहली (दिल्ली विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के अध्यक्ष) तथा रामनाथ विज (हंसराज कालेज में व्याख्याता)

तिहाड़ जेल में बंदी योगासन कर रहे हैं।

छात्र नेता हेमंतकुमार विश्नोई, तिहाड़ जेल में
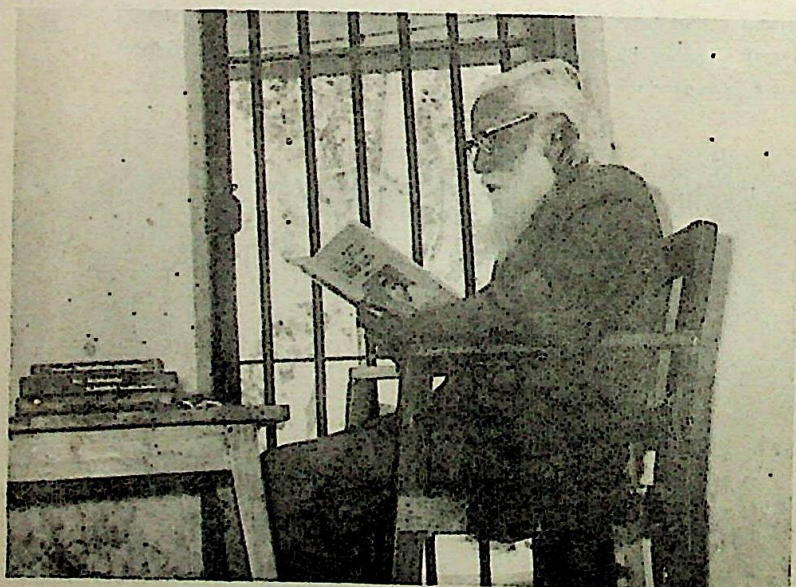
दिल्ली के भू० पू० मेयर श्री हंसराज गुप्त
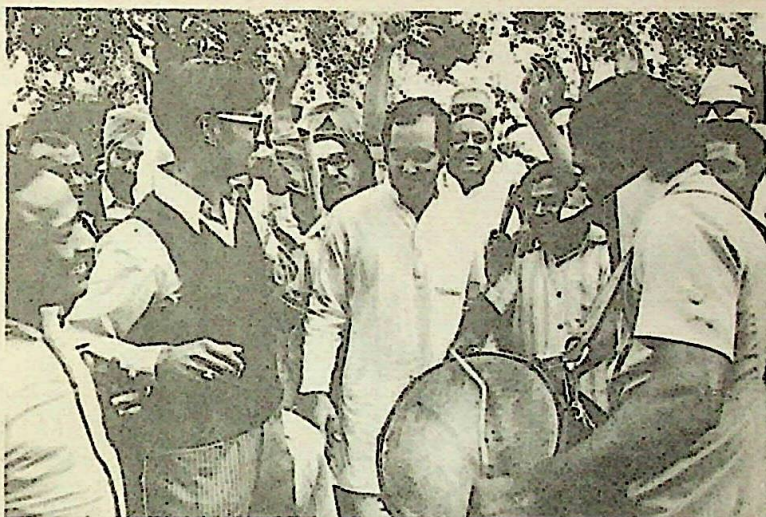
7 नवम्बर 1975 को प्रधान मंत्री निवास के सामने संजय गांधी का स्वागत। उनकी बायीं ओर उनके घनिष्ट साथी और लेफ्टिनेंट अर्जुन दास हैं।

यूथ कांग्रेस के केन्द्रीय कार्यालय 10, जनपथ पर, 17 नवम्बर 1976 को संजय गांधी प्रेस सम्मेलन में बोल रहे हैं।
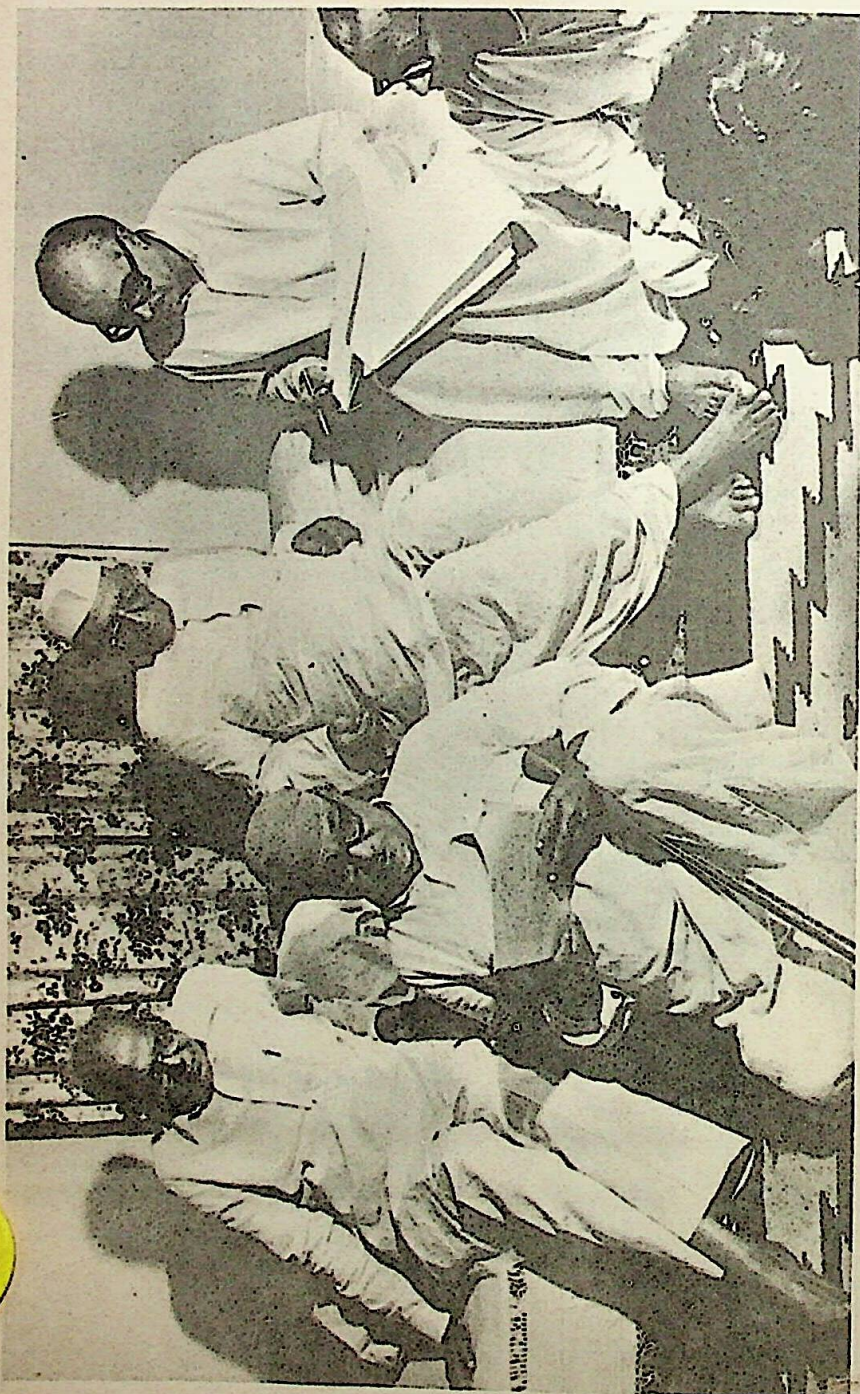
श्रीमती गांधी की याचिका पर जस्टिस कृष्ण अय्यर के निर्णय पर विचार करने के लिए 24 जून 1975 को श्री मोरारजी देसाई के डूप्ले रोड स्थित निवास पर प्रमुख विरोधी नेताओं की आवश्यक बैठक। बायें से श्री जयप्रकाश नारायण, श्री मोरारजी देसाई और श्री लालकृष्ण अडवाणी। नीचे बायीं ओर श्री राजनारायण बैठे हैं।
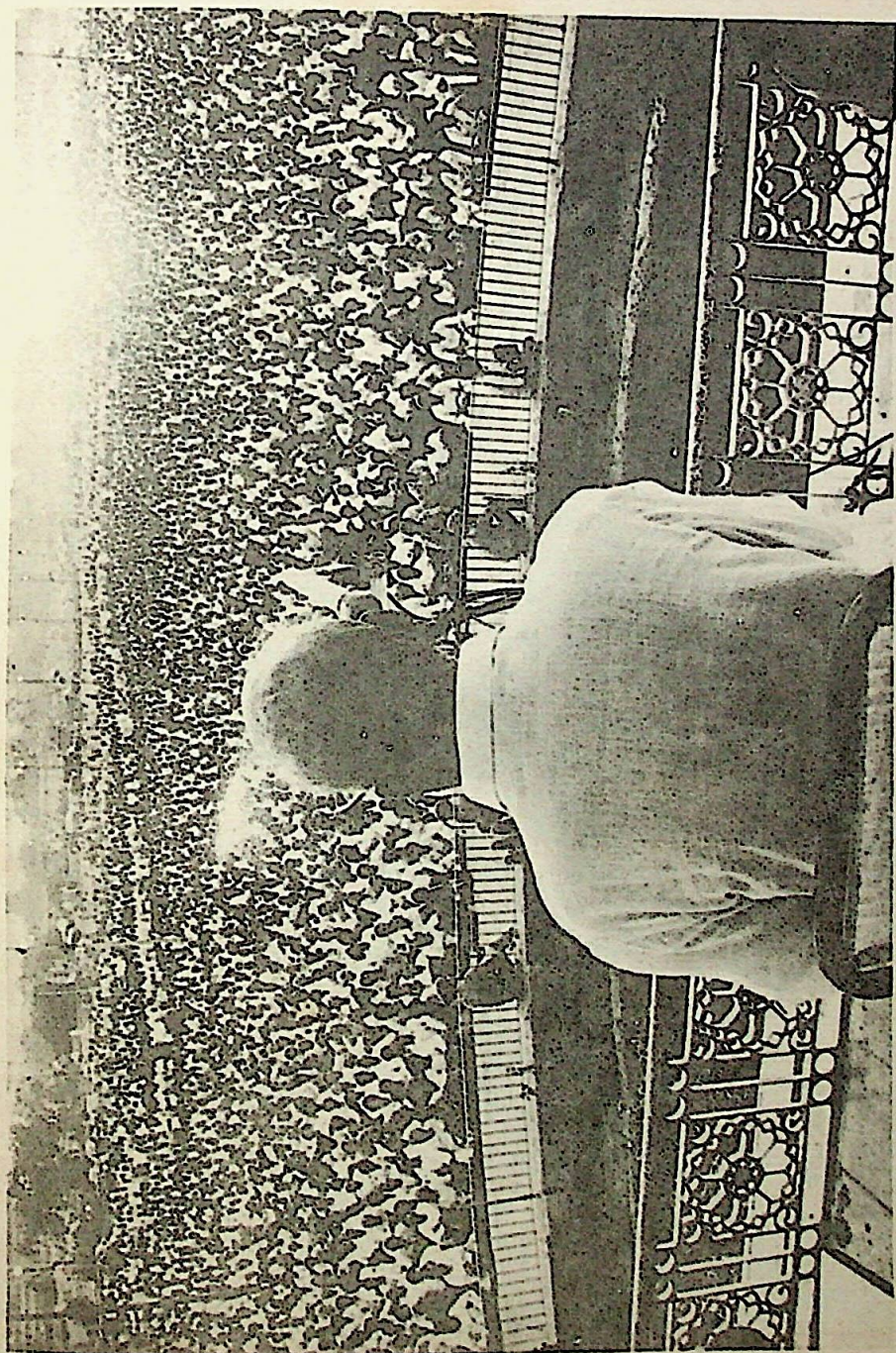
25 जून 1975 को रामलीला मैदान में आयोजित ऐतिहासिक सभा । दूसरे दिन श्री जयप्रकाश नारायण तथा अन्य विरोधी नेता गिरफ्तार कर लिए गए ।
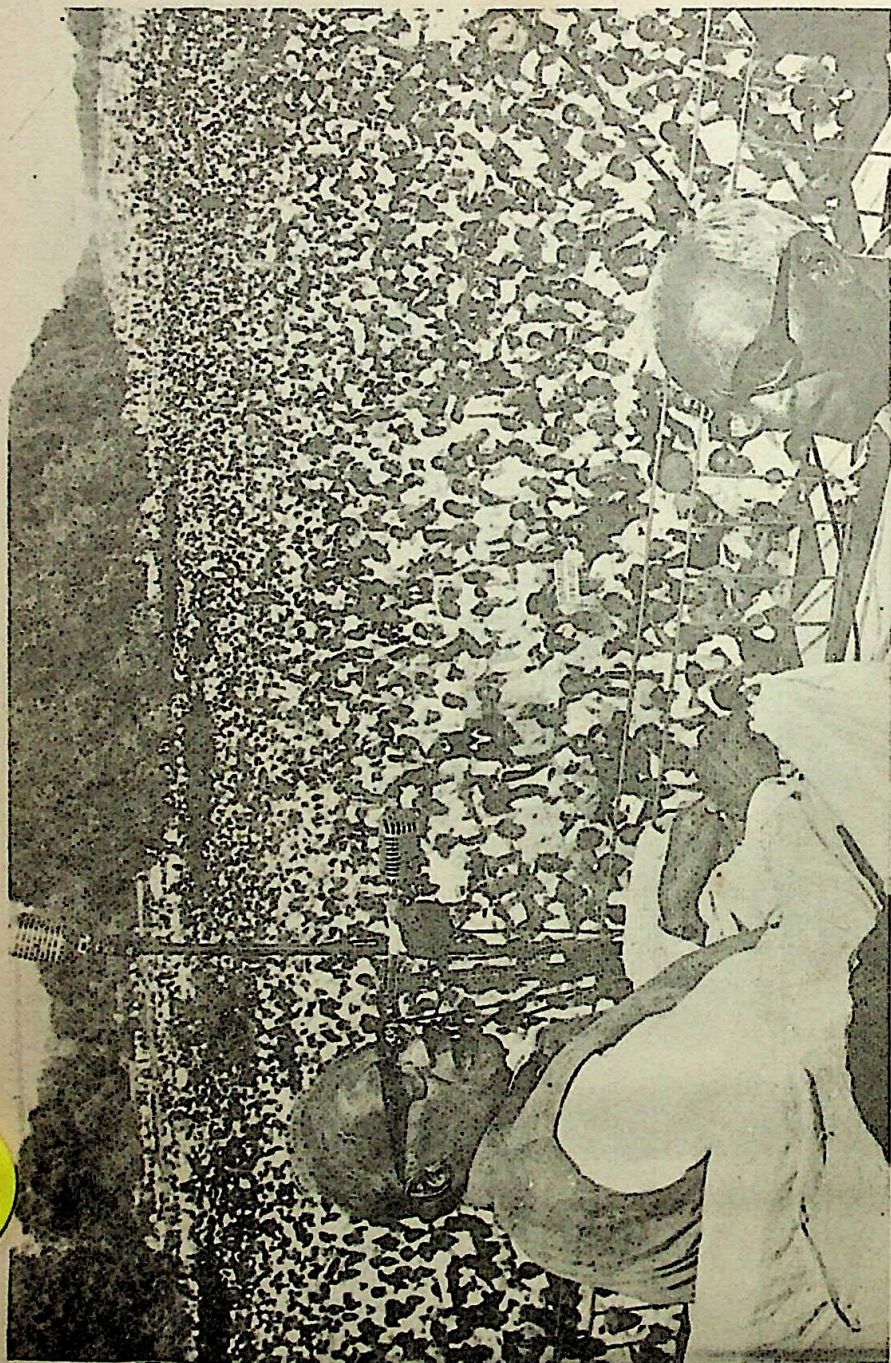
5 मार्च 1975 को आयोजित विशाल जुलूस बोट क्लब पहुंचकर सभा की शक्ल में बदल गया। श्री जयप्रकाश नारायण भाषण दे रहे हैं, उनकी दायीं ओर लोक संघर्ष समिति के मंत्री श्री नानाजी देशमुख का सिर दिखाई दे रहा है।

सूचना संजय को देने के साथ-साथ उसकी इच्छाएं भी श्री के० के० बिरला तक पहुंचाता था। जनवरी 1976 में बोर्ड की बैठक हुई और पत्रक में निर्धारित सम्पादकीय नीतियों को स्वीकार कर लिया गया। वैसे व्यवहार में 'इंडियन एक्सप्रेस' सरकार के प्रति उदासीन और उसकी कुछ नीतियों का हलका आलोचक बना रहा।

फरवरी 1976 में श्री शुक्ल ने (के० के० बिड़ला के माध्यम से) स्पष्ट मांग की कि श्री मुलगांवकर को 'इंडियन एक्सप्रेस' के सम्पादक पद से बर्खास्त कर दिया जाए। उन्होंने श्री कुलदीप नायर तथा श्री अजीत भट्टाचार्य को भी सम्पादक मंडल से हटा देने के लिए कहा।

श्री गोयनका एक बार फिर अड़ गए। उन्होंने कहा कि कानून के अनुसार छः महीने का नोटिस देकर ही श्री मुलगांवकर को हटाया जा सकता है। जहां तक नायर एवं भट्टाचार्य का सम्बन्ध है पत्रकार अधिनियम के अन्तर्गत इस अधिनियम में निर्धारित एक लम्बी कार्यवाही को पूरा किए बिना किसी पत्रकार को पद-मुक्त नहीं किया जा सकता।

मार्च में श्री रामनाथ गोयनका बीमार पड़ गए और एक महीने तक कोई काम नहीं देख सके। जब गोयनका बीमार थे, उसी बीच 9 अप्रैल को बोर्ड की बैठक हुई और उसमें श्री मुलगांवकर को सम्पादक पद से हटा देने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। बोर्ड ने मुलगांवकर के स्थान पर 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस' के सम्पादक श्री वी० के० नरसिंहम् को नियुक्त किया। बोर्ड की नज़रों में श्रीनरसिंहम् एक नम्र, हानिरहित व्यक्ति थे। संजय तक ने कमलनाथ के माध्यम से इस नियुक्ति कोपुष्ट किया। लेकिन जल्द ही उन्हें अपने चुनाव पर अफसोस करना पड़ा।

अप्रैल में श्री मुलगांवकर सेवा-निवृत्त हो गये और श्री नरसिंहम् ने काम संभाल लिया। लेकिन मन्त्री महोदय अब भी सन्तुष्ट नहीं थे। वे अजीत भट्टाचार्य को अलग कर देने पर उतारू थे। जून में शुक्ल को बहाना मिल गया। श्री अजीत भट्टाचार्य ने उच्चतम न्यायालय के हेवियस कार्पस फैसले पर एक लेख लिखा। शुक्ल ने फौरन मांग की कि भट्टाचार्य को गंगटोक में संवाददाता बनाकर भेज दिया जाए। बिरला ने इसके लिए दबाव डाला। श्री गोयनका ने इसपर आपत्ति की और यह तर्क दिया कि श्री भट्टाचार्य जैसे वरिष्ठ व्यक्ति को पत्रकार अधिनियम के अन्तर्गत अथवा प्रेस परिषद् द्वारा अखबार से जवाब तलब किए बिना, इस ढंग से पदावनत नहीं किया जा सकता।

जुलाई में मामला बहुत गर्म हो उठा। मन्त्री ने दावा किया कि गोयनका उनके निर्देश के पालन में विफल रहे हैं। उन्होंने मांग की कि गोयनका 'एक्सप्रेस' समूह के सभी समाचारपत्रों के प्रशासन के सभी अधिकार बिरला को सौंप दें।

गोयनका ने इस प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया कि इस तरह बिरला सभी समाचार पत्रों के सर्वोच्च सम्पादक बन जायेंगे और यह बात उलझनें पैदा करेगी। गोयनका ने तर्क दिया कि बोर्ड के निर्माण के समय स्वीकृत नीतियों एवं व्यवस्थाओं के प्रति उसे ईमानदार रहना चाहिए।

मन्त्री महोदय ने अब गोयनका पर फन्दा कसना शुरू किया। 24 जुलाई को प्रेस सूचना ब्यूरो ने एक वक्तव्य जारी किया, जिसमें गोयनका के विरुद्ध एक पुराने आर्थिक अपराध का ब्यौरा दिया गया था। प्रेस सूचना ब्यूरो ने इस वक्तव्य को समाचार के टेलीप्रिन्टर द्वारा न सिर्फ सभी समाचारपत्रों को भेजा, बल्कि आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर भी प्रसारित किया। यह सरकार की एक अभूतपूर्व कार्यवाही थी। जब गोयनका ने इसका जवाब जारी किया तो 'इंडियन एक्सप्रेस' के सिवाय किसी ने उसे नहीं छापा। 16 अगस्त को 'इंडियन एक्सप्रेस' पर पूर्व सेंसर लागू किया गया और वह इसके सभी आठ संस्करणों पर किया गया। जब पृष्ठ अनुमति के लिए सेंसर के पास भेजे जाते थे, तो वे अगली सुबह आठ बजे से पहले नहीं लौटाये जाते थे। फलतः संस्करण 10 बजे के बाद निकल पाता था। बाहर के संस्करणों को भी असाधारण देर हो जाती थी। यह तीसरे दर्जे का तरीका छः सप्ताहों तक चला। 'इंडियन एक्सप्रेस' की बिक्री 90000 से घटकर 30000 रह गई। जैसे कि इतना काफी नहीं था, 19 अगस्त को अपने विज्ञापन एक्सप्रेस को दिए जाने पर सरकार ने रोक लगा दी। यह रोक सार्वजनिक क्षेत्र के सभी उद्योगों के विज्ञापनों पर भी लगाई गई। सरकार ने निजी संगठनों पर भी दबाव डाला कि वे 'एक्सप्रेस' को अपना सहयोग देना बन्द कर दें। यह एक घातक चोट थी, क्योंकि किसी भी अखबार का खर्च विज्ञापनों से ही चलता है।

यह पूर्व-सेंसर बेटोक चलता रहता, यदि गोयनका ने इसे अदालत में चुनौती न दी होती। श्री गोयनका ने दिल्ली उच्च न्यायालय से प्रार्थना की कि 'इंडियन एक्सप्रेस' पर पूर्व-सेंसर का आदेश एक अनुचित उत्पीड़न है। अदालत ने शुक्ल को गवाही के लिए बुलाया। शुक्ल अदालत में आने से झिझक गए और उन्होंने पूर्व-सेंसर आदेश वापिस ले लिया।

लेकिन अखबार के वित्तीय साधनों को हानि पहुंचाई जा चुकी थी। हर संस्करण में 34 कालमों से घटकर विज्ञापन आठ से दस कालम तक रह गए थे। सरकार ने अब बैंकों को आदेश दिया कि 'एक्सप्रेस' समूह के अखबारी कागज़ के हिस्से की एवज़ में दिए जाने वाले ऋण की सीमा को घटा दिया जाए। इस प्रकार अखबार पर भारी वित्तीय दबाव पड़ा; इतना कि उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया।

अक्टूबर-नवम्बर में 'एक्सप्रेस' समूह पर अन्तिम आघात तब हुआ, जब 'एक्सप्रेस' की बिजली काट दी गई। दिल्ली विद्युत संगठन बिजली के इस अचानक

कट जाने का कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सका। लेकिन 'एक्सप्रेस' के कर्मचारियों ने देखा कि 'एक्सप्रेस' भवन को बिजली देने वाली प्रमुख लाइन का स्विच बन्द कर दिया गया था और उस पर ताला लगा दिया गया था।

इसके एकदम बाद दूसरा संकट आया। 'एक्सप्रेस' की ओर बाकी कुछ करों पर झगड़ा था और मामला पत्र-व्यवहार के माध्यम से तय किया जा रहा था। शेष राशि कुछ लाख थी। एक इतवार को एक सम्पादक ने एक अन्य समाचार-पत्र में यह नोटिस लगा देखा कि क्योंकि 'इंडियन एक्सप्रेस' शेष कर-राशि का भुगतान नहीं कर सका है, इसलिए अगले दिन 'एक्सप्रेस' भवन की नीलामी की जाएगी।

इस संपादक ने फौरन जाकर गोयनका को सूचित किया। अगले दिन जब 'एक्सप्रेस' के प्रतिनिधि दिल्ली नगर-निगम के अधिकारियों के पास पहुंचे तो उन्हें बताया गया कि उस सुबह म्यूनिसिपल कमिश्नर श्री बी० आर० टमटा के दफ्तर में नीलामी की जा चुकी है और 'एक्सप्रेस' भवन को बेचा जा चुका है।

इस बीच सशस्त्र पुलिस ने 'एक्सप्रेस' भवन में प्रवेश कर लिया था और 'एक्सप्रेस' के कर्मचारियों को निकाल बाहर करके भवन पर सील लगा दी थी। एक बार फिर श्री गोयनका ने अदालत का दरवाज़ा खटखटाया। न्यायमूर्ति श्री प्रकाश नारायण ने पद्धति को लांघकर भी मामले को जल्द निपटाया और स्थगन आदेश दे दिए। इस प्रकार दो दिन बाद 'एक्सप्रेस' में फिर काम चालू कर दिया गया।

अब सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने उन बी०के० नरसिंहम् को हटा देना चाहा जिनकी श्री मुलगांवकर की बर्खास्तगी के बाद नियुक्ति को उन्होंने स्वीकृति प्रदान की थी। कमलनाथ ने गोयनका को सूचित किया कि मंत्री महोदय का सुझाव है कि श्री नरसिंहम् के स्थान पर दिल्ली स्थित 'टाइम्स आफ इंडिया' के एक संवाददाता मोहम्मद शमीम को ले आया जाए। श्री गोयनका का साफ उत्तर था, नहीं। अगला नाम एक्सप्रेस के एक सहायक संपादक सुमन दुबे का प्रस्तावित किया गया।

अक्तूबर 1976 में श्री शुक्ल ने श्री गोयनका को श्री के० के० बिरला के साथ बुलाया। मंत्री ने एक बार फिर मांग की कि श्री गोयनका प्रशासनिक एवं संपादकीय सभी अधिकार श्री के०के० बिरला को सौंप दें। श्री गोयनका ने विरोध में कहा कि मूलतः स्वीकृत व्यवस्था तो यह नहीं थी। यहां बिरला ने शुक्ल का पक्ष लिया। गोयनका इस पर आपे से बाहर हो उठे। उन्होंने अपने खास अन्दाज़ में, अंग्रेज़ी, हिन्दी और तमिल तीनों भाषाओं में बिरला को खुलकर गालियां दीं। इस घटना के बाद बिरला और गोयनका ने अपने सम्बन्ध पूरी तरह तोड़ लिए।

अब 'एक्सप्रेस' का उत्पीड़न संसार-भर में बदनामी का विषय बन गया था

और 'न्यूयार्क टाइम्म' तथा 'टाइम' जैसी विदेशी पत्रिकाओं ने इसे खुलकर प्रचार दिया था। भारतीय दूतावासों ने नई दिल्ली को लिखा कि 'एक्सप्रेस' के मामले ने विदेशों में भारत सरकार की भारी बदनामी कर दी है।

दिसम्बर 1976 में लगभग 200 पत्रकारों ने एक पत्र पर हस्ताक्षर करके प्रधानमंत्री को भेजा। इंडियन एक्सप्रेस' को जो कष्ट और उत्पीड़न दिया जा रहा था, उसका इस पत्र में विरोध किया गया था। संयोग से मोहम्मद यूनुस नामक उस अजीब आदमी ने, जो चाहे देश में हो या विदेश में, अपने को प्रधान-मंत्री का विशेष दूत कहने की हठ करता था, हस्ताक्षर करने वाले एक पत्रकार से शान दिखाते हुए कह डाला, "अगर मेरे हाथ में ताकत होती तो मैंने तुम सबको बन्द करा दिया होता।"

'एक्सप्रेस' को दिया जाने वाला शारीरिक उत्पीड़न रोक दिया गया, लेकिन आर्थिक यातना जारी रही।

एक्सप्रेस की वित्तीय अवस्था इतनी नाजुक हो गई कि कर्मचारियों से कहा गया कि वे अपने वेतनों में स्वेच्छापूर्वक कटौती कराएं। एक कठोर बचत अभियान चलाया गया। 1977 तक समाचार-पत्र सांसों के लिए संघर्ष कर रहा था। इस गति से मार्च 1977 तक इंडियन एक्सप्रेस' खत्म हो गया होता।

जब यह समाचारपत्र इस घोर संकट में से गुज़र रहा था, तभी एक रोचक घटना घटी। नियमानुसार सरकार द्वारा नियुक्त निदेशकों को एवं अध्यक्ष को एक निश्चित अवधि के बीच हिस्सेदारों की एक आम सभा के द्वारा मान्यता दी जानी थी। नये अध्यक्ष श्री के०के० बिरला ने इस औपचारिकता की उपेक्षा कर दी थी। गोयनका इस अवधि के समाप्त होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही यह खत्म हुई श्री गोयनका ने अध्यक्ष श्री के० के० बिरला समेत सरकार द्वारा नियुक्त छहों निदेशकों को अलग कर दिया। इस प्रकार श्री गोयनका ने बिरला और शुक्ल दोनों को मात दे डाली।

'स्टेट्समैन' एक अधिक सख्त पत्र सिद्ध हुआ। उसके अब तक के खाते पर खरेपन, स्वतन्त्रता और ईमानदारी की छाप थी और यही बात श्रीमती गांधी की सरकार को अखरती प्रतीत होती थी। शुक्ल को 'स्टेट्समैन' के कवच में कोई दरार नहीं मिल रही थी और इसलिए समाचारपत्र पर कोई ठोस आक्रमण करना कठिन पड़ रहा था। लेकिन उसे दबाया तो जाना ही था।

वस्तुत: 'स्टेट्समैन' को दबाने का प्रयास आपातस्थिति से पहले से ही शुरू हो गया था। 1971 के आम चुनावों के दौरान श्रीमती गांधी की कांग्रेस के प्रति उसके आलोचनात्मक रुख को प्रधानमंत्री कभी भुला नहीं सकी थीं। फिर यह एकमात्र अखबार था जिसे डरा-धमका कर शासकदल की इच्छाओं का अन्धे रूप में पालन करने पर विवश नहीं किया जा सकता था। 1974 में समाचारपत्र के

साहसी मैनेजिंग डायरेक्टर श्री सी० आर० ईरानी को निकाल बाहर करने की कोशिश सरकार ने की थी। यह प्रयास विफल रहा था।

अब आपातस्थिति की छाया में सरकार ने आशा की थी कि 'स्टेट्समैन' को वश में लाया जा सकेगा।

पहली मुठभेड़ आपातस्थिति की घोषणा के एक महीने के भीतर ही हो गई। जुलाई 1975 में दिल्ली 'स्टेट्समैन' के तत्कालीन स्थानीय सम्पादक श्री सुरिन्दर निहालसिंह से भारत सरकार के प्रमुख सूचना अधिकारी ने कहा कि कुछ विशेष फोटो-चित्रों को एक विशेष ढंग से छापा जाए और कांग्रेस दल की घोषणाओं को अधिक महत्त्व दिया जाए। उस अधिकारी ने आगे कहा कि भविष्य में वह समाचार-सम्पादक तथा अखबार के अन्य लोगों से सम्पर्क रखेगा, जिससे ऐसे सुझाव दिए जा सकें।

सम्पादक ने किए गए अनुरोध रद्द कर दिए। 6 अगस्त को 'स्टेट्समैन' के दिल्ली संस्करण पर पूर्व-सेंसर लागू कर दिया गया, जिससे कि सूचना मंत्री के शब्दों में "दिल्ली संस्करण को सबक सिखाया जा सके।" स्पष्ट संकेतों को, कि दिल्ली में "व्यक्तिगत स्तर पर मामले पर बात कर लीं जाए" स्टेट्समैन ने ग्रहण नहीं किया। 26 अगस्त को पूर्व-सेंसर उठा लिया गया।

अगस्त 1975 में सरकार ने स्टेट्समैन को (तथा 'एक्सप्रेस' समूह सहित अन्य अमित्र समाचारपत्रों को) उनकी अपनी दृष्टि में घातक चोट पहुंचाई। सरकार ने एक आदेश जारी करके केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक संस्थानों के सभी विज्ञापन स्टेट्समैन को दिए जाने बन्द कर दिए। इसका फल हुआ कि समाचारपत्र की आय 9 लाख से गिरकर 36 हज़ार रह गई। 'स्टेट्समैन' ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में इस आदेश को चुनौती दी। सुनवाई चल ही रही थी कि चुनावों की घोषणा हो गई और आपातस्थिति उठा ली गई और सरकार ने स्टेट्समैन को विज्ञापन न देने के अपने आदेश वापस ले लिए।

सितम्बर 1975 में 'स्टेट्समैन' के तत्कालीन सम्पादक श्री एन० जे० नानपोरिया का नौकरी-सम्बन्धी करार खत्म हो गया और श्री सुरिन्दर निहालसिंह को कलकत्ता में तथा श्री एस० सहाय को दिल्ली में सम्पादक नियुक्त किया गया। शुक्ल ने श्री ईरानी पर दबाव डालने की कोशिश की कि श्री नानपोरिया को सम्पादक के रूप में रोक लिया जाए। उन्होंने आरोप लगाया कि "आपातस्थिति के दौरान सरकार को पूरा समर्थन देने की कीमत नानपोरिया से वसूल की जा रही है।" श्री शुक्ल ने यह भी कहा कि श्री निहालसिंह का व्यवहार उचित नहीं रहा है और कलकत्ता में सम्पादक के रूप में उनकी नियुक्ति सरकार को स्वीकृत नहीं है। 'स्टेट्समैन' के आंतरिक मामलों में सरकार के हस्तक्षेप को श्री ईरानी ने सहन नहीं किया और श्री शुक्ल की मांग को ठुकरा दिया।

11 नवम्बर को 'स्टेट्समैन' के दिल्ली संस्करण पर फिर से पूर्व-सेंसर लागू कर दिया गया। पत्र को सूचित किया गया कि श्रीमती गांधी के चुनाव सम्बन्धी मामले में उच्चतम न्यायालय के फैसले पर प्रकाशित सम्पादकीय से सरकार खुश नहीं हुई है। सम्पादकीय में कहा गया था कि अदालत के सामने अपील के विचाराधीन रहने की अवधि में कानून में जो परिवर्तन किए गए, वे ही इस फैसले के लिए उत्तरदायी हैं।

शिकायत का एक दूसरा आधार कांग्रेस दल के भीतरी मामलों पर 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित एक ब्यौरा था, जो स्वयं कांग्रेस अध्यक्ष के निकट के एकदम सही एक सूत्र से प्राप्त किया गया था। यह इशारा किया गया कि यदि अखबार क्षमा मांग ले तो पूर्व-सेंसर को हटा दिया जाएगा। 'स्टेट्समैन' ने माफी नहीं मांगी। उलटे उसने लिखत में अपने पक्ष को फिर से स्थापित किया। अन्त में 20 नवम्बर को सरकार ने पूर्व-सेंसर हटा लिया।

शुक्ल की अगली कार्यवाही यह थी कि उन्होंने कम्पनी कानून बोर्ड के माध्यम से 10 दिसम्बर को 'स्टेट्समैन' को यह नोटिस भिजवाया कि क्यों न "कुव्यवस्था" के आधार पर 'स्टेट्समैन' के बोर्ड में सरकारी निदेशकों की एक अनिश्चित संख्या को औपचारिक रूप से नियुक्त कर दिया जाए। आरोप यह था कि स्टेट्समैन रद्दी के रूप में बेचने के लिए अखबार की अतिरिक्त कापियां छाप रहा है।

'स्टेट्समैन' ने फौरन कलकत्ता उच्च न्यायालय में एक अर्जी दी, जिस पर न्यायालय ने कार्यवाही को रोकने का आदेश दिया और बदले में सरकार से कारण पूछा कि क्यों न उसके नोटिस को रद्द कर दिया जाए। कलकत्ता उच्च न्यायालय में चार दिन की सुनवाई के बाद 20 दिसम्बर को केन्द्रीय सरकार ने नोटिस वापस ले लिया, क्योंकि वह समझ गई थी कि वह मुकदमा हार जाएगी।

सरकार का नोटिस क्यों न रद्द कर दिया जाए, यह 'कारण बताओ' आदेश, कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा सरकार के लिए जारी किए जाने के चार दिनों के भीतर ही व्यक्तिगत रूप से ईरानी के विरुद्ध कार्यवाही शुरू कर दी गई। आरोप यह लगाया गया कि 'स्टेट्समैन' ने 1970 में कम्पनी कानून के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार से अनुमति लिए बिना ही नचिकेता प्रकाशन लिमिटेड नामक एक छोटी प्रकाशन कम्पनी को ले लिया था। 'स्टेट्समैन' ने उस समय कानूनी सलाह ली थी, जिसके अनुसार तब अनुमति लेने की कोई जरूरत नहीं समझी गई थी। यह मामला अभी अदालत में विचाराधीन ही था कि आपातस्थिति हटा दी गई।

दबाव डालने का एक और उदाहरण यह है कि 24 जनवरी 1976 को श्री ईरानी का पासपोर्ट ज़ब्त कर लिया गया। श्री ईरानी उस समय विदेश में थे। 26 जनवरी को वे भारत लौटे तो उन्होंने विरोध के साथ और अपने अधिकारों

का दावा बरकरार रखते हुए अपना पासपोर्ट जमा करा दिया। पासपोर्ट ज़ब्त करने का कोई कारण नहीं बताया गया था।

जुलाई 1976 में 'स्टेट्समैन' को तंग करने का सरकार ने एक और बहाना निकाल लिया। नई दिल्ली 'स्टेट्समैन' के फुटकर विभाग ने मासिक पत्रिका 'सेमिनार' को छापने का काम ले लिया था। 15 जुलाई 1976 को भारत की रक्षा एवं आन्तरिक सुरक्षा अधिनियम, 1971 के अधीन नई दिल्ली 'स्टेट्समैन' को आदेश देकर कहा गया कि 'सेमिनार' की कोई सामग्री तब तक नहीं छापी जाएगी जब तक उस सामग्री को संघीय सरकार के मुख्य सेंसर के सामने छान-बीन के लिए प्रस्तुत न कर दिया जाए और मुख्य सेंसर से लिखित में उसके छापने की अनुमति प्राप्त न कर ली जाए।

'स्टेट्समैन' के प्रबन्धकों ने फौरन कदम उठाकर यह निश्चित कर लिया कि आदेश की प्राप्ति के बाद से 'सेमिनार' के प्रकाशन के बारे में उस आदेश का पालन कर लिया गया है। 20 जुलाई को 'स्टेट्समैन' को एक अन्य कारण बताओ आदेश दिया गया कि क्यों न 'स्टेट्समैन' के मुद्रणालय को ज़ब्त कर लिया जाए। इस 'कारण बताओ' नोटिस के आधार थे 'सेमिनार' के जुलाई 1976 के अंक में छपे चार लेख, जिन्हें पूर्व-सेंसर के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया था।

'कारण बताओ' नोटिस जारी करने के लिए देश में आपातस्थिति लागू करने के समय दिनांक 27 जून 1975 के पूर्व-सेंसर सम्बन्धी प्राथमिक आदेश का सहारा लिया गया था। इस तथ्य को गिनती में नहीं लिया गया था कि व्यवहारत: उस समय प्रशासनिक कार्यवाही के द्वारा नई दिल्ली समेत देश के बहुत बड़े भाग में उस आदेश के पालन की आवश्यकता नहीं रह गई थी। सरकारी घोषणाओं, सेंसरशिप की प्रणाली से सम्बन्धित केन्द्रीय सरकार की घोषित नीति तथा मार्ग-निर्देशों की उपेक्षा कर दी गई।

'स्टेट्समैन' ने स्थगन आदेश एवं उचित राहत के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय में अर्ज़ी दी। 29 जुलाई 1976 को उच्च न्यायालय ने नोटिस की कार्यवाही को स्थगित कर दिया। जब 13 सितम्बर को मामला अन्तिम सुनवाई के लिए दिल्ली उच्च न्यायालय के सामने पेश हुआ तो सरकार के वकील ने यह वक्तव्य दिया कि सरकार 'कारण बताओ' नोटिस की एवज़ में आगे कोई कार्यवाही नहीं करेगी। समाचारपत्र को तंग करने के सरकार के इस बदनीयत प्रयास का यह अन्त हुआ।

कभी घुटने न टेकने वाले शुक्ल 'स्टेट्समैन' को झुकाने की अपनी कोशिशों में लगे रहे। अब समाचारपत्र के हिस्सेदारों को अपने हिस्से बेच देने के लिए धमकाने की पेशकश की गई। यह चाल भी विफल हो गई, यद्यपि कांग्रेस दल के एक प्रमुख संसत्सदस्य ने कुछ हिस्सेदारों को चेतावनी दी थी कि दल और सरकार

के हाथ बहुत लम्बे हैं और वे 'स्टेट्समैन' पर अपना अधिकार करने के लिए कृतसंकल्प हैं।

सरकारी निरंकुशता के विरुद्ध 'स्टेट्समैन' के सफल संघर्ष ने यह दिखा दिया कि प्रेस न्याय और सुरक्षा के लिए देश के उच्च न्यायालयों पर निर्भर कर सकता है। प्रेस की स्वतंत्रता के लिए इस साहसिक लम्बे युद्ध के बाद यह उचित ही होगा कि अमरीका का 'स्वतंत्रता भवन' श्री सी० आर० ईरानी को स्वतंत्रता पुरस्कार दे।

जब जून 1975 में सरकार ने सेंसर की घोषणा की तो बम्बई से निकलने वाली एक मासिक पत्रिका 'फ्रीडम फर्स्ट' के सम्पादक श्री मीनू मसानी ने महसूस किया कि उस महीने सेंसर को प्रति भेजने और फेर-बदल करने में अब बहुत देर हो गई है। इसलिए उन्होंने जून के अंक को डाक में डाल दिया और जुलाई अंक की प्रति अनुमति के लिए सेंसर को भेज दी। बम्बई में सेंसर-अधिकारी श्री विनोद राव ने भेजी गई सामग्री में से 1 मुद्दों को काट दिया। श्री मसानी ने सेंसर के फैसले को स्वीकार नहीं किया और अदालत में उसे चुनौती देने का निश्चय किया।

स्वयं एक नेता, एक भूतपूर्व संसत्सदस्य एवं प्रमुख नागरिक श्री मीनू मसानी 10 दिन तक एक वकील से दूसरे वकील के पास भटके, पर किसी ने उनके मुकदमे को स्वीकार नहीं किया। सरकारी आदेशों को चुनौती देने का साहस किसी में नहीं था। अन्त में उनके मित्र और स्वयं एक प्रतिष्ठित वकील श्री सोली सोरावजी ने श्री डी० एच० नानावती का नाम सुझाया। दोनों वकीलों ने इस मुकदमे को न सिर्फ लड़ा और जीता बल्कि इस काम के लिए कोई पैसा भी स्वीकार नहीं किया। 10 फरवरी 1976 को न्यायमूर्ति डी० पी० मदन तथा न्यायमूर्ति एम० एच० केनिया ने श्री मसानी की अर्ज़ी को स्वीकार किया। न्यायाधीशों ने स्थापना दी कि सेंसर द्वारा काटे गए 11 में से 9 मुद्दों पर गलत प्रतिबन्ध लगाया गया था।

न्यायमूर्ति मदन ने अपने फैसले में कहा "सेंसरशिप आदेश के अधीन काम करने वाले सेंसर का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वह सभी समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं को एक ही दिशा में चलने के लिए बाध्य करे अथवा उन्हें एक के पीछे एक इकहरी पंक्ति में हांके अथवा उनसे एक सुर में एक कोरस गवाए। उसका यह काम नहीं है कि वह अपनी कानूनी ताकतों का इस्तेमाल सार्वजनिक मत को एक सांचे में ढालने के लिए अथवा प्रेस को जनता के मनोमार्जन (ब्रेन वाशिंग) का यन्त्र बनाने के लिए करे। सेंसरशिप आदेश के अधीन सेंसर की नियुक्ति लोकतंत्र की धाय के रूप में की जाती है, न कि उसकी कब्र खोदने वाले के रूप में।"

यह फसला सेंसर की ज़्यादतियों के विरुद्ध प्रेस के युद्ध का रुख निश्चित करने वाला सिद्ध हुआ।

एक पाक्षिक पत्रिका 'हिम्मत' के सम्पादक श्री राजमोहन गांधी (महात्मा गांधी के पौत्र) तथा एम० आर० ए० कार्यकर्त्ताओं के उनके दल ने यह तय किया था कि यदि वे आपातस्थिति की आलोचना नहीं कर सकेंगे, तो उसकी प्रशंसा भी नहीं करेंगे। लेकिन जल्द ही स्पष्ट हो गया कि सरकार को यह भी मंजूर नहीं था।

सितम्बर 1975 में 'हिम्मत' ने दिल्ली में राजघाट पर हुई एक सभा का, जिसमें आचार्य कृपलानी को भी बोलना था, ब्यौरा छापा। पुलिस ने इस सभा को भंग कर दिया था और श्री राजमोहन गांधी समेत 19 व्यक्तियों को बंदी बना लिया था। इस सभा का ब्यौरा 'हिम्मत' पर पूर्व-सेंसर लागू कर देने का सरकार के पास पर्याप्त कारण बना। सेंसर मार्च तक चलता रहा। श्री मीनू मसानी के मामले में न्यायमूर्ति मदन के फैसले के बाद 'हिम्मत' ने आगे प्रतियां सेंसर को न भेजने का निर्णय ले लिया। इसी समय 'हिम्मत' ने आपातस्थिति का विरोध करने वाले नेताओं, जैसे कि श्री एम० सी० छागला, आचार्य कृपलानी, श्री पीलूमोदी तथा श्री शान्तिभूषण से भेंट-वार्ताओं का एक क्रम शुरू किया।

सरकार ने पत्रिका से 20000 रुपये की ज़मानत मांगकर जवाबी चोट की। 'हिम्मत' ने इस आदेश को अदालत में चुनौती दी।

जिस प्रेस में 'हिम्मत' पिछले नौ वर्षों से छप रहा था, उसे विपत्ति की आशंका हुई। प्रेस ने सम्पादक से कहा कि पत्रिका के अगले तीन अंक वे तभी छापेंगे जब सेंसर पूरी सामग्री को पहले अनुमति दे देगा और तीन अंकों के बाद 'हिम्मत' को छपाई का कोई और प्रबन्ध करना होगा।

एक अंक में सेंसर ने एक मज़मून को अन्तिम क्षण ही काटा। पत्रिका छपने के लिए प्रेस में जा रही थी। सम्पादक ने वह जगह खाली छोड़ दी। इस बात ने सेंसर को सख्त नाराज़ कर दिया और पत्रिका पर एक बार फिर पूरा पूर्व-सेंसर लगा दिया गया। बाद के एक अंक में सेंसर ने श्री राजमोहन गांधी के एक लेख को काट दिया। सम्पादक ने अंतिम पेज पर पाठकों की सूचनार्थ एक संक्षिप्त सूचना डाल दी कि प्रत्याशित लेख को अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण छापा नहीं जा सका है। प्रेस ने मांग की कि इस सूचना को छापने की अनुमति भी सेंसर से ली जाए। जब सम्पादक उस सूचना को लेकर सेंसर के दफ्तर में गए तो ससर ने अनुमति देने से इंकार कर दिया। सेंसर का कहना था कि दिल्ली से इसकी इजाज़त नहीं मिलेगी और तब उन्हें परेशानी होगी। एक अधिकारी ने एक रास्ता सुझाया। उसने सलाह दी कि इस सूचना के स्थान पर 'हिम्मत' प्रधान

मन्त्री के बीस सूत्री कार्यक्रम में से एक सूत्र को छाप सकता है।

इसके बाद 'हिम्मत' को छापने के लिए कोई प्रेस तैयार नहीं हुआ। कुछ तैयार हुए भी तो एक या दो अंक छापकर पीछे हट गए। निराश होकर 'हिम्मत' ने पाठकों से अपील की कि अपना निजी प्रेस स्थापित करने के लिए वे उसे चन्दा दें। पैसा आया और अब 'हिम्मत' के पास अपना निजी प्रेस है।

छोटी-सी लेकिन बेलाग पत्रिका 'ओपीनियन' के सम्पादक श्री ए० डी० गोरवाला के साहस और दृढ़ता की तुलना श्री आर० एन० गोयनका से ही की जा सकती है। श्री गोरवाला उनमें से एक थे, जिन्होंने सेंसर की ज़्यादतियों के सामने झुकने से इंकार कर दिया। उन्होंने बाद में 'ओपीनियन' के एक अंक में लिखा "इस प्रक्रिया (पूर्व सेंसर की प्रक्रिया) के कुछ अनुभव के बाद मैंने महसूस किया कि यह अपने पाठकों एवं देश के प्रति सम्पादक के कर्त्तव्य से बिल्कुल मेल नहीं खाती। अतः मैंने इसके बिना ही चलना शुरू किया। लेकिन सेंसर के वास्तविक प्रयोजन को अपने दिमाग में रखा, अर्थात् भारत की रक्षा, नागरिक सुरक्षा, सैनिक कार्यवाहियों के कुशल संचालन, सार्वजनिक अनुशासन एवं आन्तरिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक हिफाज़त से सम्बन्धित कोई निन्दाजनक बात नहीं छापी।"

सेंसर ने कुछ समय तक 'ओपीनियन' की इस स्थिति की उपेक्षा की। उसकी समस्याएं मार्च 1976 के अंत के आस-पास शुरू हुईं। गोरवाला को तथा जहां 'ओपीनियन' छपता था उस प्रेस को ज़ब्ती के नोटिस प्राप्त हुए। श्री गोरवाला ने फौरन एक पत्र लिखकर अधिकारियों से पूछा कि किन नियमों का भंग उसने किया है, जिससे ज़ब्ती का यह आदेश भेजा गया है। उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। गोरवाला ने पत्र भेजकर याद दिलाया। इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया गया। इस बीच प्रेस ने 'ओपीनियन' को आगे छापने से इंकार कर दिया। गोरवाला दूसरे प्रेस के पास गए, जिसने काम ले लिया, लेकिन दो अंक छापने के बाद छापना जारी रखने में असमर्थता प्रकट कर दी। गोरवाला अब एक अन्य प्रेस के पास गए, पर परिणाम वही निकला। उन्होंने पत्रिका साइक्लोस्टाइल करने का फैसला किया। अब सेंसर ने दूसरी चाल चली। उसने डाक अधिकारियों को निर्देश दिया कि ओपीनियन को बांटा न जाए। अंत में श्री गोरवाला रुककर खड़े हो गए। 'ओपीनियन' पत्रिकाओं की दुकानों पर नहीं बेचा जाता, बल्कि पूरा का पूरा चन्दा लेकर डाक से भेजा जाता था। कुछ भी हुआ, पर लड़ाई उन्होंने जारी रखी।

30 अप्रैल को श्री गोरवाला से कहा गया कि वे पुलिस कमिश्नर के यहां 25000 रुपये की ज़मानत जमा करें। गोरवाला ने अदालत में इस आदेश को

चुनौती दी और स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया। अन्त में, राज्य सरकार ने हस्तक्षेप किया। उसने कहा 'ओपीनियन' सार्वजनिक सुरक्षा तथा सार्वजनिक अनुशासन एवं आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा है और इस आधार पर पत्रिका का प्रकाशन करने की गोरवाला को मनाही कर दी गई।

श्री गोरवाला उनमें थे, जो कभी हार नहीं मानते थे। उन्होंने अपने विदाई के सम्पादकीय में लिखा, "वर्तमान इन्दिरा-प्रशासन जून 1975 में स्थापित हुआ। वह झूठ में से पैदा हुआ, झूठ से पला और झूठ पर ही फला-फूला। न तो भारत सरकार, न ही महाराष्ट्र की सरकार इतनी जड़ मूर्ख हो सकती है कि जो आशंका उन्होंने प्रदर्शित की है वह सचमुच ही उन्हें हो भी। वे जानते हैं कि 'ओपीनियन' के युक्तिसंगत लेख आम आदमी को भड़काने वाले व्यक्ति अथवा षड्यंत्रकारी को कोई मसाला नहीं देते। वे उस जनवर्ग से परिचित हैं, जिसकी 'ओपीनियन' सेवा करता है। ये लोग सड़कों पर हुड़दंग करने वाले नहीं हैं। ये पढ़ते हैं, सोचते हैं, बहस करते हैं, तोलते हैं और अपने निजी निष्कर्षों तक पहुंचते हैं। और ये निष्कर्ष ही हैं जिनसे शासन इतना भयभीत है, उन निष्कर्षों से जिन्हें शिक्षित भारतीयों के बहुत ही सूक्ष्म अंग 'ओपीनियन' के पाठकों ने उपलब्ध किया है।

जनवरी 1977 में सेंसरशिप के उठाए जाने के बाद 'ओपीनियन' ने अपना प्रकाशन फिर से आरम्भ किया।

9
कुछ मामले—समाचार एजेंसियां

समाचार एजेंसियों को मिलाकर एक कर देने की सरकार की मंशा की पहली झलक अगस्त 1975 में मिली थी। श्री विद्याचरण शुक्ल ने हैदराबाद भवन में कुछ वरिष्ठ पत्रकारों से दोपहर के भोजन पर भेंट की और उनमें संचार-माध्यमों के पुनर्गठन की सरकारी योजना के बारे में बातचीत की। उन्होंने कहा, सरकार महसूस करती है कि सिर्फ एक या अधिक से अधिक दो समाचार एजेंसियां होनी चाहिएं। उनके दिमाग में था कि एक अंग्रेज़ी माध्यम की एजेंसी हो और दूसरी हिन्दी माध्यम की।

नवम्बर में शुक्ल बम्बई में प्रेस ट्रस्ट के निदेशकों से भोजन पर मिले और उन्हें चार समाचार एजेंसियों को मिलाकर एक करने की सरकारी योजना के बारे में बताया। इसके बाद संचार एवं प्रसारण मन्त्रालय के विशेष अधिकारी श्री के० एन० प्रसाद की ओर से प्रेस ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री पी० सी० गुप्त को एक संक्षिप्त पत्र मिला, जिसमें प्रेस ट्रस्ट के अध्यक्ष से कहा गया था कि वे बोर्ड की बैठक शीघ्र ही बुलाएं और प्रस्तावित विलय के प्रबन्ध को अन्तिम रूप दें।

सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के आदेश का पालन करते हुए नियमों के अनुसार सात दिन के नोटिस के बदले कुल 48 घण्टे का बीच देकर बोर्ड की बैठक 10 दिसम्बर को बुलाई गई। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय ने विलय की कोई योजना क्योंकि बोर्ड को नहीं भेजी थी, इसलिए बोर्ड ने प्रस्ताव का ब्यौरा मांगा। निर्णय लेने से पहले उन्होंने एक आम बैठक बुलानी चाही, क्योंकि प्रस्ताव में एक पृथक् इकाई के रूप में प्रेस ट्रस्ट की समाप्ति की बात निहित थी।

अब धौंस-धुप्पल की प्रक्रिया चालू हुई। भारत सरकार के प्रधान सूचना अधिकारी डाक्टर ए० आर० बाजी को बोर्ड की बैठक के अवसर पर बम्बई भेजा गया, जिससे वे वहां भूमिका निर्मित कर सकें। जब बैठक से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं हो सके, तो सूचना अधिकारी महोदय क्रुद्ध हो उठे। प्रेस ट्रस्ट के निदेशकों द्वारा मांगे गए विवरणों को देने के स्थान पर उन्होंने अखबारों में एक खबर छपवा दी, जिसमें कहा गया था कि समाचार एजेंसियों को बहुत बड़ी धनराशि (70 लाख रुपये) सरकार को देनी है और इस राशि को वसूल करने के लिए अधिकारी उचित कार्यवाही करना चाहते हैं।

प्रेस ट्रस्ट ने अपने नये भवन-निर्माण के लिए सरकार से 50 लाख रुपये का कर्ज़ लिया था, लेकिन बदले में अपने भवन को, जो कुछ करोड़ रुपये की कीमत का था, सरकार के पास गिरवी रख दिया था। प्रेस ट्रस्ट नियमित किश्तों में मूल और ब्याज अदा कर रहा था और अब तक 16 लाख रुपया सरकार को दे चुका था।

प्रेस ट्रस्ट की मान्यता थी कि सरकार इस कर्ज़ पर 40 प्रतिशत से कम ब्याज नहीं ले रही है, क्योंकि उसने प्रचलित बाज़ार भाव 3 रुपये प्रति वर्ग फुट के स्थान पर 75 पैसे प्रति वर्ग फुट के हिसाब से भवन की दो मंज़िलें किराये पर ले रखी हैं।

इस बीच प्रेस ट्रस्ट पर बहुमुखी दबाव बनाए रखने के लिए नई दिल्ली नगर पालिका ने कुछ शेष करों की एवज़ में भवन पर कब्ज़ा करने के आदेश प्रेस ट्रस्ट पर जारी करा दिया। वस्तुतः इस देय राशि पर झगड़ा था और मुकदमा चल था। प्रेस ट्रस्ट के प्रतिनिधि कुल दो दिन पहले ही मामले पर विचार करने के लिए नई दिल्ली नगर पालिका के अधिकारियों से मिले थे और प्रेस ट्रस्ट पहले ही दिए जा चुके 50000 रुपये के अतिरिक्त 1 लाख रुपया और देने पर राज़ी हो गया था।

28 दिसम्बर को प्रेस ट्रस्ट की बिजली काट दी गई। जब पूछा गया तो नगर पालिका ने कहा कि ऐसा किसी तकनीकी दोष के कारण हो गया है। इस तर्क पर विश्वास नहीं किया जा सकता था, क्योंकि प्रेस ट्रस्ट के पास दो सूत्रों से बिजली की आमद का प्रबन्ध था। ऐसा इसलिए किया गया था, जिससे किसी एक सूत्र की बिजली बन्द हो जाने पर काम न रुके। लेकिन अब दोनों सूत्रों की बिजली कट गई थी।

30 दिसम्बर को प्रेस ट्रस्ट के प्रबन्धक अपने अध्यक्ष सहित नगरपालिका के अधिकारियों से मिले। प्रेस ट्रस्ट से कहा गया कि वह 1 जनवरी तक 2.33 लाख रुपये का भुगतान कर दे। यह मांग पूरी कर दी गई। इस पर भी नई दिल्ली नगरपालिका के सचिव श्री बी० एस० ऐलवाड़ी ने ज़िद की कि प्रेस ट्रस्ट की सम्पत्ति, मेज़ों, कुर्सियों, मशीनों आदि की सूची बनाने के लिए अधिकारी भेजें जाएं। यह सिर्फ़ इसलिए कि प्रेस ट्रस्ट के प्रबन्धकों में घबड़ाहट पैदा की जा सके।

लगभग उसी समय चण्डीगढ़ की अपनी यात्रा के दौरान सम्वाददाताओं से बातचीत करते हुए सूचनामन्त्री ने इशारा किया कि सरकार ने चारों समाचार एजेंसियों का एक इकाई में विलय कर देने का फैसला कर लिया है। इस प्रस्तावित कार्यवाही को संगत सिद्ध करने के लिए शुक्ल ने आरोप लगाया कि प्रेस ट्रस्ट पर पांच प्रमुख समाचारपत्रों का आधिपत्य है। जब एक संवाददाता ने

बताया कि छोटे या बड़े सभी समाचारपत्र फ़ी अखबार 5000 रुपये के हिसाब से प्रेस ट्रस्ट में बरावर के हिस्सेदार हैं, तो शुक्ल आपे से बाहर हो उठे और उन्होंने कहा कि उनके पास सब तथ्य हैं और वे हवा में बातें नहीं कर रहे हैं।

तीसरी ज़ोट 2 जनवरी को दी गई। जब आकाशवाणी ने प्रेस ट्रस्ट को नोटिस दिया कि 1 फरवरी से प्रेस ट्रस्ट की समाचार-सेवाओं का इस्तेमाल वन्द कर रही है! आकाशवाणी को प्रेस ट्रस्ट का लगभग 15 लाख रुपया देना था। यह राशि भी रोक ली गई। प्रेस ट्रस्ट ने विरोध में कहा कि आकाशवाणी को सम्बन्ध-विच्छेद के लिए तीन महीने का नोटिस देना और देय राशि का भुगतान कर देना चाहिए था।

मन्त्री महोदय ने करारा जवाब दिया कि प्रेस ट्रस्ट के साथ आकाशवाणी का समझौता 1973 में खत्म हो गया था और उसे दुबारा कभी नया नहीं किया गया। इसलिए नोटिस देने का सवाल ही नहीं उठता। शुक्ल ने कहा कि प्रेस ट्रस्ट द्वारा दी गई खबरों का रूप आकाशवाणी के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि उनका रूप नगर-केन्द्रित है। शुक्ल ने बाद में लोकसभा में घोषित किया कि प्रेस ट्रस्ट एवं यू० एन० आई० क्रमशः रायटर एवं एसोसियेटेड प्रेस आफ अमेरिका के उत्तराधिकारी हैं और इनकी कार्यप्रणाली न सन्तोषजनक है और न ही भारत की राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुरूप है।

लेकिन जब श्री एन० जी० गोरे ने लोकसभा में पूछा कि क्या सरकार प्रेस ट्रस्ट एवं यू० एन० आई० पर विलय के लिए दबाव दे रही है तो शुक्ल ने उत्तर दिया, "वर्तमान एजेंसियों का विलय करना सरकार का काम नहीं है। इन दोनों एजेंसियों के प्रतिनिधि प्रस्तावित विलय से सम्बन्धित अपनी कुछ समस्याओं के हल के लिए सरकार से वातचीत कर रहे हैं।"

सार्वजनिक रूप से शुक्ल ने हमेशा इस बात पर ज़ोर दिया कि प्रस्तावित विलय पूरी तरह स्वैच्छिक है और सरकार को इसमें कुछ करना नहीं है। इस बीच प्रधान सूचना अधिकारी डा० वाजी को फिर बम्बई भेजा गया, जिससे वे प्रेस ट्रस्ट के बोर्ड को और जनरल मैनेजर को इस बात के लिए तैयार कर सकें कि अन्य समाचार एजेंसियों के साथ विलय का प्रस्ताव वे स्वेच्छा से पारित कर दें। जब डा० वाजी ने देखा कि अध्यक्ष एवं प्रेस ट्रस्ट के निदेशक अब भी विलय के प्रस्ताव का विरोध कर रहे हैं तो, बताया जाता है, उन्होंने जनरल मैनेजर श्री के० एस० रामचन्द्रन् को धमकी दी कि उनके विरुद्ध मीसा के अन्तर्गत कार्यवाही की जाएगी।

अगली कार्यवाही यह की गई कि प्रेस ट्रस्ट की टेलीप्रिन्टर-लाइनें बन्द कर दी गईं। जब प्रेस ट्रस्ट के अधिकारी भागकर डाक और तार विभाग में पहुंचे और लाइनें चालू कर देने का अनुरोध उनसे किया तो विभाग ने अपनी विवशता प्रकट की। विभाग के एक अधिकारी ने बताया, "मैं इतना बता सकता हूं कि देय

का भुगतान न करने के कारण लाइनें नहीं काटी गई हैं। हमारे पास ऊपर के आदेश हैं।"

प्रेस ट्रस्ट की अर्जी का उत्तर देते हुए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के विशेष अधिकारी के० एन० प्रसाद ने लिखा, "सभी सम्भव कठिनाइयों को हमने समझ लिया है। लेकिन इन मुद्दों में से अधिकतर क्योंकि पहले से ही हमारी जानकारी में हैं, इसलिए व्यापक राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से यही वांछनीय है कि समाचार एजेंसी एक ही रखी जाए। अतः हमारा सुझाव है कि इसे आप अपने बोर्ड के सामने प्रस्तुत करें।"

प्रेस ट्रस्ट बोर्ड के कुछ सदस्य इस बात से बहुत उत्तेजित थे कि सरकार एक ओर तो विलय की योजना का ब्यौरा देने में विफल रही है और दूसरी ओर तत्काल एक स्वैच्छिक विलय पर ज़ोर दे रही है। जनरल मैनेजर ने सरकार से हुए पत्र व्यवहार की प्रतियां दिल्ली में बोर्ड के सदस्यों को भेजीं और उनकी प्रतिक्रिया मांगी, क्योंकि कम अवधि की चेतावनी पर बोर्ड की बैठकें बार-बार करना सम्भव नहीं था।

बोर्ड के एक सदस्य ने यह मत व्यक्त किया कि न तो आम सिद्धान्तों के आधार पर और न ही राष्ट्रीय हित में विलय वांछनीय है और "इसलिए बोर्ड अनुभव करता है कि सरकार इस विषय पर अपनी धारणा पर पुनर्विचार करे।" उस सदस्य ने लिखा, "हम एक एकाधिकारी समाचार-प्रणाली के सर्जन में भागीदार नहीं बन सकते। वैसे सरकार सर्वशक्तिमान है। जो चाहे वह कर सकती है।"

बहुमुखी दबाव ने प्रेस ट्रस्ट के बोर्ड पर अपना असर दिखाना शुरू कर दिया था। 20 जनवरी 1976 को बोर्ड की अन्तिम बैठक हुई, जिसमें उसने अपने मृत्यु-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। बोर्ड ने श्री के० एन० प्रसाद के 7 जनवरी के पत्र और आकाशवाणी को प्रेस ट्रस्ट की सेवाएं बन्द कर देने की घोषणा करते हुए 2 जनवरी के पत्र पर विचार किया। जनरल मैनेजर ने सरकार द्वारा प्रेस ट्रस्ट पर लागू की गई तरह-तरह की सख्तियों की तथा सरकार के कठोर एवं पूरी तरह असहयोगी रुख की सूचना बोर्ड को दी और कहा कि इन हालतों में काम चलाने में वे असमर्थ हैं।

बोर्ड ने सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय की मांग के अनुसार एक प्रस्ताव पारित कर दिया। प्रस्ताव में कहा गया : प्रेस ट्रस्ट का बोर्ड चारों समाचार एजेंसियों के एक अकेली एजेंसी में स्वैच्छिक विलय के प्रस्ताव को स्वीकार करता है। वह पिछले सप्ताह राज्य सभा में दिए गए सूचना एवं प्रसारण मन्त्री के इस वक्तव्य की प्रशंसा करता है कि विलय स्वेच्छा से ही होना चाहिए।

यह है भारत की 70 वर्ष पुरानी अग्रगामी समाचार एजेंसी की आंतों को बाहर खींच लेने की दु:खद कहानी।

शुक्ल के संचार एवं प्रसारण मन्त्रालय संभालने के दो दिन बाद यू० एन० आई० के जनरल मैनेजर श्री जी० जी० मीरचन्दानी मन्त्री महोदय से मिलने आए। लगभग झिड़के जाने का अनुभव लेकर ही वह वापिस गए। शुक्ल बर्फ की सिल्ली की तरह ठंडे दीख पड़े। यह देखकर किन्हीं नीति-सम्बन्धी प्रश्नों पर बात करने का उत्साह यू० एन० आई० के जनरल मैनेजर में नहीं हुआ। इस भेंट में शुक्ल ने सभी समाचार एजेंसियों के सम्भावित विलय का संकेत दिया। उनका कहना था, यह सिर्फ एक विचार है।

इस अवसर पर शुक्ल का रूखापन, कुछ समय पहले जब मन्त्री महोदय सुरक्षा उत्पादन मन्त्री थे तब के मीरचन्दानी के साथ उनके व्यवहार से एकदम उलट था। उस समय यही शुक्ल थे जो श्री मीरचन्दानी से भेंट करना चाहते थे और उन्होंने अपने घर चाय पर उन्हें निमन्त्रित किया था। शुक्ल ने बड़े सद्भाव पूर्वक श्री मीरचन्दानी का स्वागत किया था। आरम्भिक बातचीत के बाद शुक्ल ने यू० एन० आई० के जनरल मैनेजर से प्रार्थना की थी कि शुक्ल के एक सम्बन्धी, रायपुर में यू० एन० आई० के सम्वाददाता, का वेतन बढ़ा दिया जाए। श्री मीरचन्दानी ने मन्त्री महोदय की बात रखी थी और उस संवाददाता के वेतन में 30 रुपये मासिक बढ़ा दिए थे। ऐसा आरम्भिक तौर पर किया था क्योंकि तरक्की का पात्र तो वह था।

सूचना प्रसारण मन्त्री के साथ श्री मीरचन्दानी की दूसरी भेंट उनके इस मन्त्रालय में आने के एक सप्ताह बाद हुई। मन्त्री महोदय ने सभी एजेंसियों के प्रमुखों को एक साथ बुलाया था। इस भेंट के दौरान शुक्ल ही लगातार बोलते रहे। उन्होंने एजेंसियों के प्रमुखों को बताया कि उन्हें यह कहने के लिए बुलाया गया है कि वे सरकार को अपना सहयोग दें और ध्यान रखें कि सेंसर के नियमों का सख्ती से पालन किया जाता है। उन्होंने न करने वाले कामों की लम्बी सूची पढ़कर सुनाई। प्रधान सेंसर ने यह सूची पहले ही सबके पास भेज दी थी। एक उपस्थित पत्रकार ने मन्त्री महोदय से शरारतन पूछा कि क्या बाज़ार भावों के उतार-चढ़ाव को वे खबरों में दे सकते हैं। मन्त्री महोदय का उत्तर था—नहीं। यदि उतार-चढ़ाव बहुत प्रखर है तो उससे दहशत फैल सकती है। तब पल भर रुककर उन्होंने आगे कहा कि बिना किसी टिप्पणी अथवा पृष्ठभूमि के सिर्फ अंक दिए जा सकते हैं।

13 जुलाई को श्री मीरचन्दानी ने श्री शुक्ल के सम्मान में एक भोज दिया, जिसमें यू० एन० आई० के स्थानीय निदेशक आए। शुक्ल आम तौर से प्रथम पुरुष में बोलते थे। उन्होंने यू० एन० आई० के निदेशकों को बताया कि उन्होंने

समाचार एजेंसियों के विलय का फैसला कर लिया है। एजेंसी के अनेकों पत्रकार पहले यह सोचते थे कि विलय की यह बात नये मन्त्री का 'लिल्ली घोड़ा' है, क्योंकि एशियन समाचार सेवा उनके पूर्ववर्ती मन्त्री श्री इन्दर गुजराल की थी।

लेकिन शुक्ल ने सभी सन्देहों को समाप्त करते हुए विलय के लक्ष्य को पूरा करने की अन्तिम सीमा सितम्बर निश्चित कर दी। इस सीमा को बदलकर नवम्बर करना पड़ा, क्योंकि मन्त्रालय के अधिकारी लिखा-पढ़ी का काम पूरा नहीं कर पाए थे। प्रस्ताव यह था कि सरकार एक अध्यादेश जारी करके सभी चार समाचार एजेन्सियों—प्रेसट्रस्ट, यू० एन० आई०, समाचार भारती तथा हिन्दुस्तान समाचार को अपने कब्ज़े में ले लेगी और तब 'समाचार सेवा' नाम की एक इकाई में उनका विलय कर दिया जाएगा। अध्यादेश का मसौदा सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय में तैयार किया गया था। 12 दिसम्बर 1975 की विलम्बित तिथि तक इस मसौदे को अन्तिम रूप दिया जा रहा था।

अध्यादेश पर विचार करने के लिए मन्त्रिमंडल की एक विशेष बैठक 13 दिसम्बर को बुलाई गई थी। बैठक 5 बजे थी। श्री मीरचन्दानी ने संजय से मिलने का समय मांगा, जो उसी दिन दोपहर बाद 3-30 तय हुआ। जब मीरचन्दानी प्रधानमन्त्री निवास पर पहुंचे तो उन्होंने देखा कि बहुत सारे लोग पहले से ही संजय से मिलने के लिए वहां इकट्ठे हैं। इस प्रकार मीरचन्दानी की बारी 5-15 तक आ सकी और तब तक मन्त्रिमंडल की बैठक शुरू हो चुकी थी। श्री मीरचन्दानी ने संजय से कहा कि आप तक पहुंचने में शायद बहुत देर हो गई है। फिर भी उन्होंने संजय को बताया कि सिर्फ एक समाचार एजेन्सी से स्वयं सरकार के भी हित पूरे नहीं हो पाएंगे। दूसरी ओर यदि दो या अधिक समाचार एजेन्सियों में सरकार की कृपा पाने की होड़ रहेगी, तो इससे सरकार अधिक लाभ की स्थिति में रहेगी। भेंट कुल पांच मिनट तक चली। लेकिन उसी दौरान संजय ने कहा, "मैं स्वयं अध्यादेश के कुछ मुद्दों को पसन्द नहीं करता।"

मीरचन्दानी वापस अपने दफ्तर चले गए और गहरी उत्कंठा के साथ मन्त्रिमंडल की बैठक के परिणाम की प्रतीक्षा करने लगे। 6-30 पर टेलीफोन की घंटी बजी। मन्त्रिमंडल ने प्रस्ताव को रद्द कर दिया था। कहा जाता है, बैठक में विशेष रूप से निमन्त्रित श्री पी० एन० हक्सर और मन्त्रालय में शुक्ल के पूर्ववर्ती श्री गुजराल ने प्रस्ताव की ज़ोरदार आलोचना की थी। दोनों का कहना था कि अध्यादेश के द्वारा बलपूर्वक किया गया विलय वांछनीय नहीं है। यह भी बताया गया कि कम से कम नौ मन्त्रियों ने प्रस्ताव का विरोध किया। मन्त्रिमंडल ने एक घण्टे तक शुक्ल से प्रश्नोत्तर किए और अन्त में प्रस्ताव को रद्द कर दिया। उक्त अध्यादेश में बीमे के राष्ट्रीयकरण के नमूने पर समाचार एजेन्सियों के राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव रखा गया था।

श्रीमती गांधी अंत में बोलीं और उन्होंने कहा, "मैं भारत में 'तास' नहीं चाहती।" कहा जाता है कि पहले उन्होंने प्रस्ताव को अपना आशीर्वाद दे दिया था, लेकिन जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिमंडल में इस प्रस्ताव का इतना ज़ोरदार विरोध हुआ है, तो उन्होंने अपनी राय बदल दी।

इस प्रकार मात खाकर शुक्ल अब युद्ध के मार्ग पर चल पड़े। अगले दिन अखबारों में यह खबर निकली कि एजेन्सियों को 70 से 75 लाख के बीच रुपया सरकार को देना है। 15 दिसम्बर को यू० एन० आई० के मुख्यालय में अधीन कार्यालयों से ये शिकायतें आने लगीं कि डाक-तार विभाग, झगड़े के कारण लटकी पड़ी बकाया राशियों समेत सभी देय राशियों का भुगतान करने के लिए दबाव डाल रहा है। ऐसा न करने पर लाइनें काट दी जाएंगी। यू० एन० आई० की तरफ बकाया राशि पूरे देश में 4.5 लाख से अधिक नहीं थी और प्रेसट्रस्ट की ओर इससे भी कम थी। दो हिन्दी समाचार एजेन्सियों की ओर बकाया इससे अधिक था। इसके मुकाबले सरकार को लगभग 13 लाख रुपये यू० एन० आई० को देने थे और 15 लाख रुपये प्रेसट्रस्ट को।

शुक्ल ने इसके समर्थन में एक दूसरी धमकी दी : उन्होंने दावा किया कि यदि एक एजेन्सी की ओर एक सरणि (चैनल) का बकाया है, तो सरकार सभी सरणियों को काट सकती है। (यह बात प्रसाद के दिमाग की उपज कही जाती है)। मीरचन्दानी अब संचार मन्त्री श्री एस० डी० शर्मा के पास दौड़े। उन्होंने अपनी विवशता प्रकट की, यद्यपि उन्होंने साफ कहा कि प्रस्तावित कार्यवाही 'हत्या' के बराबर है। असल में लाइनें कभी नहीं काटी गईं, लेकिन एजेन्सी के सिर पर धमकी की तलवार लटकी रही।

नये वर्ष के साथ यू० एन० आई० पर सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय का दबाव बढ़ गया। आकाशवाणी यू० एन० आई० की सूचना-सेवा के लिए 70000 रुपये देती थी। श्री मीरचन्दानी बैंकों, होटलों आदि को अपनी सूचना-सेवा बेचते घूमे। वे आकाशवाणी से होने वाली आय के रुक जाने की आशंका में 50000 रुपये का प्रबन्ध पहले ही कर लेना चाहते थे। तब यह पूरी तस्वीर सामने रखते हुए उन्होंने अपने निदेशकों को लिखा।

एक निदेशक ने जवाब दिया, "चिन्ता मत करो। हम आपके साथ हैं।" मीरचन्दानी ने इस पत्र की प्रतियां दूसरे निदेशकों को भेजीं, लेकिन वे सहयोग देने में विफल रहे। जिस निदेशक ने पहले साथ देने का वचन दिया था, उसने भी बाद में टेलीफोन किया कि उसने राय बदल दी है। बोर्ड की बैठक में 'इंडियन एक्सप्रेस' के सम्पादक श्री मुलगांवकर और 'स्टेट्समैन' के श्री निहालसिंह, दो ही थे, जिन्होंने सरकार की मांग का विरोध किया। कुछ निदेशकों ने तो विलय के पक्ष में तर्क तक किया। (उस समय तक श्री जार्ज वर्गीज़, जिन्हें हिन्दुस्तान टाइम्स से हटा

दिया गया था, के स्थान पर पत्र के जनरल मैनेजर श्री सन्तोषनाथ आ गए थे।) बहस का रुख यह था : "यदि हमें ऐसा करना ही है, तो अच्छा है हम कर डालें और इससे छुट्टी पाएं। अब इस बारे में क्या करना है!"

जैसे ही निदेशक भोजन के लिए बैठे, टेलीफोन की घंटी बजी और जनरल मैनेजर को बताया गया कि 'फाइव टिकर' लाइनें काट दी गई हैं। जब डाक-तार-विभाग से सम्पर्क किया गया तो उन्होंने बताया कि उन्हें कारणों का ज्ञान नहीं है, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय से पूछो। जब सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय में श्री प्रसाद से बात की गई तो उनका कहना था, "मुझे क्या पता! डाक-तार से पूछो।"

(कुछ दिन बाद जब प्रेसट्रस्ट के बोर्ड की बैठक चल रही थी तो प्रेसट्रस्ट की छः लाइनें काट दी गई थीं। सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय की धौंस-धुप्पल की नीति का यह एक रंग था।)

यू० एन० आई० के निदेशकों का विरोध पूरी तरह चरमरा गया। प्रमुख सूचना अधिकारी डा० बाजी अलग-अलग निदेशकों पर दबाव डालते रहे थे। अब सब चिह्नित जगह पर हस्ताक्षर करने के लिए तैयार थे। इसमें अपवाद रहा, 'स्टेट्समैन', जिसके निदेशक ने कहा था कि मैं इस अपराध में भागीदार नहीं बन सकता। "यदि हम फैसले को प्रभावित नहीं कर सकते तो हम इससे अलग रहेंगे।"

जनवरी के तीसरे सप्ताह में यू० एन० आई० और प्रेसट्रस्ट दोनों के बोर्डों ने स्वैच्छिक विलय का प्रस्ताव पारित कर दिया। प्रस्ताव का मसौदा शास्त्री भवन में तैयार किया गया था और स्वीकृति के लिए उनके पास भेज दिया गया था।

31 जनवरी की आधी रात को प्रेसट्रस्ट एवं यू० एन० आई० के नाम समाचारपत्रों में प्रकाशित खबरों पर से गायब हो गए और उनके स्थान पर 'समाचार' शब्द आ गया।

हिन्दी की दो समाचार-एजेंसियों : समाचार भारती और हिन्दुस्तान समाचार को हज़म करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई। दोनों ही धन की कमी और अकुशलता के कारण भारी हानि में चल रही थीं। उनके कर्मचारी साधन-सम्पन्न इस नई इकाई में अपने विलय के लिए फौरन तैयार थे, क्योंकि इससे उन्हें सुरक्षा और नियमित वेतन मिलने की आशा थी।

समाचार का पंजीकरण एक सोसायटी के रूप में किया, जबकि प्रेसट्रस्ट एवं यू० एन० आई० कम्पनियां थीं। इसलिए सोसायटी द्वारा कम्पनियों के ले लिए जाने में कुछ कठिनाई उत्पन्न हुई। यह गांठ इस प्रकार सुलझाई गई कि समाचार ने दोनों कम्पनियों के हिस्से खरीद लिए। लेकिन प्रेसट्रस्ट के हिस्सेदारों में 'स्टेट्समैन' तथा 'मलयाल मनोरमा' ने दृढ़ता दिखाई और अपने हिस्से 'समाचार' को बेचने से इंकार कर दिया।

'समाचार' ने चारों एजेंसियों की सम्पत्ति को 'स्वेच्छापूर्वक' ले लिया और उनके कर्मचारी समाचार को उधार के रूप में दे दिए गए (प्रत्येक को अपनी सेवाएं 'समाचार' को देने पर राज़ी होते हुए एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने पड़े थे)। वैसे, प्रेसट्रस्ट की दोनों कम्पनियां दो पृथक् इकाइयों के रूप में कानूनन अब भी अस्तित्व में हैं। इसलिए प्रेसट्रस्ट का निदेशक-मंडल किसी भी दिन अपनी सम्पत्ति पर स्वत्व की मांग 'समाचार' से कानूनन कर सकता है। 'समाचार' कुछ करोड़ रुपयों की कीमत के नयी दिल्ली स्थित प्रेसट्रस्ट के विशाल भवन पर कब्ज़ा जमाए है और अधिकतर अन्य स्थानों पर भी यान्त्रिक सामग्री की बड़ी मात्रा सहित, जिसका एक अंश यू० एन० आई० का है, प्रेसट्रस्ट के भवन 'समाचार' के अधिकार में हैं। यह सब सम्पत्ति अब भी मूल स्वामियों की है।

'समाचार' के आम निकाय में 16 सदस्य हैं और श्री जी० कस्तूरी की अध्यक्षता में एक प्रबंध समिति इसकी व्यवस्था करती है। एजेंसी की गतिविधियां एक कार्यकारी सदस्य (सम्पादकीय) तथा एक कार्यकारी सदस्य (प्रशासन) के हाथ में हैं। चुनावों में श्रीमती गांधी के सरकार का पतन हो जाने तक समाचार की गतिविधियों के पीछे प्रेरक आत्मा के रूप में थे, मोहम्मद यूनुस, 'प्रधानमन्त्री के विशेष दूत', क्योंकि यह कहलाने की उन्हें ज़िद थी। 'समाचार' के निदेशन की ज़िम्मेदारी सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय के उस पुलिस अधिकारी के० एन० प्रसाद के हाथ में थी, जो टेलीफोन के माध्यम से सुदूर नियन्त्रण के ढंग पर एजेंसी को चलाता था। 'समाचार' के मामलों का, जिनमें खबरों की नीति-सम्बन्धी फैसले भी शामिल थे, अन्तिम निर्णायक, लगता है, सर्वतोमुखी प्रतिभा का वह युवक नेता, संजय गांधी था।

परिणाम हुआ, समाचार-सेवा का वह हास्यास्पद रूप, जिसे अपने को फिर से निर्मित करने एवं विश्वसनीयता प्राप्त करने में कुछ नहीं तो बरसों लगेंगे।

10

वह बिगड़ा हुआ लड़का

संजय अनेक टुकड़ों से मिलकर बना लगता है। अदम्य, स्वेच्छाचारी, ज़िद्दी वह था, पर काम से और उतना ही ज़िन्दगी से भी वह प्रेम करता था। लेकिन स्कूल से उसे लगाव नहीं था। देखने में काफी लम्बा और सुन्दर था। कुछ लोग उसे दूध-से चेहरे और गुलाबी होंठों वाला कहते थे। बहुत-कुछ वह अपने पिता पर था। उसके होंठ उसके नाना के थे और उन होंठों में जो पेंच था, वह उसे अपनी मां से मिला था।

संजय को दून स्कूल से वापस बुलाना पड़ा था। उसकी बुआ-नानी श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने उसके बारे में कहा था कि उसे किताबों से नफरत है। लेकिन परिवार के मित्र मोहम्मद यूनुस का कहना है कि उसमें प्रयोजन की दृढ़ता और प्रेरणा है। वे कहते हैं, "मैं उसे बच्चेपन से जानता हूं और मैंने उसे एक छोटे से शेड में काम करते और गंदे और काले हाथ और कपड़े लिए घर लौटते देखा है।"

परिवार के एक निकट मित्र का कथन है कि संजय मां के लिए परेशानी और चिंता का विषय लगातार बना रहा है। एक धनी परिवार का बेटा होने के कारण अपनी किशोरावस्था में संजय ने आवश्यकता से अधिक शैतानियां कीं। उसका अपना एक दल था, जो घोड़े की सवारी के लिए खूब प्रसिद्ध था।

मोहम्मद यूनुस का बेटा आदिल शहरयार, एक प्रसिद्ध साहित्यकार का बेटा, और उच्चवर्ग के एक परिवार का एक अन्य पुत्र उसके दल में थे। वह और उसके शैतान दोस्त चौबीसों घंटे प्रधानमन्त्री निवास के भीतर-बाहर घुसते-निकलते रहते थे। वे सड़क पर से अथवा स्टैंड से कोई भी कार उठा लेते और भयानक गति से पूरे नगर में उसे चलाते घूमते। ठीक आधी रात के समय भी वे अपनी इन कार-पार्टियों से लौटते या उनके लिए निकल पड़ते। यह सब गम्भीरता से नहीं लिया गया। इसे बस बच्चों की शरारत माना गया।

इन्दिरा और फीरोज़गांधी का दूसरा पुत्र संजय एक टूटे हुए घर की एक ठेठ उत्पत्ति है। वह प्रतिशोधी है, ढीठ है, बदमिजाज़ है और क़ानून एवं अनुशासन के प्रति उसमें बहुत ही कम इज़्ज़त है। इसके मुकाबले उसका बड़ा भाई राजीव अधिक परिपक्व और गम्भीर है। नाना श्री जवाहरलाल नेहरू ने इन्हें पूरा स्नेह दिया, लेकिन अपने दौहित्रों की देखरेख का अवसर उन्हें नहीं मिला।

बचपन से ही संजय अनुशासन के प्रति विद्रोह करता प्रतीत होता था। लेकिन आस-पास के लोग कहा करते थे कि वह जानदार बच्चा है। दून स्कूल की गड़बड़ी के बाद परिवार के एक मित्र, जयन्ती शिपिंग ख्याति के डा० धर्मातेजा के माध्यम से संजय को आटोमोबाइल यांत्रिकी का प्रशिक्षण लेने के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। क्रीवे की रॉल्सरायस फैक्टरी में उसे प्रवेश मिला, लेकिन बिना प्रशिक्षण पूरा किए ही वह वापस लौट आया। जब वह इंग्लैंड में था तो एक सड़क पर बहुत तेज़ मोटर चलाते हुए एक दुर्घटना में वह फंस गया था। कार का नियंत्रण उसके हाथ से निकल गया था और कार ने दो बार पलटी खाई थी। भारत के उच्चायुक्त ने अपना प्रभाव इस्तेमाल करके इस घटना को दबाया था।

जब बेटे ने कार बनाने का एक कारखाना स्थापित करने की बात की तो मां ने सचमुच ही चैन की सांस ली। अपने खाली दिनों में वह दक्षिण दिल्ली की एक बस्ती में स्कूटर ठीक करने वाली एक दुकान पर जाया करता था। वह वहां बैठता, मिस्त्रियों को काम करते हुए देखता और उनकी भद्दी मज़ाकों में हिस्सा लेता। इस दुकान के मालिक, बस्ती के एक दादा अर्जुनदास से उसकी दोस्ती हो गई। बाद में अर्जुनदास संजय का एक घनिष्ठ मित्र और विश्वासपात्र बन गया और प्रधानमन्त्री निवास में उसकी इतनी पूछ होने लगी कि वह अपने को श्रीमती गांधी का तीसरा बेटा कहता घूमने लगा। संजय ने कार्यकारी परिषद् का तथा कितनी ही अन्य महत्त्वपूर्ण समितियों का सदस्य बनने में उसकी सहायता की। आपत्काल के दौरान जो अनिष्टकर हलचलें हुईं, उनमें इस अर्जुनदास ने खूब हिस्सा लिया।

अर्जुनदास को रोशनारा बाग क्षेत्र में रुचि पैदा हो गई थी, जहां मोटर गाड़ियों के अनेकों कारखाने हैं। अर्जुनदास की मदद से संजय ने उसी इलाके में अपना निजी कारखाना स्थापित कर लिया। जो लोग उन दिनों संजय को देखते थे, वे कहते थे कि वह एक उत्साही युवक है, जो सुबह ही अपना खाने का डिब्बा लेकर काम पर जाता है और संध्या समय दूसरे कारीगरों की तरह ही घर वापस लौटता है। जामा मस्जिद के कबाड़ियों और नगर की मोटर-गराजों से इकट्ठे किए गये कार के हिस्सों को ठोक-पीटकर संजय के साथी स्टील की फर्दों से एक छोटी जनता कार का प्रारूप तैयार करने में जुटे रहते। इसके बाद अपनी महत्त्वाकांक्षी योजना में वह पूरी तरह डूबा रहा; और इस तरह उसके सपने ने आकार लेना शुरू किया।

1969 के आस-पास अपनी योजनाओं के बारे में उसने लोगों से बताना शुरू किया। आस-पास के लोग उसकी बातें सुनते थे। प्रधानमंत्री निवास में आने वाले उसकी आकांक्षाओं से परिचित हो गए। इनमें उद्योगपति भी थे जिन्होंने प्रधानमंत्री के बेटे की योजनाओं में गहरी रुचि दिखाई। उन्होंने सलाह एव

वित्तीय सहायता तक देने का प्रस्ताव रखा। संजय को लगा कि अब उसका सपना पूरा हो जाएगा। जैसे ही वह आगे बढ़ा उसने देखा कि उत्सुक मित्रों ने उसके मार्ग को प्रशस्त कर दिया है। इन मित्रों ने प्रधानमन्त्री निवास के भीतर पहुंचने के लिए एक कुंजी उसके रूप में खोज निकाली थी।

छोटी कार अथवा जनता की कार, जो नाम इसे इंदिरा की समाजवादी सरकार के दावे के अनुकूल ही इसे दिया गया था, मूलत: छठे दशक के मध्य में केन्द्रीय मंत्री श्री मनुभाई शाह के दिमाग की कल्पना थी। इसे सार्वजनिक क्षेत्र की योजना बनना था। कितनी ही कम्पनियां इसे उठाने को तैयार थीं, जिनमें पहली थी : हिन्दुस्तान मशीन टूल्स। रक्षामन्त्री श्रीकृष्ण मेनन चाहते थे कि यह रक्षा-उत्पादन की एक योजना बने। बाद में अंतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के कार-निर्माता जैसे कि तोयोता, वाल्क्स-वेगन, रिनाल्ट तथा मॉरिस ने भी सहभाग का प्रस्ताव रखा। भारत सरकार ने आई० सी० एस० श्री एल० के० झा के अधीन एक समिति नियुक्त की, जिसे यह पता लगाने के लिए कहा गया कि क्या ऐसी कार की ज़रूरत है और क्या इसका थोक उत्पादन किया जा सकता है। समिति ने तय किया कि छोटी कार, जिसकी कीमत लगभग 7000 रुपये तक होने की आशा थी, सम्भाव्य भी थी और लोगों को इसकी ज़रूरत भी थी।

लेकिन यह योजना वहीं की वहीं पड़ी रह गई। इसे 1969 में उस समय पुनर्जीवित किया गया, जब संजय गांधी रॉल्स रॉयस में तीन साल प्रशिक्षण पाकर घर लौटा। नवम्बर 1970 में उद्योग मन्त्रालय ने, जिसके तत्कालीन मन्त्री श्री दिनेशसिंह थे, एक अनुमति-पत्र उसे प्रदान कर दिया। इसे पूरी तरह एक घरेलू उत्पादन होना था। 4 जून 1971 को संजय गांधी ने भारत की पहली छोटी कार के निर्माण के लिए मारुति लिमिटेड प्रारम्भ कर दी।

कार को सड़क के किनारे के छोटे-से कारखाने में तो बनाया नहीं जा सकता। इसके लिए एक बड़े भूखण्ड पर बनी एक फैक्टरी और उससे भी बड़े वित्तीय साधन चाहिए। इस संदर्भ में हरियाणा के तत्कालीन मुख्यमंत्री बंसीलाल ने मंच पर प्रवेश किया और उनके प्रवेश के साथ ही शुरू हो गया, एक व्यक्ति के लाभ के लिए भ्रष्टाचार और सार्वजनिक सम्पत्ति एवं अधिकारों के दुरुपयोग का एक अविश्वसनीय सिलसिला। बहुतों का विश्वास है कि मारुति उस आपातस्थिति का अग्रदूत थी, जिसने सभी लोकतंत्रीय परम्पराओं का गला घोंट दिया और एक आस्थावान् राष्ट्र को गुलाम तक बना डालने तथा व्यापार के क्षेत्र में संजय की निरंकुश साहसिकताओं एवं उनके भयानक परिणामों पर पर्दा डालने की कोशिश की।

मारुति का जीवन झूठ और गैरकानूनी कार्यवाहियों से शुरू हुआ। फर्म के संस्था-ज्ञापन-पत्र की एक धारा के अनुसार निदेशक वही व्यक्ति हो सकता था जो

दस रुपये मूल्य के कम से कम सौ हिस्से खरीदे। संजय ने सिर्फ दस हिस्से ही खरीदे थे। कम्पनी बनने के कुछ सप्ताह के भीतर ही 17 जुलाई 1971 को निदेशकों ने तय किया कि निदेशक बनने के लिए किसी भी हिस्से का मालिक होना जरूरी नहीं है। संजय गांधी, जिसने 1969-70 में अपनी आय 748 रुपये घोषित की थी, 100 रुपये लगाकर मारुति का प्रवन्ध-निदेशक बन गया। कुछ महीने पहले 11 नवम्बर 1970 को संजय ने एक पारिवारिक फर्म, मारुति टेक्निकल सर्विसेज़ (प्राइवेट) लिमिटेड के नाम से शुरू की थी। इसकी 2.15 लाख की प्रदत्त पूंजी का आधे से अधिक भाग संजय का था और शेष उसके भाई राजीव और उसके परिवार का।

बंसीलाल ने फैक्टरी के लिए ज़मीन दिलाने का वचन दिया था। उसने डिप्टी कमिश्नर, गुड़गांवा के माध्यम से ज़िले के कुछ गांवों को एक नोटिस जारी कराया। हरियाणा राज्य के सबसे उपजाऊ क्षेत्रों में से एक, इस क्षेत्र को इसलिए चुना गया था, क्योंकि यही दिल्ली के निकट था और बढ़िया सड़कों से नगर से जुड़ा था। जो गांव इस लपेट में आए, वे थे—महालदा, धुंदेरा, खेतरपुर। गांव वालों ने अपने निकाल बाहर किए जाने के विरुद्ध कानून से सुरक्षा चाही, लेकिन कोई भी राहत पाने में विफल रहे। लगभग 445 एकड़ ज़मीन ले ली गई और 10000 रुपये प्रति एकड़ के हिसाब से मारुति को दे दी गई, जबकि बराबर की ज़मीन बाद में 35000 रुपये प्रति एकड़ के हिसाब से बेची गई।

मारुति ने हरियाणा सरकार को 1975 तक उतनी भी राशि का भुगतान नहीं किया था। कम्पनी के वार्षिक विवरण के अनुसार भूमि के मद में 33 लाख रुपये अभी बकाया थे। बंसीलाल ने संजय की मारुति के लिए सार्वजनिक धन की इतनी बड़ी राशि लुटा दी थी। एक दूसरी गलत बात यह की गई कि ज़मीन सुरक्षा प्रतिष्ठानों तथा शस्त्रों के एक भण्डार के समीप दी गई थी, जबकि सैनिक कानूनों के अनुसार किसी सुरक्षा प्रतिष्ठान के 1000 मीटर के भीतर कोई नागरिक निर्माण खड़ा नहीं किया जा सकता। जब इस मुद्दे को लेकर विरोधी दलों ने संसद् में शोर मचाया तो सुरक्षा मन्त्रालय ने शस्त्रास्त्र भण्डार के एक हिस्से को वहां से दूर हटा दिया। इस प्रकार मारुति के विस्तृत भवनों का निर्माण-कार्य शुरू हुआ।

भवन के लिए मारुति को इस्पात और सीमेंट के कोटे स्वीकृत किए गए। उन दिनों इन चीज़ों की बहुत कमी थी और इनका वितरण नियन्त्रित था। आम आदमियों को अपने घर बनाने के लिए कुछ टन सीमेंट और इस्पात प्राप्त करने के लिए हफ्तों और महीनों इन्तज़ार करनी पड़ती थी। लेकिन संजय की मारुति को यह सब बहुत बड़ी मात्रा में मिल गया; इतना कि भवन का निर्माण पूरा होने के बाद भी काफी-कुछ बच गया। प्रधानमन्त्री के बेटे को यह नहीं सूझा कि औचित्य की मांग है कि बाकी बचा सामान वह सम्बन्धित अधिकारियों को लौटा दे।

अधिकारियों ने भी यह जांच करने की कोशिश नहीं की कि कितने की ज़रूरत थी और दिए गए कोटे में से कितना इस्तेमाल हुआ है। बचा हुआ इस्पात और सीमेंट दिल्ली के बाज़ारों में पहुंच गया, जहां वह ऊंची कीमत पर बिका और इस प्रकार मारुति और उसके निदेशकों को 25 लाख रुपये का लाभ हुआ।

इस इमारत के निर्माण में भवन-निर्माण एवं नागरिक एवं देहाती योजना से सम्बन्धित कितने ही नियमों को तोड़ा गया। इस निर्माण ने भारतीय वायुसेना की एक निकटस्थ हवाई पट्टी की सुरक्षा को भी खतरा पैदा कर दिया। लेकिन किसी ने इन उल्लंघनों को चुनौती नहीं दी।

संजय को उसकी फैक्टरी के लिए दी गई 445 एकड़ ज़मीन, उसकी महत्त्वाकांक्षी योजनाओं की आवश्यकता से भी बहुत ज्यादा थी। लगभग 200 एकड़ भूमि फालतू मानी गई। भूमि से उन किसानों को उखाड़ा गया था जो पीढ़ियों से इसे जोतते रहे थे। यही भूमि मारुति के प्रबन्धकों के द्वारा अब फिर हल के नीचे लाई गई और हर वर्ष पांच लाख रुपये की फसल इस ज़मीन ने दी। लेकिन संजय या मारुति ने इस लाभ को अपनी किताबों में नहीं दिखाया।

1972 में संजय ने घोषणा की थी कि मारुति फैक्टरी 1973 में 10000 कारें बनाकर दे देगी। उसने कारों के विक्रय के लिए विक्रेताओं से प्रार्थना-पत्र मांग लिए। हर प्रार्थी को फर्म में तीन लाख रुपए जमा करने थे। इस प्रकार संजय ने 2.4 करोड़ रुपये इकट्ठे किए। उसने वचन दिया था कि कारों के दिए जाने तक भावी विक्रेताओं को, जमा किए उनके धन पर 10.5 प्रतिशत की दर से ब्याज दिया जाएगा। लेकिन उन्हें न कार मिली, न ब्याज और न ही मूलधन। उड़ीसा के एक व्यापारी ने अपने धन पर ब्याज मांगा तो उसे मीसा के अधीन गिरफ्तार कर लिया गया।

संसद में विरोधी दलों के सदस्य चक्कर में थे कि कैसे बिना व्यापारिक अनुभव के सिर्फ 100 रुपये की लागत से संजय एक फर्म का प्रबन्ध-निदेशक तो बन ही गया था, उसने करोड़ों की कीमत का एक औद्योगिक साम्राज्य भी निर्मित कर लिया था। वे उलटे-टेढ़े सवाल पूछ रहे थे। प्रश्नों के उत्तर में कानून मन्त्री श्री एच० आर० गोखले ने यह स्वीकार किया कि कम्पनी के 1973-74 के चिट्ठे में व्यापारियों द्वारा 21891042 रुपये की जमा दिखाई गई है। 28 सितम्बर 1974 को मारुति की प्रदत्त पूंजी 18460700 रुपये थी। 31 मार्च 1974 को कम्पनी की कुल स्थिर सम्पत्ति का मूल्य 44800553 रुपये आंका गया था। मारुति के प्रमुख हिस्सेदारों में थीं, दरभंगा मार्केटिंग कम्पनी, उत्तरप्रदेश ट्रेडिंग कम्पनी, सरन ट्रेडिंग कम्पनी तथा चम्पारन ट्रेडिंग कम्पनी, जो सभी करोड़पति व्यापारिक घरानों से सम्बन्धित थीं। यह भी रोचक है कि अनधिक बड़े हिस्सेदारों में कितने ही मिश्र और झा थे, जो स्वर्गीय श्री ललितनारायण मिश्र और उनकी पत्नी के

रिश्तेदार थे। बाद में बताया गया कि उनमें से अनेकों को पता भी नहीं था कि उनके नाम पर हिस्से हैं। शायद श्री ललितनारायण मिश्र ने उनके नाम से हिस्से खरीद लिए थे और प्रमाणपत्र अपने पास रख लिए थे।

विरोधी पक्ष ने कब्र को गहरा खोदा। उन्होंने पूछा कि मारुति के हिस्सेदारों में कितनों के विरुद्ध आर्थिक अपराधों के मामले चल रहे हैं। सूचना में बताया गया कि ऐसे आठ हिस्सेदार हैं। इनमें चार के विरुद्ध सी० बी० आई० की तहकीकात चल रही है और शेष चार के विरुद्ध प्रवर्तन निदेशालय (डायरेक्टोरेट आफ एनफोर्समेंट) के मामले सक्रिय हैं। एक तस्कर द्वारा नियन्त्रित कही जाने वाली दो कम्पनियों के मारुति में बहुत ज़्यादा हिस्से थे।

फरवरी 1974 में संजय ने एक और फर्म मारुति हैवी वेहिकेल्स (प्राइवेट) लिमिटेड स्थापित की। इसकी अपनी किताबों के अनुसार मारुति हैवी वेहिकेल्स का मशीनी सामान 12,231 रुपये की कीमत का था। यह सड़क कूटने के इंजन जैसी भारी मशीनें बनाता था। कम्पनी के सबसे ताज़े चिट्ठे में 913562 रुपये का तैयार माल और 680281 रुपये का आधा तैयार माल दिखाया गया है। अर्थात् संजय लगभग 12 हज़ार की कीमत के मशीनी औज़ारों से 16 लाख के मूल्य का उत्पादन प्रस्तुत करने में सफल हुआ था।

सच्चाई यह थी कि सड़क के इंजन और उनके हिस्से दूसरी फर्मों से खरीदे जाते थे और मारुति हैवी वेहिकेल्स उन्हें भारी मुनाफे पर बेचता था। बताया जाता है कि इस फर्म ने परकिन्स और फोर्ड के 350 इंजन दो हज़ार रुपये प्रति इंजन की दर से अमरीका से टूट-फूट में खरीदे। मारुति ने उनमें भारत के बने गेज़ तथा स्थानीय पहिए लगाए, उन पर ताज़ी पालिश की और सड़क के इन इंजनों को 140000 प्रति इंजन के हिसाब से बेच दिया। आमतौर से सरकारी संस्थानों एवं संगठनों जैसे कि सीमा सड़क संगठन तथा हरियाणा, पंजाब और उत्तरप्रदेश की सरकारों ने इन्हें खरीदा। सीमा सड़क संगठन, सीमा के ऊबड़-खाबड़ क्षेत्र में इनका इस्तेमाल नहीं कर सका, और इनमें से अधिकतर बेकार पड़े रहे।

मारुति हैवी वेहिकेल्स ने अमेरिका के एक निर्मातासंघ इन्टरनेशनल हार्वेस्टर्स के साथ भारत में फसल की कटाई की मशीनें बेचने से सम्बन्धित एक समझौता किया। इससे पहले केन्द्रीय सरकार ने फसल-कटाई की मशीनें पोलैंड के सहयोग से सार्वजनिक क्षेत्र में बनाने की एक योजना तैयार की थी, लेकिन मारुति के हित के लिए इस योजना को खत्म कर दिया गया।

इन्टरनेशनल हारवेस्टर्स भारी ट्रक भी बेचते थे। संजय ने बंसीलाल को इन ट्रकों का प्रस्तुत खरीदार पाया। बंसीलाल ने सुरक्षा मन्त्रालय को निर्देश दिया कि ट्रक मारुति से खरीदे जाएं। 1975 में मारुति ने तेल और प्राकृतिक गैस निगम से ट्रक पर चढ़े आठ सचल क्रेनों का आदेश प्राप्त कर लिया। 'मारुति ने अपने

प्रतिद्वन्द्वियों की अपेक्षा ज़्यादा कीमत लिखी थी। दिल्ली की एक फर्म ने 1.58 करोड़ मूल्य दिया था और अमरीकी क्रेनें देने का प्रस्ताव किया था। मारुति ने पश्चिम जर्मनी की क्रेनों के लिए 1.76 करोड़ रुपये लिखे थे। लेकिन तेलमन्त्री श्री केशवदेव मालवीय के कारण मारुति को ही यह ठेका दिया गया।

जनता पार्टी के संसत्सदस्य श्री सुब्रह्मण्यम् स्वामी ने संजय द्वारा 1976 में तेल और प्राकृतिक गैस निगम के साथ किए गए ट्रकों के एक और सौदे का हवाला दिया है। टेंडर मांगे गए थे और सबसे कम टेंडर 24 ट्रकों के लिए 25 लाख रुपये था। संजय ने 12 ट्रक इंटरनेशनल हार्वेस्टर्स से और 12 पश्चिमी जर्मनी से आयात किए और सबके सब 50 लाख रुपये में तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम को बेच दिए।

मारुति ने एक दूसरा लाभप्रद काम बसों की बॉडी निर्मित करने का किया। इस बार भी राज्यों की सरकारें और उनके सड़क परिवहन विभाग उसके खरीदार बने। मध्यप्रदेश सरकार के पास अपना एक बढ़िया कारखाना है, जो बसों की बॉडियां बना सकता है। लेकिन यह तर्क देकर कि वह राज्य की तात्कालिक आवश्यकताएं पूरी नहीं कर सकता, मारुति को 100 बसों की बॉडियां बनाने का ठेका दे दिया गया। सरकारी कारखाने में प्रति बस 27813 रुपये की लागत आती, लेकिन मारुति को प्रति बस 39000 रुपये दिए गए।

ट्राम्बे तथा फूलपुर के खाद कारखाने के विकास का ठेका संजय के निर्देश पर एक इतालवी फर्म स्नाम प्रागेती को दिया गया था। यह निर्देश प्रधानमन्त्री के सचिवालय के माध्यम से खाद्य निगम तक पहुंचाया गया था।

संजय के पास पाइपरक्लब एयर क्राफ्ट की एजेन्सी भी थी और उसने कुछ राज्य सरकारों तथा सार्वजनिक संस्थानों को थोड़े-से जहाज़ लगभग बेच भी दिए थे। लेकिन, जब तक भारत सरकार इनके आयात की अनुमति दे पाए, चुनाव आ गए और सरकार बदल गई और आयात के लाइसेन्स रोक लिए गए।

11 जनवरी, 1977 को 'न्यूयार्क टाइम्स' को दी एक भेंट में संजय ने स्वयं प्रकट किया था कि उसने अमरीका की पाइपर एयर क्राफ्ट फर्म के साथ भारत में उनके एजेन्ट का काम करने के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। उसने कहा था कि विमान खरीदने के बारे में विभिन्न राज्य सरकारों तथा निजी संगठनों से बातचीत वह कर चुका है। जब इन्होंने धन की कमी की बात की तो संजय ने उनके लिए बैंक से ऋण दिलाने का प्रस्ताव रखा। एक एजेन्ट को आम तौर से एक विमान की बिक्री पर 0.5 से 1 प्रतिशत के बीच कमीशन मिलता है। लेकिन पाइपर वालों ने संजय को 25 प्रतिशत देने की पेशकश की थी।

इस बीच, क्योंकि प्रत्याशित कार कहीं नज़र नहीं आ रही थी, इसलिए मारुति भारी हानि में चल रही थी। फिर भी अजीब बात यह कि न तो उसके शेयर की कीमत गिरी थी, न ही मारुति के शेयरों के खरीदारों में कोई कमी आई थी। इसकी स्थापना के पहले साल के भीतर लोगों ने 25 लाख की कीमत के मारुति शेयर खरीदे, दूसरे वर्ष 68 लाख के शेयर बिके और तीसरे वर्ष 85 लाख के। खरीदार प्रमुखतः औद्योगिक घराने थे, जिनके मालिक चतुर व्यापारी थे। उन्होंने मारुति में अपना पैसा डुबाया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इस तरह वे संजय के निकट आ सकेंगे और सरकार की कृपा के माध्यम से दूसरे क्षेत्रों में कई गुना कमा सकेंगे। इसके सिवाय इस प्रकार वे प्रधानमन्त्री निवास की कुंजी भी पा जाते थे।

संजय ने भी अपने साथियों को निराश नहीं किया। आयात लाइसेन्सों के रूप में निर्यातकों को जो प्रोत्साहन दिए जाते हैं, वे कानून के अनुसार हस्तान्तरणीय नहीं होते। मारुति के कुछ हिस्सेदारों की मदद करने के लिए इस नियम को अस्थाई रूप से स्थगित कर दिया गया। कुछ जौहरियों और हीरा-व्यापारियों ने अपने लाइसेन्स दूसरों को हस्तान्तरित करके सोना बटोर लिया। सौदे पूरे हो चुकने के तीन दिन बाद ही कानून को संशोधित करके उसे मूल रूप में ले आया गया।

न सिर्फ व्यक्तिगत उद्योगपति एवं व्यापारी, वल्कि कुछ बैंक संस्थान भी संजय को ऋण देने और उसे खुश करने के लिए आगे आए। पंजाब नेशनल बैंक ने प्रचलित से कम दर पर मारुति को ऋण दिए। सेन्ट्रल बैंक ने भी मारुति के लिए धन जुटाया। इन दो बैंकों से कुल लगभग दो करोड़ रुपया कर्ज़ के रूप में दिया गया।

यह बात संजय के सामने अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थी कि वह और उसके मिस्त्री सिर्फ अपने बल पर कार नहीं बना सकते। उसने एक जर्मन इंजीनियर को नौकर रखा। लेकिन वह भी मामले में कोई सुधार नहीं ला सका। उसने, अंग्रेज़ी भी और जर्मन भी, विभिन्न विदेशी नमूनों के आधार पर काम चलाने की कोशिश की। जब कार को परीक्षण के लिए भेजा गया तो उसका इंजन बहुत जल्द गर्म हो उठा। एक दूसरे परीक्षण में उसकी टीन की बॉडी पलट गई। अहमद नगर के परीक्षण कारखाने में कार में कितने ही छोटे और बड़े दोष पाए गए। इन विफलताओं का कारण साफ था। संजय को औपचारिक योग्यताओं और योग्य व्यक्तियों से विरक्ति थी। वह अयोग्य मिस्त्रियों को नौकरी देना ही पसन्द करता था और ये लोग ऐसे काम के बीच पैदा होने वाली समस्याओं को हल कर नहीं सकते थे।

इस अवधि के दौरान सरकार के एक उपसचिव को अचानक एक फाइल मिल

गई, जिससे इस रहस्य का पता चला कि सजय की मारुति को दिए गए कुछ लाइसेंस अन्य लोगों को बेच दिए गये थे और हस्तांतरित कर दिए गए थे। वह इस तथ्य को उचित अधिकारियों की नज़रों में ले आया। उसने देखा कि मारुति के खिलाफ तो कोई कार्यवाही नहीं हुई, उल्टे उसीके पीछे सी० बी० आई० की जांच आरम्भ कर दी गई। फलतः उसने सबक सीख लिया और अपना मुंह बन्द कर लिया।

1975 तक संजय अपने व्यापारिक प्रयास के लिए लगभग छः करोड़ रुपये इकट्ठे कर चुका था। लेकिन कार बनाने की एक पूरी फैक्टरी को 70 से 80 करोड़ के बीच रुपये चाहिए। मारुति ने जो बीज बोए थे, वे अब फलने लगे थे। स्थिति हाथ से निकलती जा रही थी। ठीक इसी क्षण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति जगमोहन लाल सिन्हा ने लोकसभा से श्रीमती इंदिरा गांधी को स्थानच्युत करते हुए अपना फैसला दे दिया। संजय एक पल के लिए मारुति को भूल गया और पूरी तरह राजनीति में डूब गया। एक वफादार और स्नेहशील बेटे की तरह वह अपनी मां की बराबर में खड़ा हो गया। प्रधानमंत्री पद से चिपके रहने और देश में आपातस्थिति की घोषणा कर देने के फैसले का उसने समर्थन किया। उसने अपनी बांहों को चढ़ा लिया और पक्का हो गया कि हर कीमत पर मां को अपने स्थान पर डटे रहना होगा। उसने साफ देखा कि आपातस्थिति मारुति के द्वारा प्रस्तुत समस्याओं के हल में उसकी सहायक सिद्ध होगी।

11

संजय का करिश्मा

श्रीमती इन्दिरा गांधी के पतन और कांग्रेस दल के बिखर जाने में किसी एक कारण ने इतना योगदान नहीं दिया, जितना संजय ने। और इसी तथ्य से बेटे के प्रति मां के अन्धे प्रेम की वह दुःखद कहानी लटकी है—उस बेटे के प्रेम की, जो मां की आंखों का तारा था, और कभी कोई गलत काम नहीं कर सकता था; लेकिन दूसरी ओर जिसने हर गलत काम किया और प्रेम से अन्धी मां कुछ भी नहीं देख सकी।

हाल के इतिहास में केवल एक उदाहरण है, जिसमें एक होनहार जीवन ने मौज में आकर प्रेम की वेदी पर आत्म-बलिदान कर दिया था। राजा एडवर्ड अष्टम ने एक शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की गद्दी को एक स्त्री के प्रेम के लिए त्याग दिया था। लेकिन वैसा उसने जानबूझ कर आंखें खोले हुए और अपने कार्य के परिणामों को पूरी तरह तोल लेने के बाद किया था। इस पर उसने कभी दुःख प्रकट नहीं किया।

श्रीमती गांधी ने एक विजयपूर्ण राजनीतिक जीवन को, जिसे विश्व की प्रशंसा प्राप्त हुई थी, लाइलाज रूप में क्षति पहुंचा दी और उसे खत्म कर डाला। ऐसा उन्होंने उस बेटे के लिए किया, जिससे वे बहुत अधिक प्रेम करती थीं, यद्यपि समझदारी के साथ नहीं। तुलना यहीं समाप्त हो जाती है, क्योंकि यह कहना गलत होगा कि उन्होंने जानबूझ कर और परिणाम को पूरी तरह तोल कर ऐसा किया था। एक करोड़ की कीमत का प्रश्न है : श्रीमती गांधी जैसी विचक्षण तथा सांसारिक बुद्धि से सम्पन्न स्त्री, अपने प्यारे बेटे की भयानक रूप से तेज़ प्रगति को क्यों साफ-साफ नहीं देख सकी। वह दो घोड़ों पर सवार था। एक ओर तो सन्दिग्ध तरीकों से अपने को पलक झपकते एक उद्योगपति बना लिया था और दूसरी ओर वह इस विशाल देश का एक उग्र राजनीतिज्ञ एवं संविधानेतर शासक बन बैठा था। देश के विशाल जनसम्पर्क माध्यमों पर सरकार के नियन्त्रण को धन्यवाद कि अपनी इस दुहरी भूमिका में उसने ख्याति पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया था।

ऐसा कैसे हुआ कि श्रीमती गांधी यह नहीं समझ सकीं कि संजय जितना हज़म कर सकता है, उससे ज़्यादा निगल गया है? कि अपने फूहड़, अकुशल, निरंकुश तरीकों से वह अपने को खतरनाक रूप में अलोकप्रिय बना लेगा और मां

को अकथनीय क्षति पहुंचा देगा ? एक अतिरिक्त प्रेम करने वाली मां भी क्या अपनी या स्वयं बेटे की खातिर अपने बिगड़े हुए बेटे को थप्पड़ नहीं लगा सकती थी और उसे स्वयं उससे नहीं बचा सकती थी ? क्या मां का अतिरिक्त प्रेम ही इस उलझे हुए प्रश्न का एकमात्र उत्तर है ? शायद सिर्फ फ्रायड ही इसका सन्तोषजनक जवाब दे सकता है। इसके बहुत सारे प्रमाण हैं कि श्रीमती गांधी अपने बेटे के गलत व्यापारिक तरीकों और राजनीतिक लटकों से पूरी तरह परिचित थीं। उनके मित्रों और शुभचिन्तकों ने उन्हें बार-बार इस बारे में चेतावनी दी थी।

वस्तुत:, उनके शुभचिन्तक जब, राजनीति एवं व्यापार में उनके बेटे की अन्धेरगर्दियों के बारे में उन्हें होशियार करते थे, तो वे नाराज़ हो उठती थीं। लम्बे समय से श्रीमती गांधी के विश्वासपात्र और निजी सचिव श्री पी० एन० हक्सर ने जब संजय के मारुति घोटाले के बारे में उन्हें चेतावनी दी तो वे उनसे बिगड़ गईं। उनके शुभचिन्तक श्री पी० एन० कौल ने, जो अमरीका में राजदूत थे और आपातस्थिति के दौरान विदेशों में उनका बचाव करते रहे थे, आम चुनाव के अवसर पर उन्हें सलाह दी कि संजय को चुनाव-संघर्ष से दूर रखा जाए क्योंकि वह अब ऋण बन गया है। श्री कौल को एक क्रोधपूर्ण खिन्न चुप्पी ही जवाब में मिली थी। लम्बे समय की जांची हुई मित्र श्रीमती सुभद्रा जोशी ने जिस क्षण प्रधान मन्त्री को चेतावनी दी कि गन्दी बस्तियों को उठाने से और परिवार-नियोजन से सम्बन्धित संजय के अन्धाधुन्ध तरीके कांग्रेस को भारी हानि पहुंचा रहे हैं उसी क्षण से वे श्रीमती गांधी की दुश्मन बन गईं। श्रीमती गांधी चिल्ला पड़ीं, "लोग करते कुछ नहीं और जब हम कुछ करते हैं तो विरोध करते हैं और नेक सलाह देते हैं।" इसके ठीक बाद श्रीमती सुभद्रा जोशी के विरुद्ध द्वेषपूर्ण प्रचार प्रारम्भ कर दिया गया। उन पर आरोप लगाया गया कि वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्त्ताओं को बचाने की एवज़ में रुपये ले रही हैं। यह एक बेतुका आरोप था, क्योंकि श्रीमती जोशी धर्मनिरपेक्षता की उग्र प्रचारक और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की घोर शत्रु के रूप में सुप्रसिद्ध रही हैं। श्रीमती गांधी ने उनसे यह भी कहा कि उनके विरुद्ध धन इकट्ठा करने की शिकायतें भी हैं।

एक और दृष्टांत है। एक स्वतन्त्रता सेनानी श्रीमती गांधी से मिला और उसने संजय के बारे में बात की। सुनकर श्रीमती गांधी उबल पड़ीं कि उनके बेटे की आलोचना करने की लोगों की आदत-सी हो गई है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक संजय का बचाव किया और घोषणा की, "जो संजय पर आक्रमण करते हैं, मुझ पर आक्रमण करते हैं।"

चुनाव अभियान के दौरान जहां भी संजय गया, उसकी अलोकप्रियता इतनी प्रकट थी कि यह आश्चर्यजनक ही है कि श्रीमती गांधी उसे देख पाने में विफल रहीं और उन्होंने चुनावों से अपने बेटे को दूर रखने की, अपने मित्रों की, ठोस

सलाह को ठुकरा दिया। मध्यप्रदेश में विदिशा में संजय ने एक चुनाव सभा के सामने भाषण दिया। अपने भाषण के बीच संजय ने घोषणा की कि जो जनता पार्टी को समर्थन दे रहे हैं वे देशद्रोही हैं। तब नाटकीय ढंग से उसने श्रोताओं से पूछा: आपमें से कितने देशद्रोही हैं? लगभग पूरी सभा ने अपने हाथ उठा दिए। हाथ तब तक नीचे नहीं आए जब तक क्रुद्ध संजय पैर पटकता हुआ सभा से चला नहीं गया।

संजय बड़ा ही कमज़ोर वक्ता है और उसकी सभाओं के संगठनकर्त्ताओं पर यह ज़िम्मेदारी रहती थी कि वे श्रोताओं को इकट्ठा करें और उन्हें अनुशासित एवं चुप रखें। 'समाचार' को संवाददाताओं के लिए भी उन सार्वजनिक सभाओं के काल्पनिक वर्णन करना तथा संजय की वक्तृता के एवं उसके प्रति श्रोताओं के उत्साह के ब्योरे तैयार करना एक उतना ही कठिन काम था। उसकी अयोग्यता इस एक घटना से साफ उभरती है कि मध्यप्रदेश के जंगलों में आदिवासियों के सामने बोलते हुए उसने उन्हें पेड़ लगाने की प्रेरणा दी थी।

कांग्रेस और विरोधी पक्ष के संसद्सदस्य तथा आम जनता के लोग संसद् में और बाहर निरन्तर प्रश्नों की बौछार श्रीमती गांधी पर करते रहते थे। संजय के मनमाने तरीकों और मारुति के घोटालों के बारे में शिकायतें करते हुए और उनकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए आवेदनपत्र एवं पत्र लगातार आते रहते थे। इसलिए यह तर्क कि श्रीमती गांधी अपने बेटे के कारनामों को नहीं जानती थीं, एकदम निस्सार है।

जून 1975 में आपातस्थिति की घोषणा के कुछ वर्ष पहले से ही संजय ने दिल्ली-प्रशासन पर अपनी काली छाया डालनी शुरू कर दी थी। वह अफसरों को आदेश देता था और अपने लंगोटियों के हितों की रक्षा के लिए नागरिक प्रशासन में हस्तक्षेप करता था। जो भी उसके रास्ते में आ जाता अथवा उसे नाराज़ कर देता उसे कठोरतापूर्वक कुचल दिया जाता था। वह प्रतिशोधी, निष्ठुर और न्याय एवं ईमानदार आचरण की बुद्धि से एकदम रहित था। मनमाने अन्याय और बदले का खास उदाहरण है उत्कृष्ट प्रशासक श्री श्रीचरण छाबड़ा का मामला। नई दिल्ली नगर पालिका के अध्यक्ष पद से उन्हें चुटकी बजाते नोच फेंका गया था।

इस पद पर रहते हुए श्री छाबड़ा ने पद्मश्री पाया था और तत्कालान प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी तथा गृहमन्त्री श्री यशवन्तराव चह्वाण समेत सभी लोगों की पूरी प्रशंसा प्राप्त की थी। यह सब उन्हें इसलिए मिला था क्योंकि उन्होंने नागरिक प्रशासन को अतिरिक्त कुशलता से चलाया था। नगर को स्वच्छ और सुन्दर बनाया था तथा नई दिल्ली नगरपालिका का राजस्व बढ़ाने के लिए नये तरीके सोच निकालने के प्रयास किए थे।

झुग्गी-झोपड़ी बस्तियां एक लम्बे समय से एक पेचीदा समस्या बनी हुई थीं

और संघीय प्रदेश के चेहरे पर धब्बा बनी हुई थीं। अन्ततः, दिल्ली प्रशासन ने फैसला लिया कि 1969 के बाद निर्मित कोई झुग्गियां अथवा गैरकानूनी निर्माण रहने नहीं दिए जाएंगे। यह तय किया गया कि ऐसे सभी गैरकानूनी निर्माणों को, आवश्यकता पड़े तो पुलिस की सहायता से भी गिरा दिया जाएगा। उपराज्यपाल श्री ए० एन० झा ने इस बारे में आदेश जारी कर दिए और यह फैसला अपने क्षेत्र में लागू करने के निर्देश नई दिल्ली नगर पालिका को दे दिए।

दक्षिण दिल्ली में एक नगर पालिका बाज़ार का निरीक्षण करते हुए नई दिल्ली नगर पालिका के अध्यक्ष श्री छावड़ा ने देखा कि स्कूटर ठीक करने की एक दुकान ने अपने बरामदे को सड़क की पटरी तक फैलाकर सार्वजनिक भूमि को हथिया लिया है। उन्होंने इस गैरकानूनी निर्माण को गिरा देने के आदेश दे दिए। कुछ दिनों बाद जिस अधिकारी को यह काम सौंपा गया था उसने आकर बताया कि वह आदेश का पालन नहीं कर सकता क्योंकि अर्जुनदास नाम के उस स्कूटर ठीक करने वाले की प्रधानमन्त्री निवास में पहुंच है और उस अनधिकृत निर्माण के विरुद्ध प्रस्तावित कार्यवाही से प्रधानमन्त्री सचिवालय नाराज़ हो उठा है।

श्री छावड़ा अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सके। निश्चय ही प्रधानमन्त्री सचिवालय के पास इस मामूली मामले से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य होने चाहिएं। आखिर यह अर्जुनदास है कौन? लेकिन प्रधानमन्त्री के घरेलू मामलों से उन्हें क्या लेना है! यदि नगर पालिका एक दुकान को पटरी तक फैलने की इजाज़त देगी, तो दूसरे भी वैसा ही करेंगे। इसलिए श्री छावड़ा ने अपने कर्मचारियों को खींचा और हुक्म दिया कि सीधे जाकर आदेश का पालन करो।

उस सन्ध्या को श्री छावड़ा के पास प्रधानमन्त्री के निजी सचिव धवन का टेलीफोन आया। उसने नगरपालिका अध्यक्ष से पूछा कि क्या अर्जुनदास को न छूने सम्बन्धी उसका पहला सन्देश उन्हें मिला था। "लेकिन मैं तो उसे अपनी दुकान सड़क की पटरी तक न फैलाने के सिवाय और कुछ कह नहीं रहा हूं।" श्री छावड़ा ने उत्तर दिया। धवन ने तीखे ढंग से छावड़ा को बताया, "अर्जुनदास संजय साहेब का एक दोस्त है।" और चेतावनी दी कि प्रधानमन्त्री का बेटा नई दिल्ली नगरपालिका अध्यक्ष के रुख से नाराज़ है।

श्री छावड़ा एक बार फिर संजय के रास्ते में आ अटके। दक्षिण दिल्ली के तालकटोरा उद्यान को मज़दूरों की कुछ झुग्गियों ने बदनुमा कर डाला था। झुग्गियों के दो-तीन झुरमुट वहां बन उठे थे, जिनमें 250 परिवार रहते थे। उन्होंने बाग के जंगले को और बाड़ को गिराकर उद्यान के आर-पार रास्ते और पगडंडियां बना ली थीं। बाग के कुछ हिस्सों में सार्वजनिक टट्टियां खड़ी कर ली गई थीं। उपराज्यपाल के आदेशानुसार श्री छावड़ा ने हुक्म दिया कि जंगलों और बाड़ों को अपने स्थान पर फिर से खड़ा कर दिया जाए और बाग को एक

सार्वजनिक सड़क अथवा शौचालय के रूप में इस्तेमाल करने से लोगों को रोका जाए।

छाबड़ा को आश्चर्य हुआ जब अर्जुनदास के नेतृत्व में कुछ राजनीतिज्ञ उनके पास आए और उन्होंने मांग की कि तालकटोरा उद्यान की झुग्गी-झोपड़ी वस्ती को छेड़ा न जाए। अर्जुनदास ने श्री छाबड़ा को सलाह दी, "धीमे चलिए। चुनाव बहुत पास हैं।" छाबड़ा थोड़ा-सा झुके और उन्होंने अपने आदमियों को आदेश दिया कि उद्यान की सीमाओं को तो बन्द कर दो, लेकिन प्रमुख सड़क से झुग्गियों तक के लिए एक दूसरा रास्ता बना दो।

लेकिन जब नगरपालिका के कर्मचारी बाग के चारों ओर के जंगले को ठीक करने के लिए पहुंचे तो उनसे दूर ही रहने के लिए कहा गया। श्री छावड़ा को सूचित किया गया कि प्रधानमन्त्री के घर के लोग छावड़ा की इस अंधेरगर्दी पर बहुत क्रुद्ध हैं। श्री छाबड़ा के अधिकारी ने तालकटोरा उद्यान से खबर दी कि अर्जुनदास और संजय गांधी वहां आए थे और उन्होंने मांग की है कि वर्तमान रास्तों को ज्यों का त्यों खुला रहने दिया जाए। "लेकिन हमने झोपड़ियों तक पहुंचने के लिए नया रास्ता बना दिया है।" श्री छाबड़ा बोले। "नहीं" अधिकारी ने स्पष्ट किया, "वे किसी भी रास्ते को बन्द होने देना नहीं चाहते।" पराजित श्री छाबड़ा कह उठे, "यदि यही उनकी इच्छा है तो ठीक है। भले ही वे उद्यान में आग लगा दें। मैं कुछ कहने वाला कौन हूं!" और श्री छावड़ा ने टेलीफोन रख दिया।

नई दिल्ली नगरपालिका अध्यक्ष के लिए यह एक बुरा आरम्भ था। चुनावों का लाभ उठाकर हर कहीं अनधिकृत मकान बनाए जा रहे थे और अधिकारी विवश भाव से खड़े देख रहे थे। चाणक्यपुरी की शानदार कूटनीतिक बस्ती में एक झुग्गी-झोपड़ी समूह उभर रहा था। नगरपालिका इस प्रयास को आरम्भ में ही खत्म कर देने को उत्सुक थी। उपराज्यपाल का लिखित आदेश मिलने पर कूटनीतिक वस्ती में उभरते इस नये झुग्गी-झोपड़ी समूह को गिराने के लिए श्री छाबड़ा ने अपने आदमी भेजे। लेकिन वे लोग, प्रधानमन्त्री निवास से आया, झोंपड़ियों को न छूने का आदेश लेकर वापिस लौट आए। क्रोधित छाबड़ा ने अपने लोगों को हुक्म दिया, "भले ही भगवान के घर से भी आदेश क्यों न आए, जाओ और सौंपे गए काम को पूरा करो।" उस रात जब श्री छाबड़ा कहीं बाहर भोजन लेकर देर से घर लौटे तो उन्हें प्रधानमन्त्री निवास का एक सन्देश पहले से आया मिला। उतनी देर हो जाने पर भी उन्होंने प्रधानमन्त्री निवास को टेलीफोन मिलाया। धवन ने टेलीफोन उठाया और कहा कि प्रधानमन्त्री फौरन आपसे मिलना चाहती हैं।

जब श्री छाबड़ा श्रीमती गांधी के सामने लाए गए, तो पूरे 25 मिनट तक उन

पर अच्छी झाड़ पड़ी। श्रीमती गांधी के सामने उनके कारनामों की एक पूरी सूची कागज़ पर लिखी रखी थी। श्री छावड़ा को धक्का लगा, पर वे चुपचाप सुनते रहे और तब स्पष्टीकरण के तौर पर उन्होंने कहा कि जो कुछ उन्होंने किया है वह अपना कर्त्तव्य पूरा करते हुए किया है और इसमें उनसे नाराज़ होने का उन्हें कोई कारण नहीं है।

प्रधानमन्त्री ने चिल्लाकर कहा, "क्या आप जानते हैं कि आप भारत की प्रधानमन्त्री से बात कर रहे हैं ?" श्री छावड़ा अटकते हुए बोले, "यदि मैं अकुशल रहा हूं, तो मुझे दुःख है।"

प्रधानमन्त्री ने उन्हें वाक्य पूरा नहीं करने दिया। उन्होंने तुनककर कहा, "मैं जानती हूं तुम बहुत ज़्यादा कुशल हो।" श्रीमती गांधी ने श्री छावड़ा के कारनामों की वह सूची उन्हें पकड़ा दी और कहा कि इन आरोपों के जवाब उनके पास भेज दिए जाएं। इन आरोपों में संयोगवश एक यह था कि श्री छावड़ा ने खोमचेवालों और टैक्सीवालों द्वारा कांग्रेस दल का झंडा लहराए जाने पर कथित एतराज़ किया। श्री छावड़ा ने प्रधानमन्त्री के सामने स्पष्ट किया कि टैक्सी चालकों को कुछ भी करने का आदेश वे नहीं दे सकते थे, क्योंकि वे उनकी कार्य-सीमा के भीतर नहीं आते। हां, दुकानदारों से उन्होंने कहा था कि वे अपनी छतों पर कूड़ा-करकट जमा न करें। श्रीमती गांधी कुछ भी सुनने के लिए तैयार नहीं थीं।

अगले दिन धवन ने टेलीफोन पर श्री छावड़ा से पूछा कि पिछली रात प्रधानमन्त्री द्वारा दिए गए आरोपों के उत्तर उन्होंने अभी तक क्यों नहीं भेजे हैं। श्री छावड़ा ने उत्तर दिया कि वे अपने जवाब उपराज्यपाल को भेज चुके हैं और एक प्रति प्रधानमन्त्री सचिवालय को भेज दी गई है।

इसके एक दिन बाद श्री छावड़ा को निलम्बन आदेश मिल गए। कोई भी, यहां तक कि उनके तात्कालिक अधिकारी उपराज्यपाल श्री ए० एन० झा भी उनके पक्ष में कुछ नहीं कर सके। उनके सेवाकाल के दौरान उनके किसी भी गलत कारनामे को खोज निकालने के लिए जो एक विशेष जांच आयोग बैठाया गया था, वह तीन वर्षों तक सिर पटकता रहा पर उनके विरुद्ध कुछ भी नहीं मिल सका।

यह घटना बहुत पहले 1971 में घटी थी। जैसे ही 25 जून 1975 को आपातस्थिति घोषित हुई, सब पर्दे और हिचकें समाप्त कर दी गईं। कुछ दिनों के भीतर ही संजय एक अतिरिक्त संवैधानिक सत्ता बन बैठा और अपनी निजी चौकड़ी की सहायता से नम्बर 1, सफदरजंग मार्ग से देश पर शासन करने लगा। मन्त्रिमण्डल अब गाड़ी का पांचवां पहिया बन गया। जब मन्त्रिमण्डल की बैठक होती थी तो संजय कमरे के बाहर चहल-कदमी करता रहता था और बैठक पर कड़ी नज़र रखता था।

लोकतन्त्रीय प्रणाली के सामान्य नियमों और प्रतिबन्धों के स्थगित होते ही "काम करा लेने" की संजय की प्रतिभा को पूरा अवसर मिल गया। संजय ने चरम राजनीतिक अधिकार का स्वाद चखा और वह उसे अच्छा लगा। मानव-भक्षी बन गए शेर की तरह उसने राजधानी को और जितनी दूर तक उसका बस चला इस विशाल देश को आतंकित किया। वस्तुतः, चापलूसों और अवसरवादियों से प्रेरित और प्रशंसित यह सिंह-शिशु जैसे उन्मत्त हो उठा और अपनी मां के राजनीतिक जीवन के ताबूत में इसने पहली कील ठोकी और अन्ततः उनके सुनिश्चित सही मार्ग को एक सम्पूर्ण तानाशाही की ओर मोड़ दिया।

संजय भी इस सब पर यकीन नहीं कर पाता था। राजनीति एवं अर्थशास्त्र पर उसकी कच्ची-पक्की चहक को उसके चारों ओर जमे खुशामदी थाम लेते थे। और एक ज़ोरदार नया राजनीतिक दर्शन बनाकर उसे हवा देते थे। नई दिल्ली की एक पत्रिका 'सर्ज' से एक भेंट में उसने साम्यवाद की निन्दा की थी, राष्ट्रीय-करण को गलत बताया था और निजी उद्योग का पक्ष लिया था। उद्योगपतियों और दक्षिणपंथियों ने इस भेंट को आशा का सन्देश माना था और इसकी प्रशंसा की थी। यह वह क्षण था जब वे लोग आपातस्थिति के एकदम बाद आई श्रीमती गांधी की वामपंथी घोषणाओं के वास्तविक हो जाने की आशंका से एकदम डर उठे थे। संजय के चारों ओर वे जमा हो गए। उन्होंने देखा कि संजय अपनी मां के समाजवाद पर एक रोक है और उसे संतुलित कर सकता है। भविष्य उसके हाथों में है। वह भावी नेता और अगला प्रधानमन्त्री है। उन्होंने उसे अपना मसीहा बनाने और जिस योग्य भी वे थे उससे उसका समर्थन करने का निश्चय किया।

संजय चतुर नहीं था। लोगों ने जो कहा उसपर उसने विश्वास किया और उस भूमिका को निभाने का निश्चय किया। मां की शक्तिशाली, स्नेहपूर्ण सुरक्षा ने और उसके अपने अक्खड़ स्वभाव ने यह सुरक्षित कर लिया कि व्यक्तियों और विषयों के बारे में उसके अधकचरे विचारों की सच्चाई कोई उसे न बताए।

प्रधानमन्त्री सचिवालय के एक व्यक्ति ने पुत्र के माध्यम से प्रधानमन्त्री निवास में प्रवेश के इच्छुक चापलूसों, लाइसेन्स चाहने वाले उद्योगपतियों, अवसर-वादियों, राजनीतिज्ञों और महत्त्वाकांक्षी सरकारी अफसरों पर यह दोष लगाया है कि उन्होंने उस युवक का दिमाग खराब कर डाला था। वे उसके चारों ओर उमड़े रहते थे; उसकी महत्त्वाकांक्षाओं को हवा देते थे और अपने साधन उसके चरणों में समर्पित करते थे। वे कहते प्रतीत होते थे, तुम कोई भी चीज मांगो। वह तुम्हें दी जाएगी। तुम प्रधानमन्त्री के बेटे हो। पूरा देश तुम्हारे इशारे पर चलता है।" श्री के० के० बिड़ला नियमित रूप से हर सुबह संजय के दरबार में हाज़िर होते थे और उसकी योजनाओं में मदद का प्रस्ताव रखते थे। सर्वश्री

रौनक सिंह, सागर सूरी, कुलदीप नारंग और अन्य उद्योगपति एवं व्यापारी भी यही करते थे। मुख्यमंत्री उसके अनुग्रह की और उसके माध्यम से उसकी मां की कृपा पाने की कोशिश में रहते थे।

भौंचक युवक ने प्रधानमन्त्री के बेटे के रूप में जो काम वह कर सकता था और जो अधिकार और प्रभाव उसे प्राप्त थे उनकी आश्चर्यजनक खोज कर ली थी। इसके बाद उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा और एक धावक की तरह वह अपनी महत्त्वाकांक्षा की ओर लपका चला गया।

श्रीमती गांधी के बेटे के सीधे असीमित सत्ता तक ऊपर उठ जाने ने अनेकों को चकित और स्तब्ध कर डाला। अधिकार के साथ अक्खड़पन, मुगली अन्दाज़ और मनमौजी सनकें आईं, जिन्हें देखकर लोग हैरान हो उठे। उसके अपनी नैतिकता और आरज़ी तरीकों ने कितने ही आत्मावान् अधिकारियों को चौकन्ना कर दिया। लेकिन ऐसे अधिकारी चुटकी बजाते हटा दिए गए। जिन लोगों से उसने पहले काम लिया था और जिन्हें संरक्षण दिया था, उन्हींको टूटी चप्पलों की तरह वह फेंक देता था। ढके-दबे विरोध और क्षोभ ने जन्म लिया। लेकिन स्नेहपूर्ण मां प्रधानमन्त्री ने किसी की नहीं सुनी। नई दिल्ली में सम्वाददाताओं से बोलते हुए उसने कहा था, "कुछ लोग कहते हैं कि वे इन्दिरा का समर्थन करते हैं, लेकिन किसी अन्य (संजय) का नहीं। लेकिन यह बात इन्दिरा को स्वीकार नहीं है।"

संजय अपनी शक्ति को व्यवस्थित ढंग से संगठित करने में जुट गया। उसने मन्त्रालयों में और नौकरशाही के स्तर पर मुख्य पदों पर अपने आदमी लगाए, जो उसके आदेशों का ईमानदारी से पालन करें। थोड़े से लोग जो नियमों के पाबंद थे और उसके या उसके दोस्तों के पक्ष में ज़रा भी इधर या उधर होने को तैयार नहीं थे, उनकी बदली कर दी गई। उनकी उपेक्षा की गई, उन्हें परेशान किया गया अथवा मीसा के अन्तर्गत जेल तक में डाल दिया गया।

संजय ने ज़िद्द की और उसकी मां ने फौरन उसकी बात मानी और संजय हर महत्त्वपूर्ण फाइल को पढ़ने लगा और निर्णय लेने में हिस्सा लेने लगा। अक्सर सरकारी फैसले उसके द्वारा किए जाने लगे। उपसचिव से ऊपर की कोई नियुक्ति उसकी सहमति के बिना नहीं की जाती थी।

सुरक्षा मन्त्रालय में संजय ने देखा कि श्री स्वर्णसिंह पर्याप्त अनुकूल नहीं हैं। इसलिए वह उनकी जगह, उस समय तक हरियाणा के मुख्यमन्त्री और तानाशाह अपने अत्यन्त प्रिय अनुचर मित्र बंसीलाल को ले आया। श्री बंसीलाल सुरक्षा मन्त्री बनकर लाभप्रद सैनिक ठेकों के क्षेत्र में संजय के विविध व्यापारिक हितों की देखभाल करने लगे।

श्री विद्याचरण शुक्ल महत्त्वपूर्ण सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय में रहकर

सार्वजनिक सम्पर्क माध्यमों से उस उठती हुई राजनीतिक प्रतिभा एवं औद्योगिक धुरन्धर को पूरा ज़ोरदार प्रचार देने लगे। युवा कांग्रेस का नेता संजय गांधी अब दूरदर्शन के पर्दे, रेडियो और नियंत्रित प्रेस में सर्वव्याप्त हो गया और उसका नाम राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की ज़बान पर रहने लगा। गृह मन्त्रालय में राज्यमन्त्री ओम मेहता थे, जो उसके हाथों का खिलौना बनने के लिए हर समय तैयार थे। ओम मेहता और वी० सी० शुक्ल दो प्रतिद्वन्द्वी, रखेलों की तरह, संजय की कृपा के लिए एक दूसरे से होड़ करने लगे और ऐसा कोई काम नहीं था जो वे उसके लिए न कर सकते हों।

संजय ने देखा कि गृह सचिव की महत्त्वपूर्ण जगह पर अनुभवी प्रशासक श्री एन० के० मुखर्जी कि अपने विवेक से संचालित होने वाला आदमी हैं। इसलिए वह उस समय तक राजस्थान के मुख्य सचिव और अधिक नमनशील श्री एस० एल० खुराना को उनकी जगह ले आया। जब भारतीय रिज़र्व बैंक के सहायक गवर्नर श्री आर० के० हजारी ने राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा सरकार के ऋण संबंधी नियमों एवं नीतियों का उल्लंघन करके मारुति को मोटे-मोटे ऋण दिए जाने पर एतराज़ किया तो उन्हें बदल दिया गया और उनकी जगह एक आयकर अधिकारी श्री जे० सी० लूथर को ले आया गया। इसी प्रकार भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर श्री एस० जगन्नाथन् की जगह भारतीय जीवन बीमा निगम के अध्यक्ष श्री आर० के० पुरी को नियुक्त किया गया, जिन्हें बैंकों के काम का कोई अनुभव नहीं था।

भारत के स्टेट बैंक के अध्यक्ष श्री आर० के० तलवार ने संजय और उसके मित्रों को पांच करोड़ रुपये का कर्ज़ा मंजूर करने से इंकार कर दिया था और उसे घटाकर एक करोड़ रुपया कर दिया था। उन्हें इस पद पर से हटाकर श्री टी० आर० वरदाचारी को ले आया गया। असल में राष्ट्रीयकृत बैंकों के अध्यक्ष। की सेवा से संबंधित शर्तों को विशेष रूप से सशोधित किया गया। तब संजय श्री तलवार को पदच्युत करा सका।

वित्त मन्त्री श्री सी० सुब्रह्मण्यम् बेबसी के साथ देखते रहे और प्रधानमन्त्री ने बैंकिंग, आयकर, चुंगी, औद्योगिक विकास तथा बैंक ऋण जैसे महत्त्वपूर्ण विभाग उनके कार्यक्षेत्र से लेकर श्री प्रणवकुमार मुखर्जी को दे दिए, जिन्होंने संजय के प्रति अपनी स्वामिभक्ति और दासता की शपथ ली थी। उन्हें राजस्व और बैंकिंग का मन्त्री बनाया गया। जब उद्योग सचिव श्री मन्तोष सोंधी ने मारुति के संबंध में कुछ न्यायसंगत मुद्दे उठाए, तो संजय ने मन्त्री श्री टी० ए० पाई से मांग की कि सोंधी को हटा दिया जाए। जब श्री पाई ने वैसा नहीं किया तो श्री पाई के पारिवारिक भवनों पर आयकर अधिकारियों ने छापे मारे।

संजय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष के एक पद पर श्री एस० आर० मेहता को ले आया। श्री मेहता उन लोगों के घरों और व्यापारिक ठिकानों पर

अकारण छापे डलवाने के लिए चिर प्रस्तुत थे, जिन्होंने संजय को नाराज़ कर रखा था।

इस सब में एक सुविचारित और पूर्वनिर्धारित षड्यंत्र निहित था, जिसे एक भीषण लक्ष्य की पूर्ति के लिए निर्मित किया गया था।

जहां तक दिल्ली के संघीय प्रदेश का सम्बन्ध है यद्यपि उपराज्यपाल श्री किशनचन्द सहज ही झुक जाने वाले थे, फिर भी एकदम निश्चिन्त होने के लिए संजय ने अपने पिछलग्गू नवीन चावला को विशेष सचिव के रूप में उनके दफ्तर में रखवा दिया और इस प्रकार दिल्ली के पूरे प्रशासन को अपनी पक्की और पूरी पकड़ में रखने में संजय समर्थ हो गया।

नई दिल्ली नगर पालिका तो संजय के हाथ चाट ही रही थी। दिल्ली नगर निगम के कमिश्नर श्री बी० आर० टमटा और दिल्ली विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष श्री जगमोहन संजय के हर आदेश का पालन करने के लिए हर समय तैयार थे।

नम्बर 1, सफदरजंग रोड में आर० के० धवन, जो रेलवे में एक मुख्य लिपिक के पद से उठकर प्रधानमन्त्री का विश्वासपात्र और निजी सचिव बन गया था, उसकी अमूल्य ढाल था और उद्योगपतियों, सरकारी अधिकारियों तथा राजनीतिज्ञों के साथ चलने वाले सौदों में मध्यस्थ का काम करता था। इस स्थिति में धवन सम्भवतः चौकड़ी का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति था, क्योंकि संजय और प्रधानमन्त्री दोनों के पास उसकी सीधी पहुंच थी और वह संपर्क का एकमात्र माध्यम तथा प्रधानमन्त्री और संजय से कौन मिलेगा, कौन नहीं मिलेगा इसका निर्णायक था।

जब मिलने वाले, चाहे व्यापारी हों या मंत्री या चोटी के अधिकारी, प्रधान मन्त्री से मिलने आते थे तो वे उन्हें सुझाव देती थीं कि संजय से मिलकर अपनी समस्याओं के बारे में उससे बातचीत कर लें। इस प्रकार मुख्यमन्त्री और प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष, जो सबके सब प्रधानमन्त्री की लय पर नाचने वाले पुतले थे, संजय से मिलने के लिए और अपनी सरकारी और दलीय समस्याओं पर उससे बातचीत करने तथा अपनी कार्यवाहियों और नीतियों पर उसका आशीर्वाद पाने के लिए चिर प्रस्तुत रहते थे।

संजय बड़े सहज भाव से मुख्यमन्त्रियों को पदच्युत कर देता और राज्य सरकारों को उलट देता था। उत्तर प्रदेश में संजय की चौकड़ी ने श्री बहुगुणा को मुख्यमन्त्री पद से हटा दिया था, यद्यपि विधान सभा में उनकी सरकार को स्पष्ट बहुमत प्राप्त था। उड़ीसा में एक समय की श्रीमती गांधी की कृपापात्र श्रीमती नन्दिनी सत्पथी को अपना मुख्यमन्त्री पद खोना पड़ा था, क्योंकि उन्होंने युवराज के सामने सिजदा करने से इंकार कर दिया था। बम्बई में अब

तक प्रदेश कांग्रेस समिति की अपनी सुरक्षित गद्दी से श्री रजनी पटेल को भी इसी अपराध के कारण उतार दिया गया था। पश्चिमी बंगाल में श्री सिद्धार्थ शंकर राय मुख्य मन्त्री पद से लगभग खदेड़ दिए जा चुके थे, क्योंकि वे संजय का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे पर नहीं गए थे और उन्होंने उसके सामने घुटने नहीं टेके थे। उन्हें तो इस नियति से श्री जगजीवनराम द्वारा नाटकीय ढंग से दल छोड़ जाने की घटना ने बचा लिया, क्योंकि इस घटना ने कांग्रेसी नेताओं द्वारा मिलकर चलने की ज़रूरत पैदा कर दी।

उद्योगपति अपनी थैलियां लेकर उसके पास आते थे और कांग्रेस दल के तथा उसके औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रयासों के लिए खुलकर पैसा देते थे। उनके होठों पर स्पष्ट प्रश्न रहता था, "मेरे लिए कोई सेवा ?" सरकारी अधिकारी और समाचार एजेन्सी के मुख्य कर्मचारी तक अपनी गुत्थियां लेकर उसके पास आते थे। वह उन्हें पलभर में सुलझा देता था और वे चैन और निश्चिन्तता की सांस लेते चले जाते थे। उसकी रुचियों और गतिविधियों के आयाम सचमुच ही भौंचक कर देने वाले थे।

श्रीमती गांधी घमंड और प्रशंसा के साथ अपने बेटे के ज्वलन्त उत्थान को देखती थीं। एक ही रात में वह वित्तीय जादूगर, राजनीतिक चमत्कार और अद्भुत प्रशासक बन गया था।

संघीय गृह मन्त्रालय की ओर से राज्य सरकारों को निर्देश भेजे गए थे कि जब संजय उनके राज्यों में पहुंचे तो उसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का स्वागत मिलना चाहिए और मुख्यमंत्री इन निर्देशों का पालन करने में एक-दूसरे से होड़ करते थे। हवाई अड्डे से नगर तक के संजय के मार्ग के दोनों ओर किराये की भीड़ लाकर खड़ी करने पर, स्वागत के लिए सुसज्जित तोरणों पर और भीड़ के सामने भाषण के लिए विराट् आकार के मंचों पर कल्पनातीत सार्वजनिक धनराशि लुटाई गई थी। नियन्त्रित अखबारों में संजय के यात्रा कार्यक्रमों की तथा पहुंच और कूच की घोषणा की जाती थी।

बम्बई, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और कई जगह मुख्यमंत्रियों के नेतृत्व में राज्य के पूरे मंत्रिमंडल युवराज का स्वागत करने के लिए हवाई अड्डे पर पंक्तिबद्ध खड़े हो गए थे। दलीय नेता जब नये इष्ट देवता के सामने सिज़दा करते थे, तो आतंक से फुसफुसाते थे, और मुक्त रूप से कहा जाता था कि श्रीमती गांधी की गद्दी का वही उत्तराधिकारी है। साठ से ऊपर के मुख्यमंत्री और अन्य कांग्रेसी संजय के पैर छूते थे और उसकी चप्पलें शब्दश: उठाकर उसके पैरों में पहनाते थे। यह सब इतना करुणाजनक न भी होता, तब भी अत्यन्त पतनशील तो यह था ही।

कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ संजय को विवेकानन्द, दूसरा शंकराचार्य

और अकबर और इन तीनों के मिश्रण से बना एक महामानव बताते थे। यह वही बरुआ थे, जो अपने दिल ही दिल में इस लड़के की साहसिकता से नफरत करते थे और संजय द्वारा किए गए अपमानों से तिलमिलाते रहते थे।

दल के मुख्य सचेतक और संसदीय मामलों के मन्त्री श्री रघुरमैया ने अपने नगर गुंटूर में हुई एक सार्वजनिक सभा में नेहरू की तीन पीढ़ियों की सेवा करने की शपथ ली थी; अर्थात् जैसे उन्होंने मां और नाना की सेवा की है, वैसे ही संजय की भी सेवा की कसम खाई थी।

संजय की इच्छा नौकरशाही के लिए चरम आदेश थी। यह युवराज सभी नियमों और कानूनों से ऊपर और परे था। जब संजय ने अपनी फैक्टरी के क्षेत्र को सुरक्षित क्षेत्र के भीतर तक फैलाने का निश्चय किया, तब सैनिक निर्माणों की सुरक्षात्मक आवश्यकताओं की भी कोई परवाह नहीं की गई थी।

1977 के लोकसभा चुनावों के लिए कांग्रेसी उम्मीदवारों के चयन का काम कांग्रेस संसदीय बोर्ड को नहीं, संजय चौकड़ी की एक समिति को सौंपा गया था। इस समिति में थे, संजय, बंसीलाल और धवन। समिति को यह देखना था कि श्री जगजीवनराम के किसी समर्थक को कांग्रेस की उम्मीदवारी न मिले। संजय श्री जगजीवनराम से घृणा करता था और श्रीमती गांधी ने कभी उन पर विश्वास नहीं किया। इस बात के स्पष्ट संकेत थे कि वे उन्हें छोड़ देना चाहती हैं। वस्तुतः चुनावों की घोषणा के बाद श्री जगजीवनराम द्वारा दल से त्यागपत्र देने का यह एक प्रमुख कारण था।

तब इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि लाड़-प्यार से बिगड़े हुए उस युवक का सिर ही फिर गया। पहले से ही बदमिजाज़, अब वह असह्य होगा। उसके अक्खड़पन ने उसके चारों ओर के लोगों को, यहां तक कि उसकी और उसकी मां की देख-भाल करने वाले सुरक्षा अधिकारियों तक को उससे काट दिया। इसी कारण यह हुआ कि नम्बर 1, सफदरजंग मार्ग से सम्बन्धित जो टेढ़ी-मेढ़ी कहानियां राजधानी में फैलीं, उनमें अधिकतर प्रधानमन्त्री निवास की सुरक्षा के लिए नियुक्त पुलिस के मुख से ही निकली थीं।

युवा कांग्रेस के नेता संजय ने दिसम्बर 1975 में चण्डीगढ़ के कांग्रेस अधिवेशन में अपना शानदार सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया था। पूरी तरह प्रशिक्षित बहुमाध्यमीय प्रचार अभियान को धन्यवाद कि एक वर्ष बाद कांग्रेस के गोहाटी अधिवेशन में, संजय और उसकी युवा कांग्रेस ने अपने बड़ों की कांग्रेस को पूरी तरह आच्छादित कर दिया था। प्रेस, रेडियो और दूरदर्शन ने तो राष्ट्र को कम से कम यही बताया था। संजय और अन्य वक्ताओं ने अपने बड़ों के बारे में निन्दाजनक बातें कहीं थीं और दावा किया था कि भविष्य युवा कांग्रेस के हाथों में है। उन्होंने मांग की थी कि अगले आम चुनावों में 50 प्रतिशत कांग्रेसी उम्मीद-

वार उनके होंगे; और इसका उन्हें वचन भी दिया गया था।

श्रीमती गांधी ने स्वयं युवा कांग्रेस अधिवेशन में भाषण दिया था, उन्हें आशीर्वाद दिया था और उनके इस दावे का समर्थन किया था कि भविष्य उनके हाथों में है। कांग्रेस अध्यक्ष श्री देवकान्त बरुआ भी अधिवेशन के सामने बोले थे और उन्होंने प्रधानमन्त्री के हर शब्द पर सही का निशान लगाया था। पर अधिवेशन में वे एक फालतू आदमी दीख पड़ रहे थे और संजय तथा अन्यों ने ऐसा ही व्यवहार उनके साथ किया भी था। असल में बरुआ के प्रति अपनी घृणा को संजय ने कभी नहीं छुपाया था और उनकी वह कोई इज़्ज़त नहीं करता था। उसकी मां भी उनसे कोई अधिक अच्छा व्यवहार नहीं करती थी। श्री बरुआ उनकी जो घिनौनी और चापलूसी से भरी तारीफ करते थे, लगता है उसका उन पर कोई असर नहीं होता था।

बोट क्लब पर 22 जून की विराट सभा में श्रीमती गांधी का पूरा परिवार मंच पर मौजूद था। कांग्रेस अध्यक्ष श्री बरुआ भी बीच में घुसकर जा बैठे। उन्हें मंच पर बैठा देखकर संजय ने नाराज़ी प्रकट की और होंठ सिकोड़कर यह कहते हुए वह सुना गया, "यह भांड यहां क्या कर रहा है?"

संजय अपनी नासमझियों, दुर्व्यवहारों और अक्खड़ स्वभाव के कारण लोगों को तत्काल दुश्मन बना लेता था। उसके बारे में यह सचमुच ही कहा जा सकता है कि देवता भी जहां जाते हुए डरते हैं, वहीं वह लपकता हुआ जाता है।

1977 के चुनावों में कांग्रेस दल की पराजय की शव परीक्षा करते हुए श्री चन्द्रजीत यादव के नेतृत्व में 125 कांग्रेसजनों ने इसका श्रेय 'जनता के क्रोध' को तथा 'प्रधानमन्त्री के चारों ओर एकत्र कुछ लोगों के समूह द्वारा कानूनी, राजनीतिक और संवैधानिक मापदंडों की उद्धत उपेक्षा को दिया था। ये वही लोग थे जिन्होंने प्रधानमन्त्री के बेटे संजय गांधी को अपनी लोलुपता और अधिकार लालसा का साधन और भागीदार बना लिया था।'

12

चोटी की मूर्खता

संजय की सर्वोच्च मूर्खता यह हुई कि राजधानी को सजाने और लोगों पर परिवार-नियोजन थोपने के लिए उसने क्रूर और बेढंग तरीकों को अपनाया जिनसे पूरा मुस्लिम सम्प्रदाय और समाज के सभी गरीब वर्ग तत्काल अलग कट गए।

राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस दल की यह घातक गलती थी, क्योंकि हर चुनाव में मत औ‍र समर्थन के लिए कांग्रेस मुसलमानों के और मज़दूरों के मत और समर्थन पर ही अत्यधिक निर्भर करती रही थी। संजय का 'सफाई करो' अभियान, जिसके अधीन उसने समाज के निर्धनतम वर्गों के सात लाख लोगों को निर्ममता से उखाड़कर उन्हें 20 मील दूर बसाया, उतना ही विवेकशून्य था, जितना कि सुल्तान मोहम्मद बिन तुगलक द्वारा अपनी राजधानी और उसके निवासियों को दौलताबाद ले जाने का पागल प्रयास।

इस सफाई करो' कार्यवाही के लिए जो इलाका चुना गया वह अत्यन्त घना बसा, लगभग पूरी तरह मुस्लिम आबादी वाला अजमेरीगेट-तुर्कमानगेट-जामा मस्जिद क्षेत्र था। इस कार्यवाही में अधिकारियों ने घोर निष्ठुरता और पुलिस ने क्रूरता दिखाई और लोगों को भारी कष्ट सहने पड़े। यहां तक कि जामामस्जिद के इमाम सैयद अब्दुल्ला बुखारी को उत्तेजित होकर राजनीति में कूदना पड़ा और आने वाले चुनावों में कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करना पड़ा। उन्होंने घोषणा की कि जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ कांग्रेस की अपेक्षा मुसलमानों के अधिक अच्छे मित्र हैं। उन्होंने उत्तरी राज्यों की बार-बार यात्रा की और कांग्रेस के विरुद्ध मत देने के लिए मुसलमानों को उत्साहित किया।

संजय वैसा ही आचरण करने लगा था, जैसा 400 वर्ष पहले की शाही दिल्ली में मुगल युवराज किया करते थे। उसका व्यवहार ऐसा था जैसे कि दिल्ली उसकी निजी जायदाद हो और अपनी जायदाद का वह कुछ भी कर सकता हो। जब उसका मतलब सरकारी अधिकारियों से होता था तब वह शाही 'हम' का इस्तेमाल करता था। बिना तैयारी के अनायास दरबार लगाता था और विभिन्न नागरिक मामलों पर फैसले देता था। वह पीड़ित जनता के प्रतिनिधिमंडलों से बात करता था और यदि उनकी बात उसकी योजनाओं के रास्ते में आती थी तो कितनी भी युक्तिसंगत वह क्यों न हो; उसे वह तुरन्त रद्द कर देता था। "हम इसकी इजाजत नहीं दे सकते!" वह कहा करता था।

संजय अपने प्रचंड 'सफाई अभियान' के बारे में राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद से बात करने के लिए राष्ट्रपति भवन पहुंचा। जब उन्होंने उसे धीमे बढ़ने की सलाह दी तो, कहा जाता है, संजय ने मुंहफट तरीके से उस सलाह को ठुकरा दिया और अपनी योजनाओं को आगे बढ़ाने के दृढ़ निश्चय को ही व्यक्त किया।

तुर्कमान गेट क्षेत्र में 13 अप्रैल 1976 को गड़बड़ी तब शुरू हुई जब डी० डी० ए० ने दोजाना हाउस अस्थाई शिविर के क्वार्टरों को तुर्कमान गेट के क्षेत्र से हटा देने का नियम-विरुद्ध काम किया। यह अस्थाई शिविर मूलतः बहुत पहले 1965 में जामा मस्जिद के निकट स्थित दोजाना हाउस के निवासियों को बसाने के लिए स्थापित किया गया था। इसे तब तक रहना था जब तक दोजाना हाउस में उनके लिए नये घर न बन जायें और वे उन्हें दे न दिए जायें। वह वायदा कभी पूरा नहीं हुआ और पिछले 11 वर्षों से वे लोग इस अस्थाई शिविर में उस दिन तक रहते रहे, जिस दिन यह शिविर बुलडोज़र से खत्म नहीं कर दिया गया और इसके निवासी जमनापार के आवास क्षेत्रों में नहीं भेज दिए गए।

अफवाह गर्म हो उठी कि तुर्कमानगेट का भी यही हाल होगा। लोगों ने इन अफवाहों पर पहले विश्वास नहीं किया था क्योंकि न तो वे यों ही जबरदस्ती आकर बस गए लोग थे और न ही अनधिकृत मकानों में रहने वाले थे। वे तो पीढ़ियों-पीढ़ियों से यहां रहते चले आ रहे थे। डी० डी० ए० कैसे उनके घरों को गिरा सकती थी और उन्हें बाहर निकाल सकती थी ? लेकिन जब अफवाहें लगातार गर्म रहीं तो तुर्कमानगेट के निवासियों ने स्थानीय सामाजिक कार्यकर्त्ताओं और कांग्रेसियों के माध्यम से अधिकारियों के पास आवेदन भिजवाए। डी० डी० ए० उन्हें कोई निश्चित आश्वासन देने को तैयार नहीं थी। एक प्रतिनिधिमंडल तत्कालीन आवास मन्त्री श्री हरकिशनलाल भगत से भी जाकर मिला और उनसे निवेदन किया कि यदि उनके घरों को गिराया ही जाना है तो इसके लिए उन्हें उचित समय दिया जाना चाहिए। श्री भगत उन्हें कोई आश्वासन नहीं दे सके और उन्होंने सन्देह ही प्रकट किया।

18 अप्रैल को लोगों ने सुना कि डी० डी० ए० के उपाध्यक्ष श्री जगमोहन और संजय गांधी पास ही स्थित रणजीत होटल में आए हुए हैं। निवासियों ने एक प्रतिनिधिमंडल निर्मित किया और संजय के पास पहुंच गए। पहले तो संजय ने मिलने से इंकार कर दिया, लेकिन बाद में कृपा करके मिलना स्वीकार कर लिया। जब प्रतिनिधिमंडल को संजय की उपस्थिति में लाया गया तो उन लोगों ने देखा कि कमरे में संजय और जगमोहन के अतिरिक्त एक पुरुष और दो युवतियां और थीं।

प्रतिनिधिमंडल ने प्रार्थना की कि उनके घरों को बख्श दिया जाए। प्रार्थना नामंजूर कर दी गई और उन्हें रूखा जवाब दिया गया कि उन्हें खाली करना ही

पड़ेगा। प्रतिनिधिमंडल ने तब प्रार्थना की कि यदि उन्हें जाना ही है तो कम से कम उन्हें एक ही क्षेत्र में बसाया जाए, जहां वे इकट्ठे अपना जीवन फिर से शुरू कर सकें। इनमें अधिकतर लोग सदियों से पड़ोसियों के रूप में रहते आ रहे थे और कितने ही आपस में रिश्तेदार भी थे। कहा जाता है, जगमोहन ने इसका यह सख्त जवाब दिया, "तुम यहां छोटा पाकिस्तान बनाना चाहते हो ?"

आहत और निराश उन लोगों ने अगले दिन बुलडोज़रों का मुकाबला करने का निश्चय किया। स्त्री और पुरुष एक बड़ी संख्या में क्षेत्र के एक कोने में स्थित मस्जिद, दरगाह-फैज-इलाही में इकट्ठे हो गए। सैकड़ों लोग बुलडोज़रों को क्षेत्र में घुसने से रोकने के प्रयोजन से बैठकर प्रदर्शन करने के लिए बाहर इकट्ठे हो गए और यहां-वहां बैठ गए। विरोध के इस ढंग का सुझाव उस क्षेत्र की संसत्सदस्या श्रीमती सुभद्रा जोशी ने दिया था।

जब लोग बैठे थे और इन्तज़ार कर रहे थे तो तनाव बढ़ता जा रहा था। इसी तरह के दो और समूह: एक डिलाइट सिनेमा के पास और दूसरा हमदर्द दवाखाने के पास एकत्र हो गया। ये सभी घरों के मालिक नहीं थे बल्कि अधिकतर वे लोग थे जो उस क्षेत्र में काम करते थे और किरायेदारों के रूप में गृहस्वामियों के साथ रहते थे। इसी बीच जामा मस्जिद से चला नसबन्दी विरोधी एक जुलूस तुर्कमानगेट क्षेत्र में आकर समाप्त हुआ और इस तरह प्रदर्शनकारियों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गयी।

प्रदर्शनकारी लगभग 1 बजे तक वहां बैठे रहे। दिन बहुत गर्म था। तभी सीमा सुरक्षा दल और केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस के सिपाही राइफलों और लाठियों से सज्जित गाड़ियां भर-भरकर वहां पहुंचे। कुछ पुलिस वालों के पास उपद्रव से बचाव के लिए बांस की ढालें भी थीं। लोग अस्थिर हो उठे। कुछ ने बस वहां से चले जाना चाहा। अन्य कुछ प्यासे थे। कुछ को अपनी दोपहर की नमाज़ का ध्यान आया और कुछ पेशाब आदि के लिए जाना चाह उठे। बैठे हुए प्रदर्शनकारियों में से कुछ जाने के लिए उठे। लेकिन पुलिस ने उन्हें हिलने नहीं दिया। उन्हें पीछे ढकेल दिया गया और वहीं बैठे रहने का आदेश दिया गया। अब और अधिक लोग उठकर खड़े हो गए। उन्होंने रास्ता बनाने की कोशिश की। पुलिस ने फिर उन्हें ढकेलकर पीछे हटा दिया। यह कुछ मिनटों तक चलता रहा।

तभी जैसा कि उपद्रव भड़काने के ठेठ तरीके के रूप में अनेकों बार पहले भी हुआ होगा, एक पत्थर सनसनाता हुआ आया और प्रदर्शनकारी भीड़ के बीच में आकर गिरा। कुछ लोग, जो प्रदर्शनकारियों में थे, बोले कि यह पुलिसवालों के पीछे से आया है। अन्यों ने ज़ोर देकर कहा कि यह स्वयं पुलिसवालों ने ही फेंका है। एक पुलिस वाले का कहना था कि इसे पुलिस के पीछे दर्शकों के रूप में खड़े वहीं के रहने वालों ने फेंका है।

कुछ देर के लिए भयानक चुप्पी रही और तब प्रदर्शनकारियों ने बदले में जवाब दिया। पुलिसवालों पर पत्थरों की एक बौछार आकर गिरी। इस समय उपमण्डलीय मजिस्ट्रेट श्री ए० के० पाटन्दे ने बेंत चलाने का आदेश दिया। लेकिन बेंत चलायी नहीं गयी। हो सकता है केन्द्रीय रिज़र्व पुलिस और सीमा सुरक्षा दल के सिपाही इतनी बड़ी भीड़ से इस तरह निपटने के आदी नहीं थे। शायद भीड़ पुलिस को अपने निकट आने नहीं दे रही थी।

तब तक लोग घबराकर इधर-उधर भागने लगे थे। कुछ बचकर संकरी गलियों में घुस गए थे। पुलिस ने भीड़ को पकड़ना शुरू कर दिया। 2 बजे तक प्रदर्शनकारी एक बड़ी संख्या में गिरफ्तार कर लिए गए। इस क्षण घरों के भीतर की स्त्रियां बाहर आकर इस हंगामे में शामिल हो गयीं। वे लाठियां, बेलन या जो कुछ भी उनके हाथ लगा लेकर निकल पड़ीं। पुलिस जैसे कुछ देर के लिए हक्की-बक्की रह गयी। इस बीच जो लोग गलियों में घुस गए थे, उन्होंने पुलिस पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए।

जो लोग उस दिन की घटनाओं में शामिल थे, वे भी नहीं कह सकते कि किसने और ठीक किस क्षण गोली चलाने का आदेश दिया। बाद के ब्यौरों के अनुसार वहां उपस्थित मजिस्ट्रेट गोली चलाने के विरुद्ध थे। उनका सुझाव था कि पुलिस उस क्षेत्र को घेर ले और पत्थर फेंकने वालों को गिरफ्तार कर ले। पुलिस प्रदर्शनकारियों के पीछे भागती संकरी गलियों में घुसी थी, लेकिन उन्हें पकड़ने में विफल रही थी।

गोली चलाने का पहला आदेश लगभग 3 बजे दिया गया था। कहते हैं इसे इन्सपेक्टर जनरल (रेंज) ने दिया था। एकदम घबराहट और चीख-पुकार फैल गयी। चिल्लाहटें पास के इलाकों तक में सुनी जा सकती थी। लोग ज़मीन पर गिरने लगे। एक युवक ने अपनी छाती खोल दी और कहा कि वह अपने घर की रक्षा करते हुए शहीद होना चाहेगा। वह गोली खाकर गिर गया। और अधिक गोलियां चलाने के आदेश दिए गए। इसके साथ ही बुलडोज़रों ने सड़क पर आगे बढ़ना और घरों को गिराना शुरू कर दिया।

घरों में मौजूद अधिकतर स्त्रियों और बच्चों को मिनटों के भीतर बाहर निकल आने के आदेश दिए गए। एक प्रत्यक्ष गवाह और शिकार, बड़ी बी, के अनुसार उसके बड़े बेटे को कुछ लाठियां लगीं और वह भाग लिया। छोटे ने उसकी दुकान में घुसे आ रहे पुलिस वाले को रोकने की कोशिश की। उसपर रायफल के कुन्दे की मार पड़ी और वह भी वहां से हट गया। स्त्रियों को खींच कर बाहर निकाल दिया गया और रोते हुए बच्चे डरकर इधर उधर भाग लिये।

"हमारे घरों के पीछे बसे कुछ हिन्दुओं ने कितनी ही स्त्रियों को बचाया।

उन्होंने पुलिस से प्रार्थना की कि "वे पर्दानशीन हैं, उन्हें मत छुओ और अनेकों स्त्रियों और बच्चों को आश्रय दिया।" कुछ मुसलमान औरतों ने बताया—मस्जिद में इकट्ठी स्त्रियों को एक मजिस्ट्रेट ने आदेश दिया कि वे यहां से निकल जाएं। "जहां भी जा सकती हो चली जाओ।" उसने उनसे कहा। इन स्त्रियों के पुरुष इस समय गिरफ्तार किए जा रहे थे।

जिस अवधि में घरों को गिराया जा रहा था, गोलियां रुक-रुककर लगभग डेढ़ घंटे तक चलती रहीं। जब पुलिसवाले स्त्रियों और बच्चों को घरों से बाहर धकेल रहे थे और गलियों में पुरुषों का पीछा कर रहे थे, उसी बीच अत्याचार किए गए और सम्पत्ति लूटी गई। जैसे-जैसे बुलडोज़र आगे बढ़े, लोग निकलकर बाहर भागे। तभी पुलिस वाले झपटकर भीतर घुसे और घरों से टेलीविज़न और रेडियो तथा जो भी कीमती चीजें उनसे हाथ लगीं, उन्हें उठा ले गए। इससे भी अधिक निन्दनीय घटनायें गलियों में और सड़कों पर घटीं, जहां पुलिसवाले प्रदर्शनकारियों को ढूंढ़ रहे थे और उनका पीछा कर रहे थे। वहां वे घरों में घुस गए। उन्होंने सम्पत्ति लूटी और स्त्रियों से दुर्व्यवहार किया।

अल्लारक्खी की आंखों में अभी भी आतंक है और पुलिस के घर में घुसने के एक वर्ष बाद, आज भी वह हक्की-बक्की प्रतीत होती है। उसने इस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया। उसने बताया कि मोहल्ले की लगभग आधा दर्जन लड़कियां पिछवाड़े के एक कमरे में, जो आमतौर से कोठार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, जाकर छुप गईं थीं। उन्होंने अन्दर से कुंडी चढ़ा ली थी। सात या आठ पुलिस वाले (अल्लारक्खी ने बताया कि वे पुलिस के आदमी नहीं थे; जिन सिपाहियों को हम देखते हैं उनसे भिन्न वे बहुत लम्बे-चौड़े थे) उसके घर में घुस आये। उनके हाथों में डंडे और रायफलें थीं और वे घर के छोटे-से आंगन में भरकर खड़े हो गये। उन्होंने हुक्म दिया कि भीतर के कमरे को खोला जाए। जब लड़कियों ने नहीं खोला तो वे दरवाज़ा तोड़ने के लिए आगे बढ़े। अनायास अल्लारक्खी दौड़कर दरवाज़े के सामने खड़ी हो गई। रायफल के कुन्दे की चोट उसके माथे पर पड़ी और खून बहने लगा।

पुलिस वालों ने ज़बरदस्ती दरवाज़ा खोल डाला और रोती-चीखती लड़कियों को एक-एक करके बाहर खींच लिया। इन्होंने उन्हें नोचा, उनके बाल खींचे और उनके दुपट्टे छीन लिए। कुछ लड़कियां भागकर बराबर के घरों में घुस गईं। अल्लारक्खी सोने की बालियां पहने थी। एक पुलिस वाले ने उन्हें उसके कानों से तोड़ लिया। जब उसने अपने कानों को हाथों से ढकना चाहा, तो उन्होंने उस पर लाठियां बरसाईं। एक दूसरे पुलिस वाले ने कमरे से घड़ी उठा ली और तीसरे ने ट्रांजिस्टर ले लिया। यहां तक कि उसकी बूढ़ी सास भी पुलिस की लाठियों

से बच नहीं सकी। उसने बताया कि बाद में इर्विन अस्पताल की गाड़ी आई और उन्हें ले गई।

तुर्कमान बाज़ार में दौड़ते हुए पुलिस वाले छुपे हुए प्रदर्शनकारियों को ढूंढ़ते हुए मोहम्मदअली के घर में भी घुस गए। वे सीढ़ियों से ऊपर चले गए, जहां स्वर्ण-नियन्त्रण आदेश से पहले मोहम्मदअली स्थानीय स्त्रियों के लिए गहने गढ़ा करता था। पर इस समय यह रहने का घर था और अली यहां अपनी पत्नी और बेटे के साथ रहता था। सिपाहियों ने उसे दो लाठियां मारीं और बाहर निकल जाने का हुक्म दिया। अब उसकी पत्नी ने अपने पति को बचाने की कोशिश की तो एक लाठी उसके हाथ पर पड़ी और उसकी एक उंगली की हड्डी टूट गई। पुलिस वाले उसके बेटे की घड़ी छीन ले गए। उसने घड़ी को अपने हाथ में छुपाना चाहा तो उन्होंने उसे पीटा।

कुछ पुलिस वाले तीसरी मंज़िल पर अली के नवविवाहित बेटे और बहू के कमरे में पहुंच गये। उन्होंने कमरे को उलट-पलट डाला और अलमारी को तोड़ कर गहने निकाल ले गए। अलमारी में रखे डिब्बे फर्श पर खाली बिखरे छोड़ गए। एक दूसरी अलमारी में बहू ने चीनी के बर्तन, जो वह दहेज में लाई थी, सजाकर रखे थे। पुलिस वालों ने सब बर्तन चूर चूर कर दिए। कमरे से जाते हुए पुलिस वाले गलती से बांस की बनी एक ढाल कमरे में ही छोड़ गये। अली की पुत्रवधू सड़क के पार अपनी मां के यहां गई हुई थी। जब पुलिस चली गई तब वह भागती हुई ससुराल आई। वह ऊपर अपने कमरे में गई तो उसने देखा कि दहेज में जो भी गहने और अन्य मूल्यवान चीज़ें वह लाई थी, सब जा चुकी थीं।

इस तरह के उदाहरण अनगिनत बताए जाते हैं। लेकिन जिन स्त्रियों से हम मिले, उनमें किसी ने भी बलात्कार का एक भी मामला नहीं बताया। वे बोलीं, "नहीं ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने कुछ स्त्रियों से दुर्व्यवहार किया, अपमान किया, नोचा-खसोटा भी। पर वह नहीं।" एक बुढ़िया ने कहा, "हम झूठ नहीं बोलेंगे। खुदा ही जानता है, किन पुराने पापों की यह सज़ा हमें मिली है। हम झूठ नहीं बोलेंगे।"

अल्लारक्खी ने बताया कि जब पूरे क्षेत्र में कर्फ्यू लगा हुआ था, तब भी पुलिस वाले उनके इलाके में और घरों में आते रहे थे। अगले दिन उन्होंने पास के घर की एक बहू से कहा था कि अस्पताल में घायल पड़ा उसका पति उसे बुला रहा है।" लेकिन बुढ़िया सास ने बहू को पुलिस वाले के साथ नहीं जाने दिया था।

अजमेरीगेट की दुखद घटना, पिछले दो वर्षों से दिल्ली में चल रही कार्य-वाहियों की शृंखला की चरम परिणति थी। फसील से घिरे नगर में जामा मस्जिद दूसरा क्षेत्र था जहां दुकानों के गिराए जाने ने बहुत वाद-विवाद और फिसाद तक

इ-10

पैदा किया था। जामामस्जिद की बाहरी दीवारों के साथ बनी ये दुकानें सैकड़ों वर्षों से वहां थीं। भाग्य में परिवर्तन के साथ-साथ इन्होंने अपने रूप भी बदले थे। लेकिन जामामस्जिद का कवाड़ी बाज़ार, जितनी दूर पीछे तक इस क्षेत्र के निवासियों की याद जाती है, बराबर यहीं रहा था।

इस क्षेत्र को साफ करने की योजना पहले भी बनी थी। बताया जाता है कि पांचवें दशक के अन्त में नेहरू और आज़ाद इस क्षेत्र में आए थे और उन्होंने कुछ सुधारों के सुझाव दिए थे। बाद में पाईवालान योजना नाम से एक योजना बनाई गई थी, जिसके अन्तर्गत मस्जिद के चारों ओर के दुकानदारों को उसी क्षेत्र में डी०डी०ए० द्वारा बनाई गई दुकानें बदले में दी जानी थीं।

इस योजना को स्वीकृति उस समय दी गई थी, जब श्री भगवान सहाय दिल्ली के चीफ कमिश्नर थे। इस फैसले को 4 अक्तूबर, 1974 की विलम्बित तिथि में डी०डी०ए० द्वारा आयोजित नगर आयोजकों की एक बैठक में दुबारा स्वीकृत किया गया था। एक प्रस्ताव स्वीकार करके सिफारिश की गई थी कि पाईवालान योजना को जल्द कार्यान्वित किया जाए। जनवरी 1975 में इस प्रश्न को दुबारा उठाया गया था और शीघ्र कार्यवाही का वचन दिया गया था।

लेकिन 26 जून 1975 के बाद अचानक सब कुछ भिन्न रूप में नज़र आने लगा। डी०डी०ए० एक दिन बुलडोज़र ले आया और जामामस्जिद की दुकानों को गिरा दिया गया। दुकानदारों से कहा गया कि वे उर्दू पार्क के पास अपनी दुकानें अपनी लागत पर खड़ी कर लें। बाद में उन्हें वहां से भी हटा दिया गया और सीढ़ियां उतरकर एक निचले क्षेत्र में उन्हें भेज दिया गया, जहां अंधेरा और गन्दगी है, हवा का ठीक इन्तज़ाम नहीं है और बरसात में पानी भर जाता है।

इस क्षेत्र का एक सामाजिक कार्यकर्ता इन्द्रमोहन जामामस्जिद के दुकानदारों की तकलीफें सामने रखने के लिए संजय गांधी से मिला। बताया गया है कि संजय गांधी ने उससे कहा कि पाईवालान योजना पर लगभग दो करोड़ खर्च का अनुमान है। यदि इन्द्रमोहन या विस्थापित दुकानदारों का कोई भी हितचिन्तक इतना रुपया देने को तैयार हो तो "योजना को कार्यान्वित करने में हमें कोई आपत्ति नहीं होगी।" संजय ने यह भी कहा, "मेरी सूचना है कि ये लोग जहां भी इन्हें भेजा जाए चले जाएंगे। लेकिन तुम्हारे जैसे नेता ही परेशानी पैदा करते हैं।"

अगले दिन इन्द्रमोहन अपने क्षेत्र में वापस लौटा और उसके और संजय के बीच जो बातें हुई थीं वे उसने लोगों को बताईं। अगले दिन उसने फिर लोगों से बात की और सबने विचार-विनिमय किया कि पाईवालान योजना को लागू कराने के लिए आगे क्या कदम उठाए जाएं।

इन्द्रमोहन संजय से 17 सितम्बर को मिला था। 19 सितम्बर की आधी

रात को कर्ज़न रोड होस्टल में इन्द्रमोहन के कमरे पर खटखट हुई। जैसे ही उसने दरवाज़ा खोला सफेद कपड़ों में सात आदमी भीतर घुस आए। उनमें से एक ने इन्द्रमोहन को गले से पकड़ लिया। आधा जगा इन्द्रमोहन भौंचक रह गया। जब उसने पूछा कि वे क्या चाहते हैं तो उसे बताया गया कि वे पुलिस वाले हैं और उसे गिरफ्तार करने आए हैं। तब तक एक वर्दीधारी अधिकारी भी वहां आ पहुंचा था।

उनके साथ चलने से पहले इन्द्रमोहन ने कुछ कपड़े ले लेने चाहे। लेकिन इसकी इजाज़त उन्होंने नहीं दी। उसने अपने कमरे में ताला लगाना चाहा, क्योंकि वहां वह अकेला रहता था। पुलिस ने इसका भी अवसर उसे नहीं दिया। जब उसने पुलिस की पकड़ से अपने को मुक्त करना चाहा तो उन्होंने उसे सशरीर उठाकर सड़क पर इन्तज़ार करती जीप में पटक दिया और दरियागंज थाने की ओर ले चले।

दरियागंज थाने में इन्द्रमोहन को हवालात में डाल दिया गया। हवालात की खुली नाली में बदबूदार कूड़ा भर दिया गया था। जैसे ही वह कोठरी में घुसा उसे उलटी आने को हुई, लेकिन पुलिस ने उसे साफ नहीं कराया। इन्द्रमोहन ने अन्न-जल लेने से इंकार कर दिया। पुलिस ने कोई चिन्ता नहीं की। उसे भारत सुरक्षा नियम के अधीन गिरफ्तार किया गया था। इसलिए तीसरे दिन उसे तीस हज़ारी अदालत ले जाया गया। दो दिन के भूखे उसको हथकड़ी लगाकर चार मील का मार्ग पैदल चलाया गया। वह अभी अपने रात के कपड़ों, लुंगी और कुर्ते में ही था।

जब वह सड़क पर जा रहा था तो लोगों ने उसे पहचान लिया और दूसरों को खबर कर दी। जामामस्जिद के निवासियों ने उसकी ज़मानत भरने की ज़िद की। उन्होंने कहा, "यह हमारा हक है।" इन्द्रमोहन को बाद में तिहाड़ जेल भेज दिया गया। उसे अन्य राजनीतिक नज़रबन्दियों के साथ जनवरी 1977 में ही छोड़ा गया। वह बाहर आया तो जर्जर और बीमार था। लेकिन कुछ ही दिनों के भीतर उसने कुछ कपड़े अपने थैले में डाले और संजय के विरुद्ध प्रचार करने के लिए अमेठी की ओर चल दिया।

एक प्रश्न जो अब भी अनेकों को परेशान करता है यह है कि आखिर तुर्कमान गेट के घरों को क्यों गिरवाया गया। वहां के निवासी न तो जबरदस्ती आकर बसे हुए लोग थे, न ही उनके घर अनधिकृत थे। इसमें दो राय नहीं हैं कि वह एक घना बसा और गन्दा क्षेत्र है और वहां सफाई की और सुधार की ज़रूरत है। यह तथ्य 1938 जितने पुराने समय में भी स्वीकार किया गया था और उस समय ब्रिटिश सरकार ने एक दिल्ली-अजमेरी गेट योजना तैयार की थी। इस योजना

के अन्तर्गत तुर्कमान गेट-अजमेरी गेट के निवासियों को, जहां आज रणजीत होटल है वहां एक अस्थायी शिविर में रखा जाना था और फसील के भीतर के इस क्षेत्र को अधिक अच्छी स्वास्थ्य-सुविधाओं सड़कों और गलियों आदि समेत फिर से निर्मित किया जाना था। कुछ घरों को, उनकी मूल रचना और उनके रूप को बिना बदले, बस थोड़ा-सा परिवर्तित किया जाना था, जिससे सड़कों और अन्य सुविधाओं के लिए जगह निकल सके।

बाद में मातासुन्दरी सड़क से लेकर अजमेरी गेट, तुर्कमान गेट तक की पूरी ज़मीन का विकास फसील के भीतर के शहर के ढंग पर ही किया जाना था और वहां की फालतू आबादी को यहां बसाया जाना था। लेकिन जब इस ज़मीन का व्यापारिक मूल्य ध्यान में आया तो अधिकारियों ने अपना इरादा बदल दिया। दिल्ली-अजमेरी गेट योजना, जिसे बाद में स्वतन्त्र भारत की नई सरकार ने भी स्वीकार किया था, खत्ते में डाल दी गई। इसके और बाद में आसफअली रोड की व्यापारिक भवन-शृंखला निर्मित हुई। तब डी०डी०ए० ने, जहां पुरानी दिल्ली के घर हैं, उस स्थान पर 50 मंज़िले कार्यालय बनाने की योजना तैयार की। योजना यह थी कि चावड़ी बाज़ार और नई सड़क तक पूरे क्षेत्र को गिराकर साफ कर दिया जाए और वहां विभिन्न आकारों और ऊंचाइयों के गगनचुम्बी भवन बनाए जाएं। लगता है संजय बहुत दूरगामी योजनाएं अपने मन में पोस रहा था।

व्यापारिक भवनों के निर्माण के लिए बड़ी धन राशि की ज़रूरत थी। वस्तुतः डी० डी० ए० भूस्वामियों की कीमत पर पैसा बना रही थी। इसमें कोई शक नहीं है कि डी० डी० ए० ने दिल्ली का विकास किया है। कितनी ही नई बस्तियां बसाई हैं और सड़कों को चौड़ा किया है। लेकिन इस प्रक्रिया में उसने मूल भूस्वामियों को, जिनकी ज़मीनें उसने लीं और बेचीं, खूब ठगा है। उदाहरण के लिए उसने मुनीरका के किसानों से ज़मीन ली। उन्हें एक रुपया या डेढ़ रुपया प्रतिवर्ग गज के हिसाब से मुआवज़ा दिया गया। लेकिन जिन लोगों ने उस क्षेत्र में मकान बनाने के लिए डी० डी० ए० से ज़मीन खरीदी, उनसे उसी ज़मीन के लिए सौ और डेढ़ सौ के बीच कीमत ली गई।

झुग्गी-झोपड़ी बस्तियां लाल दानों की तरह दिल्ली के साफ चेहरे पर फैलती जा रही थीं। डी० डी० ए० ने योजना बनाई कि इन अनधिकृत बसे लोगों को बदले में जगह देकर यहां की सफाई कर दी जाए। इसलिए अधिकतर लोगों ने अधिकारियों का समर्थन किया। लेकिन अपने उत्साह में डी० डी० ए० ने पक्के मकान भी, जिनके नक्शे स्वीकृत थे और जिन्हें पानी और बिजली देकर सरकारी मान्यता दी जा चुकी थी, गिरा दिए।

झुग्गी वाले और जिनके घर गिरा दिए गए थे वे लोग पुनर्वास बस्तियों के लिए निश्चित खाली ज़मीनों पर पटक दिए गए। यह कार्यवाही वर्षा के दिनों में

शुरू की गई और गरीब लोग सर पर छत के बिना वर्षा और धूप के शिकार हुए। सैकड़ों बीमार पड़ गए और कितने ही मर गए। लगभग सभी ने जीविका के अपने साधन खो दिए, क्योंकि ये बस्तियां उनके पहले के घरों और काम की जगहों से 15 से 20 मील की दूरी पर स्थित थीं। स्थानान्तरण का यह सबसे बड़ा अभियान था, जैसा दिल्ली में पहले कभी नहीं हुआ था। पूरे आगरे की आबादी के बराबर लगभग सात लाख व्यक्तियों पर इसका असर पड़ा और इस सफाई अभियान में वे इधर-से-उधर भेज दिए गए।

तुर्कमान गेट-जामामस्जिद की घटनाओं के बड़े ही दूरगामी प्रभाव पड़े। तुर्कमान गेट के अनेकों परिवारों ने विशेषकर स्त्रियों और बच्चों ने उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश में अपने रिश्तेदारों के यहां शरण ली और उनके साथ कांग्रेस सरकार द्वारा किए गए अत्याचारों और जुल्मों की कहानियां भी वहां पहुंचीं।

जामामस्जिद क्षेत्र के एक युवक की कहानी इसका उदाहरण है। उसने अधिकारियों को यह बताने की धृष्टता की थी कि शिल्पकारों और कारीगरों के अपने ही क्षेत्र में आवश्यक सुधार करके उन्हें वहीं बसा देने की एक योजना पहले बनी थी। उसे पकड़कर जेल में डाल दिया गया। जब वह जनवरी में जेल से छूटा तो घर नहीं लौटा। विरोधी दलों का प्रचार करने के लिए वह सीधा उत्तर प्रदेश चला गया।

दिल्ली और अन्य पड़ौसी राज्यों के लोगों पर नसबन्दी थोपने के लिए जो अन्धाधुन्ध और निष्ठुर तरीके अपनाए गए, उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को भी अलग काट देने की प्रक्रिया पूरी कर डाली।

अगस्त-सितम्बर 1975 के आसपास दिल्ली से फुटकर काम करने वाले पुरुष-मजूर अचानक गायब हो गए। ठेकेदारों ने सफेदी कराने और ऐसे ही दूसरे कामों के ठेके लेने बन्द कर दिए। दीवाली अभी दूर थी, लेकिन उनका कहना था कि मजूर राजस्थान में अपने गांवों को लौट गए हैं। निर्माण मजूरों के बच्चों की देखभाल के लिए स्वयंसेवक कल्याण संस्थाओं द्वारा चलाए जाने वाली बाल-वाड़ियों में अध्यापिकाओं के पास बच्चे नहीं रहे थे। या तो मां-बाप गांव चले गए थे या अभी भी अपने कामों पर जमे मज़दूरों ने अपने बच्चों को कल्याण केन्द्रों में भेजना बन्द कर दिया था। किराने और सब्जी के थोक बाज़ारों की भी यही हालत थी। खारी बावली के दुकानदारों को दुकानों से उठाकर इन्तज़ार करती गाड़ियों तक सामान ले जाने के लिए कुली नहीं मिल रहे थे।

ये मजूर जबरन नसबन्दी से बचने के लिए गायब हो गए थे। ठेकेदारों, अध्यापकों, बाज़ारों पर तैनात नगरपालिका-अधिकारियों के लिए नसबन्दी के केसों की संख्याएं नियत कर दी गई थीं और अपनी-अपनी संख्या उन्हें पूरी करनी थी। अध्यापकों के वेतन रोक दिए गए थे। नगरपालिका कर्मचारियों की विभिन्न

सुविधाएं वन्द कर दी गई थीं। नागरिक अधिकारियों ने नसबन्दी के लिए तैयार व्यक्तियों की वांछित संख्या पूरी करने में विफल रहने पर ठेकेदारों और कारखाना-मालिकों से सहयोग करने से इन्कार कर दिया था।

एक ग्रामीण कल्याण संस्था वरसों से वच्चों की शिक्षा और पोषक आहार के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ केन्द्र चला रही थी और नेहरू के जन्मदिन 14 नवम्बर को वह बच्चों की पिकनिकें संगठित करती आई थी। लेकिन 1975 में उसे अपना यह कार्यक्रम छोड़ देना पड़ा। माताओं ने अपने बच्चों को पिकनिक पर भेजने से इन्कार कर दिया। कार्यक्रम चलाने वाली अध्यापिका को बड़ी परेशानी हुई, क्योंकि भोजन और आने-जाने का प्रबन्ध वह कर चुकी थी। इसलिए अपने बच्चों को पिछले वर्षों की तरह ही पिकनिक पर भेजने के लिए माताओं को मनाती हुई वह घर-घर घूमी, लेकिन माताओं ने इन्कार कर दिया। उन्हें डर था कि उनके वच्चों को रोक रखा जाएगा और तब तक घर लौटने नहीं दिया जाएगा, जब तक उनके पिता नसबन्दी नहीं करा लेते। कोई भी आश्वासन उनके भय और संशय को दूर नहीं कर सका।

गरीबों ने अपने बच्चों के नाम अपने राशनकार्डों से कटवा लिए। उन्हें डर था कि जिनके राशनकार्ड पर दो से अधिक बच्चों के नाम होंगे, उन्हें जबरन नसबन्दी करवानी पड़ेगी। नसबन्दी एक भयावह शब्द बन गया था।

आश्चर्य की बात यह है कि नसबन्दी का अभियान स्वास्थ्य मन्त्रालय अथवा परिवार नियोजन विभाग द्वारा उतना नहीं चलाया गया था, जितना नागरिक अधिकारियों, स्थानीय प्रशासनों अथवा गांवों में राजस्व अधिकारियों एवं पुलिस के द्वारा। स्वास्थ्य मन्त्री ने सरकार की जिस जनसंख्या नीति का निर्धारण किया था, उसमें प्रोत्साहनों एवं वंचनाओं की बात कही गई थी, लेकिन मन्त्री महोदय ने शायद समझ लिया था कि उनके विभाग के पास हल्की कार्यवाही तक के लिए भी न तो साधन हैं और न ही प्रभाव है।

संजय गांधी ने क्योंकि परिवार नियोजन को अपने पांच सूत्रों में शामिल कर लिया था और उसका वह सार्वजनिक रूप से प्रचार करता था, इसलिए परिवार-नियोजन राज्य का और स्थानीय अधिकारियों का मुख्य धन्धा बन गया। राज्य सरकारें अब तक सर्वशक्तिमान बन चुके संजय को खुश करने की इच्छा से प्रेरित होकर अचानक ही परिवार-नियोजन के लिए एक नये जोश से भर उठी थीं। विभिन्न क्षेत्रों के लिए लक्ष्य निश्चित कर दिए गए। राज्य और नागरिक अधिकारी इन लक्ष्यों से आगे दुगनी-तिगुनी संख्याएं देने के लिए एक-दूसरे से होड़ करने लगे।

जब अधिकारियों ने देखा कि इस कार्य से सम्बन्धित विभागों और अधिकारियों के माध्यम से लक्ष्य पूरे नहीं किए जा सकते, तो उन्होंने उन लोगों की

सेवाएं प्राप्त कीं जो यद्यपि इस कार्यक्रम के लागू किए जाने से सीधे सम्बन्धित नहीं थे, पर जिनका समाज पर अधिकार और प्रभाव था। अध्यापकों, ग्रामीण अधिकारियों, राजस्व एवं नागरिक कर्मचारियों से कहा गया कि वे नसबन्दी के लिए आदमी लाएं।

एक समय आया जब अध्यापक नसबन्दी कराने के लिए तैयार किसी भी व्यक्ति को 300 रुपये तक देकर 'खरीद लेने' के लिए घूमते फिरने लगे। गांव के राजस्व अधिकारियों जैसे कि पटवारियों ने भूमि के खाते पूरे करने, ऋण अथवा कृषि सेवाएं प्रदान करने से तब तक इन्कार कर दिया, जब तक ग्रामवासी नसबन्दी न करा लें। यदि किसी को भूमि या घर या काम या बच्चों के लिए स्कूल या कालिज में प्रवेश पाना था, तो उसे या तो अपना नसबन्दी प्रमाणपत्र पेश करना पड़ता था या एक व्यक्ति को नसबन्दी के लिए लाना पड़ता था।

सरकार ने जब यह दावा किया था कि आपातस्थिति का ग्रामों पर कोई असर नहीं पड़ा है और देहात के लोग विभिन्न स्वतन्त्रताओं के निषेध को लेकर बुद्धिजीवियों के शोर-गुल में कोई रुचि नहीं रखते तो वह शायद सही ही थी। लेकिन यह बात आरम्भ की ही है। जल्द ही आपातस्थिति ने, बहुत-कुछ बदले की भावना से भरकर देहातों पर चोट की। वह नसबन्दी के कपड़ों में वहां पहुंची। गांव के मुखिया जब नसबन्दी के लिए आदमी न पाते, तो उनका अपमान किया जाता और उन्हें जलील किया जाता। लोगों को मूलभूत अधिकारों से वंचित कर दिया गया और वे बेबस देखते रहे। लोगों को घरों से खींच लाकर आपरेशन की मेज़ पर डाल दिया गया। अनिच्छुक अधिकारियों को, जिनका परिवार-नियोजन के काम में कोई मन नहीं था, मजबूर किया गया कि वे आम आदमी पर दबाव डालें और उसे तंग करें। परिवार नियोजन और नसबन्दी के कार्यक्रमों ने अधिकारवादी एवं निरंकुश शासन की झलक ग्रामवासियों को दी।

आरम्भ में लोग हक्के-बक्के रह गए। ऐसे अमानुषिक व्यवहार के लिए वे तैयार नहीं थे। लेकिन जल्द ही जब एक के बाद एक गांव पर घेरा डाला गया और लाठियों से सज्जित पुलिसवाले लोगों को ज़बरदस्ती नसबन्दी शिविरों में ले जाने लगे तो जनता में विद्रोह भड़क उठा।

प्रेस पर सेंसर होने के कारण ऐसे विद्रोहों की खबरें दबा दी गईं। धीमे-धीमे एक मुंह से दूसरे मुंह तक खबरें फैलीं। बाज़ारों और ज़िला-केन्द्रों में आने वाले ग्रामवासियों से लोग जनता एवं पुलिस के बीच हुई हिंसक मुठभेड़ों के बारे में सुनने लगे। जब 27 सितम्बर को फरीदाबाद में मज़दूरों और पुलिस के बीच झड़प हुई (विश्वास किया जाता है कि इसमें एक पुलिस अधिकारी मारा गया) तो 15 मील दूर दिल्ली के नागरिक इस घटना से एकदम बेखबर थे। इसी प्रकार, लगभग इसी समय गुड़गांवा ज़िले के नगीना गांव में घटी घटना में जबरन

नसबन्दी का विरोध करते हुए दो व्यक्ति मारे गए थे और कई दिनों तक ज़िला केन्द्र को भी इसकी कोई खबर नहीं थी।

उत्तर प्रदेश में मुज़फ्फरनगर और सुलतानपुर ज़िलों में गांवों की घेराबन्दी करके लोगों को नसबन्दी शिविर में ले जाने के पुलिस के आतंकवादी तरीकों के विरुद्ध जो विद्रोह हुआ था वह अब इतिहास का हिस्सा है। मुज़फ्फरनगर में 18 अक्टूबर को पुलिस की गोलियों से 40 आदमी मरे बताए जाते हैं। सुलतानपुर ज़िले के रनकिधी स्थान पर, जहां पुलिस की गोली से लगभग एक दर्जन व्यक्ति मरे थे, क्रुद्ध भीड़ ने हमला करके ज़िला मजिस्ट्रेट को घायल कर दिया था। पुलिस गांवों को घेर लेती थी और प्रजनन की आयु के हर पुरुष को पकड़कर और उन्हें पशुओं की तरह घेर कर नसबन्दी शिविरों में ले जाती थी। इससे लोग अपमानित महसूस करते थे। उनके सम्मान, उनके पौरुष और जैसे वे चाहें सोचने और रहने के उनके मूलभूत अधिकार को इससे चुनौती मिलती थी। वे समझ गए कि एक निरंकुश शासन में क्या-कुछ हो सकता है। उत्तर प्रदेश में नसबन्दी का, मार्च 1977 तक का मूल लक्ष्य 4 लाख था। राज्य के मुख्यमन्त्री ने इसे बढ़ाकर 15 लाख कर दिया था।

राज्य सरकारें अपने इस रुख को गुप्त नहीं रखती थीं। बिहार सरकार की एक प्रेस-विज्ञप्ति में कहा गया था कि तीन से अधिक बच्चों वाले व्यक्ति सरकारी नौकरी अथवा प्रतियोगिता-परीक्षाओं के हकदार तब तक नहीं होंगे जब तक वे नसबन्दी नहीं करा लेते। तीन से अधिक बच्चों वाले सरकारी कर्मचारियों को मुफ्त चिकित्सा, सरकारी आवास, सहयोगी दुकानों की सुविधाओं, अगली पदोन्नति आदि से वंचित कर दिया गया था।

श्रीमती गांधी बराबर इस बात से इन्कार करती रहीं कि परिवार-नियोजन एवं नसबन्दी अभियानों में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती की जा रही है। क्या यह हो सकता है कि प्रधानमन्त्री को उन गोलीकांडों का कुछ ज्ञान न था, जिनमें अनेकों निहत्थे नागरिक पुलिस द्वारा मार डाले गए थे? विदेशों से अपनी भेंटवार्ताओं में उन्होंने घोषणा की कि लोगों को परेशान नहीं किया जा रहा है और कोशिश यह की जा रही है कि सम्बन्धित लोगों में रुचि पैदा की जाए, जिससे वे अपनी इच्छा से कार्यक्रम को ग्रहण करें। उन्होंने केवल इतना ही स्वीकार किया कि "जब कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का काम नौकरशाही और अफसरों पर छोड़ दिया जाता है तो वे बहुत कुछ कल्पनाशून्य तरीके से उसे करते हैं।"

बाद में नसबन्दी के आपरेशन करने वाले डाक्टर और आदमियों को लाने वाले ग्रामीण-अधिकारी भी इस अरुचिकर काम से उकता उठे। असल में इस अत्याचार से असहमत, पीड़ितों से डाक्टरों को सहानुभूति थी, क्योंकि निर्धारित

लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ज़िम्मेदार लोग स्वयं उन्हें तंग करते और अपमानित करते थे।

परिवार-नियोजन के नाम पर किए जाने वाले अत्याचारों के विस्तृत ब्यौरे सेंसर में ढील पड़ने पर जब अखबारों में छपे तो श्रीमती गांधी, संजय और अन्य नेताओं ने इन ज़्यादतियों के लिए नौकरशाही को बदनाम करना शुरू कर दिया। इस प्रकार, जिन अधिकारियों को उन्होंने बलि का बकरा बनाना चाहा, उन्हें भी उन्होंने अपने विरुद्ध कर लिया। लेकिन त्रस्त जनता को धोखा नहीं दिया जा सकता था। ग्रामवासी बराबर यह गाते रहे: नसबन्दी के तीन दलाल, इन्दिरा, संजय, बंसीलाल।

13

बंसीलाल के कारनामे

बहुत से लोगों का विश्वास है कि संजय के पीछे जो दुष्ट प्रेरणा थी, वह बंसीलाल की थी और वही संजय की निरंकुश मनमानियों के लिए बड़ी दूर तक ज़िम्मेदार है। काम कराने के जो अनगढ़ और कठोर तरीके बंसीलाल ने अपने राज्य हरियाणा में इस्तेमाल किए, उनकी झलक युवक संजय की कार्यपद्धति में और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों के प्रति न्यूनतम आदर में साफ दीख पड़ती है।

हरियाणा के मुख्यमन्त्री के रूप में भी और बाद में भी बंसीलाल एक सामन्ती फौजदार की तरह काम करता था और राज्य को अपनी रियासत और लोगों को अपनी 'रैयत' मानता था। कानून के शासन का उसके लिए कोई उपयोग नहीं था, और उसने एक प्रखर व्यक्तिगत निरंकुशता की स्थापना की थी। इसके लिए उसने पुलिस को एक दमनकारी यन्त्र के रूप में रूपान्तरित कर लिया था, जिससे ज़िद्दी लोगों से चाबुक के बल पर आज्ञाओं का पालन कराया जा सके। बंसीलाल के कामों की तरह ही उसकी ज़ुबान भी अनगढ़ थी। उसने अपने राज्य में ईदी अमीन का 'उत्तम' शासन स्थापित किया था, जहां उसके रास्ते में आए हर व्यक्ति से पर पीड़नवाद तक पहुंची अकथनीय क्रूरता का व्यवहार किया जाता था।

इस प्रकार, जहां वह पूरे राज्य को अपनी निंजी जायदाद समझता था, वहां गरीब किसानों की लगभग 400 एकड़ उपजाऊ ज़मीन को मारुति फैक्टरी के लिए संजय गांधी को दे देने में उसे कोई हिचक नहीं हुई थी और अपने युवक मित्र के लिए नियमों और कानूनों को तोड़ने में उसने कोई दुविधा महसूस नहीं की थी। राज्य की सम्पत्ति की कीमत पर संजय को खुश करने में बंसीलाल का क्या उद्देश्य था, यह नीचे की घटना से अच्छी तरह समझ में आ जाता है और यह घटना उसकी अनगढ़ ज़ुबान का नमूना भी पेश करती है।

एक दिन, वह दफ्तर से लौटकर अपने जीहुज़ूर और तलवे चाटने वाले अनुयायियों से घिरा आराम कर रहा था। उनमें से एक ने अपने स्वामी से पूछा कि उसकी सफलता का रहस्य क्या है। बंसीलाल ने डींग मारी, "तुम जानते हो, कांग्रेस का चिह्न गाय और बछड़ा है। मैंने बछड़े को कब्ज़े में ले लिया है और गाय बछड़े से प्रेम करने के लिए स्वतः ही मेरी ओर दौड़ी आती है। दूसरे शब्दों में गाय हर समय मेरे इशारे की गुलाम है। मेरा मतलब तुम समझ रहे हो न! यही मेरी सफलता का राज़ है।"

एक अकुशल, अनुभवहीन, अहंकारी युवक संजय बहुत आसानी से वंसीलाल के जादू में आ गया और एक बार युवराज उसकी जेब में आया तो प्रधानमन्त्री उसकी हर बात सुनने लगीं। अब उसने सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों को, यहां तक कि दूसरे राज्यों के मुख्यमन्त्रियों, विशेषकर उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री को नीचा दिखाना शुरू कर दिया।

रक्षा मन्त्री के रूप में वंसीलाल ने सशस्त्र सेनाओं के प्रमुखों पर ज़ोर दिया कि वे अपने औपचारिक समारोहों में उसके अतिरिक्त संजय को भी पूरा आदर दें। इसके बाद उसने चाहा कि सेना-प्रमुखों के साथ उसके सम्मेलनों में संजय भी मौजूद रहे। सेना-प्रमुखों ने निश्चय ही इस मांग का विरोध किया।

बंसीलाल ने अपने विरोधियों से जो वदले लिए, उनकी कहानियां अनगिनत हैं और उनमें अधिकतर इतनी भयावह हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस वात के उदाहरण हैं कि पूरे परिवारों को तंग किया गया, पीटा गया, सताया गया, उनकी सम्पत्ति छीन ली गई और उन्हें राज्य के वाहर खदेड़ दिया गया; सिर्फ इसलिए कि उनके किसी सदस्य ने बंसीलाल की इच्छाओं का विरोध किया अथवा बंसीलाल के भ्रष्ट तरीकों के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस किया।

वंसीलाल राजनीति के क्षेत्र का एक नया नवाव है। वह ज़िले का एक बेकार वकील था। एक बार उसने चन्द्रावती के चुनाव एजेंट के रूप में काम किया था। बाद में इसी चन्द्रावती ने भ्रष्ट शासन के लिए उसकी निन्दा की। 1977 के महान् चुनाव में बंसीलाल को भारी बहुमत से हराकर चन्द्रावती ने अपना वदला लिया।

उसका राजनीतिक जीवन निष्ठा-हीनता और विश्वासघात से भरा हुआ है। सातवें दशक के आरम्भ में बंसीलाल श्री गुलजारीलाल नन्दा के निकट आया। उन्होंने हरियाणा राज्य विधानसभा के लिए कांग्रेस का टिकट उसे दिला दिया। राज्य विधानसभा में वंसीलाल ने राज्य के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री भगवतदयाल शर्मा के प्रति अपनी वफादारी दिखाई। 1967 में जब श्री शर्मा के मन्त्रिमण्डल पर संकट आया तो वंसीलाल ने अपने को चुपचाप अलग खींच लिया। असल में, विधानसभा के उस महत्त्वपूर्ण अधिवेशन में वह मौजूद ही नहीं था, जिसमें विरोधी पक्ष ने शर्मा मन्त्रिमण्डल को उलटने की कोशिश की थी। वाद में बंसीलाल ने शर्मा को स्पष्टीकरण दिया कि वह अधिवेशन में इसलिए नहीं आ सका था क्योंकि किसीने उसे उसके ही कमरे में वन्द कर दिया था। बाद में उसने श्री शर्मा से मेल कर लिया और जब श्री शर्मा को प्रदेश कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया तो वंसीलाल एक समझौता उम्मीदवार के रूप में मुख्यमन्त्री चुन लिया गया।

एक वार सत्ता में आते ही बंसीलाल अपनी स्थिति को मज़वूत बनाने में जुट गया। नियमों और पद्धतियों का उसके लिए बहुत ही कम उपयोग था। सभी औपचारिकताओं और फाइलों का उल्लंघन करके तत्काल काम कराने में वह

चतुर था। उसके इस गुण की लोगों ने कुछ समय तक प्रशंसा की।

राज्य विधानसभा के भीतर भी बंसीलाल आलोचना सहन नहीं करता था और उसके प्रशासन में और सब कहीं भ्रष्टाचार बेरोक फैला। जब सार्वजनिक नेताओं ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई तो उसने विभिन्न तरीकों से उनसे छुट्टी पा ली। चन्द्रावती बंसीलाल की रिश्तेदार थी और उसकी सरकार में एक मन्त्री थी। जब उसने राज्य में बढ़ते भ्रष्टाचार के लिए मुख्यमन्त्री की आलोचना की तो बंसीलाल ने उसे अपने मन्त्रिमण्डल से निकाल दिया। जब वह भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपने आन्दोलन में जुटी रही तो बंसीलाल ने उसे कहलाया कि या तो वह उससे मेल कर ले नहीं तो उसके भाई जेल में होंगे। जब चन्द्रावती ने इस सलाह की भी उपेक्षा कर दी तो बंसीलाल ने उसके भाई के विरुद्ध फौज़दारी का मामला खड़ा करके उसे गिरफ्तार करा दिया।

अन्धेरगर्दी उसके शासन की सामान्य विशेषता थी। लेकिन उसके कुछ कारनामे उसकी भीषण क्रूरता में अद्वितीय हैं। एक ऐसा ही काण्ड है 'रिवासा का काण्ड'। इस भयानक घटना के पूरे तथ्य दबा दिए गए थे और आज भी कोई पूरी तरह नहीं जानता कि क्या गुज़रा था, लेकिन नीचे उसका सबसे अधिक स्वीकृत रूप दिया जा रहा है।

बंसीलाल के बेटे सुरेन्द्र सिंह ने रिवासा गांव के निवासी कालिज के एक छात्र भंवरसिंह से एक बस-अड्डे पर झगड़ा कर लिया। हाथापाई हुई। बाद में पुलिस ने भंवरसिंह के परिवार के कुछ सदस्यों को थाने में बुलाया और उन्हें पीटा। इससे भी सन्तुष्ट न होकर पुलिस भंवरसिंह की मां और उसके भाई को थाने ले गई। वहां उन्हें एक दूसरे की मौजूदगी में नंगा कर दिया गया और एक ही खाट पर लेटने को मजबूर किया गया। भंवरसिंह के घर पर छापे के दौरान एक पुलिस वाले ने उसकी 80 वर्षीय दादी को ठोकर मारी जो बाद में चोट के कारण मर गई। इस घटना ने पूरे देहात को हिला दिया। लगभग 90 गांवों ने पंचायतें कीं और प्रण किया कि अगले चुनावों में बंसीलाल को हराकर इस अत्याचार का बदला लेंगे।

बंसीलाल ने हरियाणा में सम्पन्नता लाकर जाट किसानों की प्रशंसा प्राप्त की थी। कभी यह राज्य अभावग्रस्त था। सिंचाई की नहरों के जाल को और खाद को धन्यवाद कि यह राज्य देश का अन्न-भंडार बन गया। हरियाणा-दिल्ली सीमा पर स्थित फरीदाबाद एक प्रमुख औद्योगिक केन्द्र बन गया, जहां हज़ारों लोगों को काम मिला। बंसीलाल ने पूरे देहात को उद्योगों, विश्राम गृहों और पर्यटन केन्द्रों से भर दिया। हर गांव को पक्की सड़कों और बिजली से जोड़ दिया गया। उसने गांवों में बिजली ले जाने के लिए 50 करोड़ की एक योजना बनाई

और राज्य के विजली बोर्ड को अपने पिट्ठुओं से भर दिया। वोर्ड भ्रष्टाचार के लिए वदनाम हो गया।

वह प्रेस से घृणा करता था और संवाददाताओं से वहुत ही कम मिलता था। चण्डीगढ़ से निकलने वाले एक अत्यन्त प्रतिष्ठित और स्वतन्त्र वृत्ति के अंग्रेज़ी समाचारपत्र 'ट्रिब्यून' के विरुद्ध उसने बदले का अभियान छेड़ दिया था, क्योंकि पत्र ने उसके तानाशाही, भ्रष्ट शासन की आलोचना की थी। उसने पत्र को सरकारी विज्ञापन दिए जाने वन्द कर दिए और 'ट्रिब्यून' की प्रतियां ले जानेवाली गाड़ियों के आवागमन में बाधा पहुंचाई। सभी सरकारी संस्थाओं में इस पत्र का लिया जाना भी उसने वन्द कर दिया।

बंसीलाल का परिवार वकीलों का परिवार है। दो वेटे, एक जमाई, एक भाई, एक भतीजा और सभी वकील। कहा जाता है कि हरियाणा में कोई भी, तब तक कोई मुकद्दमा नहीं जीत सकता था, जब तक वह चौधरी बंसीलाल के परिवार का वकील न करे। उसका युवक वेटा वड़ी कम्पनियों का कानूनी सलाहकार बन गया था। उसकी दो लड़कियों ने राज्य की प्रशासन-सेवा में प्रवेश पा लिया था। जमाई को राज्य के विजली वोर्ड में सतर्कता-निदेशक नियुक्त किया गया था।

परपीड़न में भी वंसीलाल की एक पद्धति थी। विभिन्न वर्गों के लोगों के लिए वह दमन के अलग-अलग तरीके निर्धारित करता था। उदाहरण के लिए एक हरिजन किसान से दंड के रूप में उसके हिस्से की ज़मीन छीन ली जाती थी। फैक्टरी के मज़दूर को नौकरी से निकाल दिया जाता था। उसे, उसके स्त्री-बच्चों को पीटा जाता और भुखमरी के स्तर तक ले आया जाता था और उसकी झोपड़ी गिरा दी जाती थी। भूखा और आश्रयहीन वह तब घुटनों के बल चलकर उसके पास आता था और उससे दया की भीख मांगता था। यदि उसका शिकार मध्य-वर्ग का होता, तो बंसीलाल उसे फौजदारी के मामलों में फंसा देता था। प्रतिष्ठित परिवारों के लड़कों को हवालात में डालकर पीटा जाता और सताया जाता था। स्त्रियों को थाने में बुलाया जाता और उनकी बेइज़्ज़ती की जाती थी। बूढ़ों का अपमान किया जाता था। कानूनी त्रास और सामाजिक एवं शारीरिक आघातों से तंग आकर कितने ही परिवार झुक जाते थे। तनाव, आर्थिक हानि और अदालतों के चक्कर, अन्ततः अधिकतर लोगों के विरोध को तोड़ डालते थे।

बाद में जब आपातस्थिति आई तब सुरक्षा मन्त्री के आदेश पर एक साथ परिवार की तीन पीढ़ियों तक को जेल में ठूंस दिए जाने के उदाहरण मिलते हैं। आत्म-सम्मानी जाट अपनी स्त्रियों की इज़्ज़त के बारे में बहुत ही संवेदनशील होते हैं। बंसीलाल महिला अध्यापकों की बदली वहुत दूर के गांवों में और गुंडागीरी के लिए प्रसिद्ध क्षेत्रों में करा देता था और इस प्रकार उनके परिवारों और रिश्तेदारों को अपने अंगूठे के नीचे दबाकर कसता था।

एक सार्वजनिक जलसे में एक वृद्ध बंसीलाल को हार पहनाने के लिए मंच पर आया। ऐसा करते समय वह ठोकर खा गया और मेज़ पर रखा पानी का गिलास बिखर गया। बंसीलाल आपे से बाहर हो गया और उसने उस गरीब बूढ़े को ठोकर मारी और गालियां दीं।

उसके एक राजनीतिक विरोधी ने एक सभा में उसकी आलोचना कर दी। जब बंसीलाल को इसका पता लगा तो उसने कहा कि वह इस योग्य है कि उसके मुंह में विष्ठा डाली जाए। जब आपातस्थिति आ गई और नागरिकों को कानून के शासन से वंचित कर दिया गया तो बंसीलाल ने, जो अपमान अपने आलोचक के लिए तय किया था, वह उसके साथ करके दिखाया।

यह एक आम प्रथा थी कि बंसीलाल के राजनीतिक विरोधियों का मुंह काला करके उन्हें गधे पर बैठाकर, सड़कों पर उनका जलूस निकाला जाता था। बंसीलाल के विरोधियों को एक और सज़ा यह दी जाती थी कि उनकी गर्दन से एक पट्टी लटका दी जाती थी, जिस पर लिखा होता था, "मैं देशद्रोही हूं", और तब उन्हें नगर में घुमाया जाता था।

सन्देह होता है कि युगांडा का फील्ड मार्शल भी क्या इन तरीकों में कोई और सुधार कर सकता था!

प्रधानमन्त्री के घर में प्रशासक बंसीलाल एक बड़ा ही प्रशंसित व्यक्ति था। हरियाणा दिल्ली के बहुत ही निकट है। बंसीलाल अक्सर राजधानी आता और प्रधानमन्त्री से मिलता था। अन्यों की तरह बंसीलाल ने भी संजय की मोटर बनाने की फैक्टरी के बारे में सुना। वह भी उनमें से एक था, जिन्होंने संजय से कहा : तुम प्रधानमन्त्री के बेटे हो। तुम जिस चीज़ के लिए भी कहो, वह तुम्हें मिल सकती है। संजय ने अपनी फैक्टरी के लिए ज़मीन चाही। बंसीलाल ने अपने राज्य के छोटे किसानों की 445 एकड़ ज़मीन एकदम उसके हवाले कर दी। मारुति की कहानी (अध्याय 14) बंसीलाल की प्रशासनिक साहसिकता की कहानी भी है।

1975 में, अब तक संजय के दोस्त, पथप्रदर्शक और तत्वदर्शी बंसीलाल के इशारे पर संजय ने केन्द्रीय मंत्रिमंडल के फेर-बदल को प्रेरित किया। फलतः, श्री स्वर्णसिंह को निकाल बाहर किया गया और उनके स्थान पर हरियाणा के फौजदार को सुरक्षा मंत्री के रूप में राष्ट्रीय परिधि में ले आया गया।

कहा यह जाता है कि संजय अब सुरक्षा सामग्री के ठेकों में रुचि लेने लगा था और स्वर्णसिंह से व्यवहार करना कठिन मालूम पड़ रहा था। संजय ने यह समस्या अपने अन्तरंग बंसीलाल को बताई। विश्वास किया जाता है उसने संजय को सलाह दी : इसका समाधान सरल है। तुम प्रधानमंत्री के बेटे हो। तुम कुछ भी कर सकते हो। स्नेहशील मां ने बेटे का मनचाहा कर दिया। अगली बात जो हमने

जानी, वह यह है कि बंसीलाल को सुरक्षामंत्री बना दिया गया।

एक भलाई के बदले दूसरी भलाई की जाती है। जिगरी दोस्तों के बीच ऐसा विशेष रूप से होता है। बंसीलाल ने अनेकों हृदयस्पर्शी रूपों में अपने महान् मित्र के प्रति कृतज्ञता दिखाई। उसने एकदम आदेश दिया कि सैनिक शिष्टाचार-क्रम में संजय को सबसे ऊंचा स्थान दिया जाए। सशस्त्र सेनाओं के प्रमुखों ने आपत्ति की। नौसेना के एक समारोह में सुरक्षा मन्त्री ने नौसेना प्रमुख को डांटा कि संजय को भारत के राष्ट्रपति से अगली कुर्सी क्यों नहीं दी गई। नौसेना प्रमुख ने यह बात मानने से इंकार कर दिया, लेकिन इतनी रियायत कर दी कि संजय को कक्ष में सबसे अगली पंक्ति में जगह दे दी। सुरक्षा-विभाग की वरिष्ठ नियुक्तियों के बारे में भी संजय से सलाह ली जाती थी। बदमिजाज़ बंसीलाल अपने हर वाक्य में गाली या शपथ का शब्द इस्तेमाल करता था और सशस्त्र सेनाओं के अफसरों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता था।

आपातस्थिति के दौरान जो थोड़े-बहुत अटकाव बंसीलाल के भीतर बचे थे, उन्हें भी उसने हवा में उड़ा दिया। अपने राज्य में उसने आतक का नंगा नाच करवाया। दिल्ली आ जाने के बाद भी, अपने मनोनीत बनारसीदास गुप्त के माध्यम से, वहां का शासन वही कर रहा था। जब संजय ने दिल्ली में और उत्तर के अन्य प्रदेशों में अपना नसबन्दी अभियान चलाया तो बंसीलाल कैसे चाह सकता था कि उसका राज्य पीछे रहे। हरियाणा में हर नियुक्ति, हर ठेका, हर योजना, अब भी बंसीलाल के द्वारा स्वीकृत और मान्य होकर ही लागू होती थी। उसका बेटा एक समानान्तर सरकार चला रहा था और मुख्यमन्त्री श्री बनारसीदास गुप्त की जानकारी के बिना भी बदलियों, पदोन्नतियों, ठेकों, नियुक्तियों तथा लोगों की गिरफ्तारी और मुक्ति के आदेश जारी कर रहा था।

सुरेन्द्रसिंह हरियाणा में युवा कांग्रेस का नेता था। बाप और बेटे ने तय किया कि संजय के परिवार-नियोजन कार्यक्रम को अपने राज्य में आश्चर्यजनक रूप से सफल बनाया जाए। वे अधकचरे तरीकों में विश्वास नहीं रखते थे। लोगों को सार्वजनिक बसों से खींचकर बाहर निकाला गया, कारखानों में से घेरकर लाया गया और नसबन्दी शिविरों में भेज दिया गया। पूरे के पूरे गांवों को ठीक आधी रात में घेर लिया गया और योग्य पुरुषों को बाहर लाकर आपरेशन की मेज़ पर डाल दिया गया।

पीपली गाव का एक सन्तानहीन विधुर युवक 25 वर्षीय हवासिंह किसी काम से मंडल के दफ्तर गया था। रास्ते में अन्य योग्य यात्रियों के साथ उसे भी बस से उतार लिया गया और उसकी नसबन्दी कर दी गई। बाद में उसका घाव पक गया और वह युवक मर गया।

इसके कुछ ही दिन बाद मंडल विकास अधिकारी पीपली गांव आया और

उसने नसबन्दी के लिए व्यक्ति मांगे। हवासिंह की मौत के बाद गांववाले बहुत खिन्न थे। फिर भी गांव के बड़ों ने योग्य पुरुषों को नसबन्दी के लिए तैयार करने का वचन दिया। लेकिन मंडल अधिकारी खाली हाथ लौटना नहीं चाहता था। इसलिए रास्ते में पड़ी हरिजन बस्ती से उसने एक मोची को पकड़ लिया।

अगले दिन मंडल अधिकारी फिर आया। लेकिन नसबन्दी के लिए जाने में लोगों को अनिच्छुक ही उसने पाया। इसपर मंडल अधिकारी और उसके सहायकों ने हरिजन बस्ती के कुछ लोगों पर ताकत का इस्तेमाल किया। अब स्त्रियां बाहर निकल आईं और उन्होंने इस जुल्म का विरोध किया। इससे मारपीट हुई, जिसमें मंडल अधिकारी घायल हो गया। गांववालों ने इस दल को बाहर खदेड़ दिया।

इस घटना के बाद पीपली के लोग अस्थिर हो उठे। पुलिस के अत्याचार की खबर चारों ओर फैल गई और अगली सुबह ही आस-पास के गांवों से हज़ारों आदमी आकर पीपली में इकट्ठे हो गए (कुछ सिर्फ दर्शकों के रूप में आए, लेकिन जो स्वयं पुलिस द्वारा सताए जा चुके थे, वे सहानुभूति में आए। अधिकारियों ने अब पीपली से निबटने की तैयारी की।

पीपली के निवासियों के अनुसार पुलिस कुछ सौ की संख्या में गांव में आ धमकी। इस दल के अधिकारी ने पीपली के पुरुषों को बाहर निकल आने का आदेश दिया। जब वे बाहर निकल आए तो पुलिस ने गांव को घेर लिया। लगता है लोगों को डराने के लिए ही पुलिस ने कुछ गोलियां छोड़ी थीं। लेकिन एक गोली आंगन में काम करती एक स्त्री को लगी और वह वहीं मर गई। दूसरी गोली पड़ोसी गांव से आए एक व्यक्ति को लगी और वह भी मारा गया। एक तीसरा आदमी घायल हो गया।

अब आतंक और गड़बड़ी फैल गई। अब तक पास के गांवों से और भी अधिक लोग आ पहुंचे थे और भीड़ बढ़कर लगभग एक लाख हो गई थी। पुलिस सशस्त्र थी, पर इतनी बड़ी भीड़ का मुकाबला नहीं कर सकती थी। इसलिए पुलिसवाले वापस लौट गए। भीड़ में से बहुत काफी लोग अगले कुछ दिनों तक गांव में ही ठहरे रहे और पुलिस के जुल्म से पीपली की और उसके निवासियों की रक्षा करने के लिए तैयार रहे। पीड़ितों की ओर से संगठन का यह एक अनोखा उदाहरण था।

कुछ दिनों बाद पुलिस वाले फिर गांव में आए। गांव अब भी तनावपूर्ण और क्रुद्ध था। सरकारी अधिकारियों ने अब बात को समेटना चाहा। उन्होंने गांववालों से कहा कि इस पूरी दुर्भाग्यपूर्ण घटना को भुला दिया जाएगा यदि वे अपने यहां के योग्य पुरुषों को नसबन्दी केन्द्र में भेज दें। अधिकारियों ने चेतावनी दी कि ऐसा न होने पर पूरे गांव को मिट्टी में मिला दिया जाएगा। गांववालों ने सोचा

कि नसबन्दी के लिए आदमी देने के सिवाय और कोई चारा नहीं है।

एक दूसरा गांव जहां लगभग हर योग्य व्यक्ति की जबरन नसवन्दी कर दी गई थी, राजस्थान सीमा का उटावर गांव था। इसमें लगभग पूरी आबादी मेवों की है। यहां भी पुलिस ने आधी रात में गांव पर घेरा डाला और दिन निकलने तक एक-एक पुरुष को घरों से बाहर निकाल लिया। जब सड़क पर पुरुषों को इकट्ठा किया और गिना जा रहा था, तो पुलिस छुपे हुए पुरुषों की तालाश में घरों में घुस गई। पता नहीं कुछ छुपे हुए पुरुष उन्हें मिले या नहीं, लेकिन निश्चय ही सोने-चांदी के गहनों समेत छुपाकर रखी हुई कीमती चीजें उनके हाथ आईं। तब पुलिस वालों ने अनाज के कनस्तरों, अलमारियों और कोठारों में स्त्रियों द्वारा छुपाई गई नकदी पर हाथ साफ किया। जब स्त्रियों ने विरोध किया तो उन्होंने उनसे दुर्व्यवहार किया और उनके वर्तनों और कूंड़ों आदि को तोड़ डाला।

पुरुषों को सीधे नसवन्दी केन्द्रों में नहीं ले जाया गया। उन्हें पहले पुलिस थाने में ले जाया गया, जहां उनके विरुद्ध मारपीट के, शस्त्र रखने के और कानून एवं व्यवस्था के लिए खतरा होने के मामले दर्ज किए गए, जिससे वे पुलिस निगरानी से भाग न सकें। तब जाकर उन्हें नसबन्दी केन्द्र में लाया गया। उस एक अकेले गांव से एक महीने में 1200 से ऊपर व्यक्तियों की नसवन्दी की गई।

कठोर सेंसर को धन्यवाद, अधिकारियों द्वारा की गई इन नृशंसताओं की कोई खबर उस समय प्रकाश में नहीं आई। ब्यौरे क्रमशः रिस-रिसकर फैले और इस सबके लिए ज़िम्मेदार सरकार से बदले की शपथ लेने के लिए इन ब्यौरों ने लोगों को उत्तेजित किया।

लेकिन, गरीबों की नसबन्दी के लिए उन पर ताकत के इस्तेमाल का जहां तक सम्बन्ध है, हरियाणा के गांव अपवाद नहीं थे। इसी प्रकार के भयावह अनुभवों की कहानियां दिल्ली, उत्तर-प्रदेश और पंजाब से भी आ रही थीं। हरियाणा के बारे में खास बात यह थी कि राज्य के प्रशासन में भ्रष्टाचार का सड़ा हुआ मवाद भरे होने के साथ-साथ इस अभियान में ठेठ वंसीलाल के ढंग का जुल्म भी शामिल कर दिया गया था।

हरियाणा राज्य विधानसभा के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने एक बार कहा था कि अरब देशों में यदि कोई एक फावड़ा चलाए तो तेल निकलकर बाहर आता है। उसी तरह हरियाणा की धरती में से ज़रा-सा खोदने पर भ्रष्टाचार बाहर फूटता है। यद्यपि सख्त जाट दब गए लगते थे, लेकिन वे चतुर लोग थे और बदले के लिए समय का इन्तज़ार कर रहे थे।

मधुर प्रतिशोध का अवसर अचानक और अप्रत्याशित रूप में उस समय

आया जब जनवरी 1977 में श्रीमती गांधी ने देश में चुनावों की घोषणा कर दी। वंसीलाल ने लोगों की उदासीनता को अधीनता का चिह्न समझ लिया। अपने असीमित अहंकार में पहले तो उसने सोचा कि अपने चुनाव-क्षेत्र भिवानी में एक बार जाने की भी जरूरत नहीं है। अपनी विजय को उसने निश्चित मान लिया था।

तब उसने दूर से आती जनता लहर की गड़गड़ाहट सुनी। आपातस्थिति में ढील आते ही उसने सुना कि गांववाले उसके विरुद्ध फुसफुसा रहे हैं और व्यापारी विद्रोह कर उठे हैं। वह अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सका। उनकी इतनी हिम्मत ! और तभी सेंसर के उठने से बन्धन-मुक्त हुए समाचारपत्रों में हरियाणा के देहातों में घटी घटनाओं की भयानक सच्चाई प्रकाशित होकर सबके सामने आ गई। इसने राज्य सरकार और विशेषकर वंसीलाल के विरुद्ध लोगों के क्रोध को भड़का दिया।

वंसीलाल थोड़ा हिला। अब वह किसानों से मिलने और उनसे बात करने के स्तर तक नीचे उतर आया। उसने सीधे किसानों पर प्रभाव डालने की कोशिश की। उसने उनसे कहा, "देखो इन्दिरा गाधी ने मुझे कितनी बड़ी कार दी है। इन वर्दीधारी नौकरों की ओर देखो। पूरी सेना मेरे चरणों में है। मैं धरती पर नहीं चलता। मैं एक मील ऊपर आकाश में उड़ता हूं। तुम लोग सोचते हो, मैं इतनी ऊंची कुर्सी को छोड़ दूंगा ? मैं इससे चिपका रहूंगा और चुनावों के बाद इन्दिरा गांधी मुझे पहले से भी कहीं ज्यादा अधिकार देगी।"

दीन-हीन गांववाले चुपचाप उसकी बातें सुनते रहे।

वंसीलाल ने राज्य सरकार को आदेश दिया कि उसके लिए जनसभाओं का आयोजन किया जाए। वह अपनी बड़ी कार में बैठकर उन सभाओं में पहुंचा। उसके साथ उसका अनुचर समूह रहता था, जिसमें डिप्टी कमिश्नर, बड़े पुलिस अधिकारी, अंगरक्षक, क्लर्क और नौकर-चाकर थे। लोगों पर इसकी कोई छाप नहीं पड़ी। वे आतुरता से चुनाव के दिन की प्रतीक्षा कर रहे थे। वंसीलाल ने अब उनसे कहा कि वे बेवकूफ हैं और जनता सरकार भी परिवार-नियोजन के लिए वचनबद्ध है।

राज्य में उसके कारिन्दे मुख्यमन्त्री बनारसीदास ने लोगों का ध्यान उन सुविधाओं की ओर, अर्थात् सिंचाई की नहरों, सड़कों व बिजली आदि की ओर खींचा, जो कांग्रेस से उन्हें मिली थीं। उसने कहा, उन्हें वंसीलाल का अहसानमन्द होना चाहिए और उसे मत देने चाहिए।

गांव वालों ने करारा जवाब दिया, "तुम सड़कों को तोड़ दो, सिंचाई की नहरों को भर दो और बिजली के खम्भों को उखाड़ ले जाओ। हमें इनमें से कुछ

नहीं चाहिए। हम सिर्फ शान्तिपूर्वक, सम्मानपूर्वक जीना चाहते हैं।" उन्होंने जेलों में नज़रबन्द लोगों की ओर इशारा किया।

इसपर बंसीलाल ने सीधा बनकर उत्तर दिया कि आप लोगों को गलत सूचनाएं दी गई हैं। जेलों में कोई नज़रबन्दी नहीं है। जिन थोड़े से लोगों को पहले नज़रबन्द किया गया था, जेलों में रहकर वे मोटे हो गए हैं। कौन कहता है, उनके साथ दुर्व्यहार किया गया है?

लेकिन बंसीलाल के किसी झूठ और किसी चालाकी ने काम नही दिया। अब क्रूर बंसीलाल नम्र और निराश बन उठा। समय आया जब बंसीलाल ने लोगों से सार्वजनिक रूप में माफी मांगी। भिवानी में वह मतदाताओं के सामने हाथ बांध कर खड़ा हो गया। उसने प्रार्थना की, "जब मैंने मुख्यमन्त्री के रूप में आप लोगों की सेवा की थी, उन पिछले सवा आठ वर्षों में गलतियां मुझसे हुई होंगी। यदि मैंने गलतियां की हैं तो मैं हाथ जोड़कर उनके लिए क्षमा चाहता हूं। मैं अच्छा हूं या बुरा, मैं आपका हूं। आप मुझे हरा भी सकते हैं और जिता भी सकते हैं। लेकिन याद रखिए जब मैं केन्द्रीय सरकार से बाहर आ जाऊंगा, तो अगले पन्द्रह वर्षों में भी भिवानी को वहां प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा। मैं आप पर विश्वास करता हूं। और मुझे विश्वास है भिवानी मुझे कभी धोखा नहीं देगी।"

अपने ठेठ तरीके से ही, लगभग उसी समय एक दूसरी चुनाव सभा में, उसे चुनौती देने का साहस करने और उसके विरुद्ध मत देने की सोचने तक की हिम्मत करने के लिए बंसीलाल ने मतदाताओं को गालियां दीं। उसने बौखलाकर कहा, "20 मार्च निकल जाए। तुममें से हर एक को मैं सबक सिखाऊंगा।" निराश स्थिति में पड़े एक महत्त्वोन्मादी की तरह वह बोल रहा था।

चिन्तित मतदाता तसल्ली के लिए चुनाव-क्षेत्र में उसकी विरोधी श्रीमती चन्द्रावती के पास गए। उनका जवाब सीधा था, "उसे मौका ही न दो कि वह तुम्हें सबक सिखाए। चुनाव में हराकर उसे बाहर कर दो। इस समय ताकत तुम्हारे हाथों में है। यदि यह मौका तुमने खो दिया तो तुम हमेशा के लिए पिस जाओगे।" मतदाता उससे सहमत थे। श्रीमती चन्द्रावती 161000 मतों से जीत गईं।

यह कहना ठीक नहीं होगा कि बंसीलाल को कोई समर्थन नहीं मिला। जनता पार्टी के उसके विरोधी को दुःख रहा कि उसकी ज़मानत ज़ब्त नहीं हुई। लेकिन पूरा सरकारी तन्त्र और असीमित वित्तीय साधन उसके पक्ष में थे। श्रीमती चन्द्रावती याद करती हैं कि आरम्भ में चुनाव प्रचार के लिए एक जीप भी उनके पास नहीं थी। असल में अपनी उम्मीदवारी का पर्चा दाखिल करने के लिए अपने गांव दादरी से सार्वजनिक बस में बैठकर वे भिवानी गई थीं। "लेकिन लोग जानते थे, मैं सच्चाई के लिए लड़ रही हूं। उन्होंने मुझे वोट भी दिए और नोट भी दिए।" उन्होंने कहा।

नई दिल्ली में 12 अप्रैल 1977 को कांग्रेस कार्यसमिति के चुनाव-बाद के आत्मस्वीकार अधिवेशन मे बंसीलाल की कठपुतली, हरियाणा के मुख्यमन्त्री बनारसीदास गुप्त ने आखिर अपने आक़ा के विरुद्ध जमी कड़वाहट को मन से बाहर निकाल ही डाला। गुप्त ने उद्‌गार रखे : कांग्रेस इसलिए हारी क्योंकि चुनाव प्रचार के लिए एक केन्द्रीय मन्त्री (उन्होंने नाम नहीं लिया, लेकिन स्पष्ट संकेत बंसीलाल की ओर था) की हर यात्रा के दौरान 5 से 10 प्रतिशत के बीच मत छिन जाते थे। गुप्त ने आगे बताया कि इस केन्द्रीय मन्त्री की ज़िद थी कि उसकी हर सभा में कम से कम एक लाख लोग होने चाहिएं। श्रोताओं को इकट्ठा करने में जनता के विशाल वर्गों, जिनमें आम आदमी, अधिकारी और दल जिनकी गाड़ियां इस्तेमाल करता था उन ठेकेदारों की नाराज़ी मोल लेनी पड़ती थी।

श्री गुप्त और हरियाणा प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष श्री निहालसिंह दोनों ने कहा : यह पहली बार है कि वे आपातस्थिति के दौरान हरियाणा के राजकीय मामलों के बारे में खुला बोल रहे हैं। गुप्त ने कहा कि वे कुछ भी करने में असमर्थ थे, क्योंकि केन्द्रीय मन्त्री ने अन्त तक उन्हें डराकर और दबाकर रखा। वस्तुतः, गुप्त को निश्चय नहीं था कि अगले दिन वे पद पर रहेंगे या नहीं।

बंसीलाल और उसका बेटा सुरेन्द्र सिंह अपने ही नगर भिवानी में इतने अलोकप्रिय हैं कि वे वापिस घर जाने का साहस नहीं कर सकते और उन्होंने दिल्ली में ही घर बना लिया है।

भिवानी लौटने में बंसीलाल के भय पर टीका करते हुए चन्द्रावती आश्वासन देती हैं, "लेकिन कोई उसे मारने को चिन्ता नहीं करेगा। लोग चाहते हैं कि वह जिये और अपने दुष्कर्मों के परिणाम भुगते।"

श्रीमती चन्द्रावती नम्रतापूर्वक कहती हैं कि उन्होंने नहीं, बल्कि बंसीलाल के अपने कारनामों ने ही उसे हराया है। लोग 19 महीनों की आपातस्थिति की बातें करते हैं। लेकिन हरियाणा वालों का कहना है कि जब से बंसीलाल राज्य का मुख्यमन्त्री बना था तभी से, पिछले नौ सालों से, वे आपातस्थितियों में रह रहे थे।

14
न्याय के मोर्चे पर

आने वाली तानाशाही की गड़गड़ाहट 1971 से ही सुनी जाने लगी थी। स्थिरतापूर्वक, क्रम-क्रम से हम इस दुर्भाग्यपूर्ण लक्ष्य की ओर बढ़ रहे थे। जिनकी चेतना अधिक संवेदनशील थी, जैसेकि अनेकों वकीलों और कुछ पत्रकारों ने हवा में मिली इस अशुभ गंध को सूंघ लिया था। कानूनी बिरादरी में अनेकों लोग इस पर उत्तेजित थे। पत्रकारों ने इस पर सम्पादकीय लिखे थे और कुछ इस कारण परेशानी में भी पड़ गए थे।

नए संविधान के लागू होने के बाद 1971 से पहले तक 21 वर्षों में, कुल मिलाकर 22 संशोधन संविधान में किए गए। यह हर 11½ महीनों में लगभग एक संशोधन बैठता है। लेकिन 1971 के बाद 1974 तक इन्दिरा सरकार ने 15 संशोधन, अर्थात मोटे रूप में हर 80 दिन के बाद एक संशोधन लागू किया। इससे भी अधिक यह कि लगभग इन सभी संशोधनों का जनता के कल्याण से बहुत थोड़ा सम्बन्ध था। इन सबका लक्ष्य किसी संभावित कानूनी अथवा संवैधानिक चुनौती के समक्ष सरकार की और विशेषरूप से प्रधानमन्त्री की स्थिति को मज़बूत करना था।

जैसाकि कानूनी बिरादरी ने चिन्तापूर्वक देखा, ये संशोधन वस्तुत: देश के संविधान के मूलभूत ढांचे को ही बदले दे रहे थे। 24 वें और 25 वें संशोधन, जो सम्पत्ति से सम्बन्ध रखते हैं, नागरिक के मूलभूत अधिकारों को ही खोखला बना रहे थे। विधि-निर्माताओं ने विवेकपूर्वक बहुत-कुछ न्यायपालिका की व्याख्या और उसकी समझ-बूझ पर छोड़ दिया था। लेकिन अब उपबन्धों को अधिक रूढ़ बनाया जा रहा था।

आलोचना के प्रति सरकार की अति संवेदनशीलता को लेकर प्रेस पहले से ही व्यग्र हो रहा था। अब उसने किसी भी असहमति के प्रति असहिष्णुता का रूप ग्रहण कर लिया था। आपातस्थिति आने के साथ इस असहिष्णुता की जगह इस धारणा ने ले ली कि, "जो मेरे साथ नहीं है, वह मेरे विरुद्ध है" और इस धारणा के आते ही विरोधी पक्ष को इस नई परिस्थिति में उसके स्थान (सींखचों के पीछे को छोड़कर) से वंचित कर दिया गया। अब एकदलीय राज्य की ओर दृढ़तापूर्वक बढ़ा जाने लगा था।

सिक्किम को एक सहयोगी राज्य का दर्जा दिए जाने की पेशकश ने भी

संविधान के पंडितों को उद्वलित किया था। वस्तुतः इस पेशकश को श्री पी० एन० लेखी ने एक याचिका में चुनौती दी। उनकी मान्यता थी कि संविधान किसी भी राज्य को ऐसा दर्जा देने की इजाज़त नहीं देता और ऐसा करने से सिक्किमवासियों को दुहरी राष्ट्रीयता (भारतीय एवं सिक्किमी) प्राप्त हो जाती है और इस प्रकार नया राज्य राष्ट्रपति की सत्ता के घेरे से इतनी दूर तक बाहर चला जाता है कि इस सहयोगी स्तर के कारण सिक्किम में राष्ट्रपति शासन लागू नहीं किया जा सकता। बाद में 'सहयोगी' धारा को नए कानून से खारिज कर दिया गया था।

कानून की व्याख्या से संबंधित एक बड़ी घटना, जिसके दूरगामी परिणाम निकले थे, श्री अमरनाथ चावला के विरुद्ध श्री कंवरलाल गुप्त की चुनाव-याचिका पर उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती द्वारा दिया गया फ़ैसला था। इसका सम्बन्ध चुनाव व्यय की मात्रा से और यदि ऐसा व्यय अनुमति सीमा से अधिक हो जाए तो उसके क्या परिणाम होंगे, इससे था।

न्यायमूर्ति भगवती का निर्णय था कि यदि कोई राजनीतिक दल चुनाव में किसी उम्मीदवार की सम्भावनाओं को बढ़ाने के लिए व्यय करता है तो वह व्यय उम्मीदवार द्वारा व्यक्तिगत स्तर पर खर्च की गई राशि में जोड़ा जाना चाहिए और यदि उसके बाद व्यय अनुमति सीमा से अधिक ठहरे तो सम्बन्धित उम्मीद-वार को चुनाव नियमों का अतिक्रमण करने के कारण अयोग्य घोषित कर दिया जाना चाहिए।

इस फैसले से इलाहाबाद के मुकद्दमे में श्रीमती गांधी को सीधी चोट पहुंचती थी, क्योंकि यह स्वीकार कर लिया गया था कि उनके चुनाव में कांग्रेस दल ने 3.5 लाख रुपये खर्च किए थे जबकि उन्होंने स्वयं कुल 18000 रुपये खर्च किए थे। इलाहाबाद के मुकद्दमे में प्रार्थी और 1971 के चुनाव में रायबरेली क्षेत्र में श्रीमती गांधी के प्रतिद्वन्द्वी श्री राजनारायण को अपनी अपील में जीतने के लिए किसी अन्य साक्षी की ज़रूरत नहीं थी।

इस फैसले के बाद जब सरकार ने चुनाव नियमों में परिवर्तन करते हुए और इन नियमों को पिछली तिथियों से लागू मानते हुए संविधान के 39वें संशोधन को पेश किया तो सरकार स्पष्ट ही अपनी सत्ता का दुरुपयोग कर रही थी। स्पष्ट था कि संविधान में यह संशोधन पूरी तरह एक व्यक्ति अर्थात् श्रीमती गांधी के निजी लाभ के लिए ही लाया जा रहा था।

आगे श्रीमती गांधी के परिवार के फैलते हुए ऐश्वर्य को लेकर भी कानूनी बिरादरी काफी चिन्ता अनुभव कर रही थी। मारुति का मामला लोगों के दिमाग को उद्विग्न कर रहा था और यह महसूस किया जा रहा था कि मारुति को जारी किया गया अनुमति-पत्र उद्योग नियमन कानून का दुरुपयोग था। यह भावना बढ़ रही थी कि व्यक्तियों की सहायता करने के लिए कानून की प्रक्रिया को

तोड़ा-मोड़ा जा रहा है और कार्यकारिणी के व्यापार का दुरुपयोग किया जा रहा है और उसे कमज़ोर बनाया जा रहा है। वस्तुतः, जब श्री जयप्रकाश नारायण ने भ्रष्टाचार से लड़ने का आह्वान किया था तब उनके दिमाग में प्रमुख मुद्दे के रूप में मारुति ही था।

वकील लोग कानून के इन तीन मूलभूत नियमों के अधिकाधिक क्षरण को लेकर बहुत चिन्तित थे : (क) न्याय के सामने समानता, (ख) पूर्व सूचनीयता तथा (ग) अनियमितता की अनुपस्थिति। नए संशोधनों ने प्रधानमन्त्री के पद को कानून की पकड़ से ऊपर कर दिया। वस्तुतः, कानून की दृष्टि में जो पहले ठीक था वही अब नये कानूनों के हिसाब से गलत हो गया और कानूनसम्मत कदम उठाने वाले नागरिक पर भी बाद में गैरकानूनी कार्यवाही का आरोप लगाया जा सकता था, क्योंकि नये कानून अतीत से लागू माने गए थे। यह सब एक आरज़ी ढंग से किया और लागू किया जा रहा था, क्योंकि अदालतें अनेकों परिवर्तनों और नए कानूनों की युक्तिसंगतता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकती थीं।

25 अप्रैल 1973 को तीन वरिष्ठतर न्यायाधीशों का हक मारकर श्री ए० एन० राय को भारत का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करके सरकार ने न्यायपालिका की स्वाधीनता पर घातक चोट की थी। यह नियुक्ति सरकार और शासक दल द्वारा एक निबद्ध न्यायपालिका के पक्ष में किये जा रहे आन्दोलन की चरम परिणति थी। इस प्रकार कार्यकारिणी के आदेश से न्याय के उच्चतम पद पर नियुक्ति के मामले में एक स्वस्थ परम्परा को तोड़ डाला गया।

लोक संघर्ष समिति की स्थापना नवम्बर 1914 में की गई थी। स्वयं को संगठित करने और गैर कानूनी कानून के विरुद्ध आन्दोलन करने और कार्यवाही करने का पर्याप्त समय वकीलों को नहीं मिला था। लेकिन वकीलों का एक उग्र दल सरकार के अकुशल एवं भ्रष्ट तरीकों के विरुद्ध आन्दोलन में श्री जयप्रकाश के साथ एकत्र हो गया था।

इस पेशकश के उग्र प्रतिवाद के रूप में और कानूनी सम्प्रदाय में फूट डालने के उद्देश्य से शासक दल ने "स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्र के पक्षधर वकीलों" का एक अखिल भारतीय सम्मेलन बुलाया, जिससे कि सरकार की नीतियों एवं कार्य-वाहियों के प्रति वकीलों के समर्थन को प्रदर्शित किया जा सके। इस घटना ने पूरी कानूनी बिरादरी को ही बहुत अधिक उद्विग्न कर डाला था।

श्रीमती गांधी के विधि मन्त्री श्री एच० आर० गोखले, भारत द्वारा संविधान के ग्रहण के 25 वर्ष पूरे होने के अवसर को मनाने के नाम पर अप्रैल 1975 में किए गए इस सम्मेलन के ज्वलन्त अगुवा थे। निमंत्रित लोगों में प्रमुख थे, भारत के सालिसिटर जनरल श्री लालनारायण सिन्हा, राज्यों के महाधिवक्तागण,

श्री रजनी पटेल, श्री वसन्त साठे तथा श्री आर० के० गर्ग। कुल मिलाकर लगभग 1000 वकील इस सम्मेलन में आए। संगठनकर्ताओं ने भाग लेने वालों को किराए दिए, उन्हें विभिन्न राजकीय अतिथिगृहों में ठहराया और उनकी अच्छी खातिर की।

यह कार्यवाही कांग्रेस दल की उस नई युद्धनीति का अंग थी, जिसके अधीन बुद्धिवादियों के विभिन्न वर्गों में से सरकार के लिए पक्षधर समर्थक संगठित किए जाने थे। इसी प्रकार, लेखकों और बुद्धिजीवियों, कलाकारों, अध्यापकों, छात्रों और डाक्टरों तक के सम्मेलन आयोजित किए गए। इन सम्मेलनों में भाषणों एवं प्रस्तावों के माध्यम से श्रीमती गांधी की सरकार के प्रति समर्थन व्यक्त किया गया था।

सरकार द्वारा प्रेरित इस वकील-सम्मेलन के अन्तिम दिन एक प्रस्ताव पेश किया गया, जिसमें श्री जयप्रकाश के आंदोलन को फासिस्ट करार दिया गया था। एक प्रमुख वकील, विरोधी पक्ष के श्री पी० एन० लेखी, जिन्होंने किसी तरह इस विशिष्ट अधिवेशन का निमंत्रण प्राप्त कर लिया था, खड़े हो गए। उन्होंने इस प्रस्ताव का ज़ोरदार विरोध किया, उग्र प्रतिकार की धमकी दी और अन्त में इस प्रस्ताव के वापिस लिए जाने में सफल हो गए।

आपातस्थिति के लागू होने के वाद जो पहली गिरफ्तारियां की गईं उनमें वकीलों की संख्या वहुत कम थी। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि संघर्ष समिति के एक चरण, वकीलों के आंदोलन, से पुलिस वहुत ही कम परिचित थी। इसलिए वकीलों में सक्रिय लोगों की पहले से तैयार सूची उसके पास नहीं थी। आठ वकील राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के साथ अपने सम्बन्धों के कारण गिरफ्तार किए गए। राजनीतिक अथवा संघर्ष समिति की गतिविधियों के कारण कुल चार ही पकड़े गए थे।

25 जून 1975 को आपातस्थिति लागू होने के साथ एक चौकड़ी की सहायता से स्थापित श्रीमती गांधी की व्यक्तिगत निरंकुशता के पक्ष में कानून के शासन को पूरे देश में निलम्बित कर दिया गया था। चौकड़ी, जिसके पास कोई संवैधानिक सत्ता नहीं थी, धमकियों, डांट-डपटों और धोखाधड़ियों के माध्यम से माफिया की तरह काम करती थी। लैटिन अमेरिका के सैनिक गुटीय शासन की याद दिलाने वाले पुलिस शासन का स्वाद इन दिनों हमें मिला।

आपातस्थिति के लागू किए जाने के वाद 27 जून के संविधान की धारा 359 के अधीन राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया कि धारा 14, 21 और 22 द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रवर्तनार्थ अदालत में जाने के व्यक्ति के अधिकार आपातस्थिति की अवधि के लिए निलम्बित कर दिए गए हैं।

जिन धाराओं के प्रवर्तन को निलम्बित किया गया, उनमें महत्त्वपूर्ण मूलभूत

अधिकार निहित हैं। धारा 14 भारत के प्रदेश के भीतर सभी व्यक्तियों को कानून के सामने समानता और कानून द्वारा समान सुरक्षा की गारन्टी देती है। धारा 21 कहती है कि कानून द्वारा निर्धारित पद्धति के सिवाय किसी व्यक्ति को उसके जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जाना चाहिए। धारा 22 निवारक नज़रबंदी के अधीन पकड़े गए व्यक्तियों को कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकार प्रदान करती है, विशेष रूप से नज़रबन्दी के आधार से सूचित किए जाने का अधिकार, नज़रबन्दी के आदेश के विरुद्ध शीघ्रतम अवसर पर आवेदन देने का अधिकार और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त किए जाने के योग्य व्यक्तियों से बने एक सलाहकार बोर्ड द्वारा अपने मामले का परीक्षण कराने का अधिकार।

27 जून 1975 के राष्ट्रपति के आदेश के द्वारा इन मूलभूत अधिकारों के प्रवर्तनार्थ किसी अदालत में जाने का सभी व्यक्तियों का अधिकार आपातस्थिति की अवधि के लिए छीन लिया गया।

अतीत में जब भी धारा 14, 21 और 22 के प्रवर्तन को किसी आपातस्थिति के दौरान धारा 359 के अधीन निलम्बित किया गया था, तब यह निलम्बन उन व्यक्तियों तक सीमित रहता था, जिन्हें भारत सुरक्षा कानून और भारत सुरक्षा नियमों के अधीन ज़ारी किए गए आदेशों के द्वारा किन्ही अधिकारों से वंचित किया गया हो अथवा किसी कानून के अधीन निवारक नज़रबन्दी बनाया गया हो। 27 जून 1975 को जारी किए गए राष्ट्रपति के आदेश की ऐसी कोई परिसीमा नहीं थी। यह एक सर्वग्रासी आदेश था, जो भारत के सभी व्यक्तियों पर लागू था। इस आदेश का और बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई इसकी व्याख्या का परिणाम यह हुआ कि देश में कानून का शासन वस्तुतः समाप्त हो गया।

वैधानिक एवं संवैधानिक संशोधनों की जो भीड़ बाद में आई उसका उद्देश्य व्यक्तिगत स्वाधीनता, विशेषकर मीसा के अधीन नज़रबन्दियों की स्वाधीनता पर चोट करना ही था। गिरफ्तारियों और नज़रबन्दियों से, दमनकारी आदेशों के विरुद्ध जनवर्गों के प्रतिरोध से तथा विरोध को दबाने के लिए पुलिस एवं अन्य अधिकारियों द्वारा की गई कार्यवाही से सम्बन्धित खबरों और मतों को पूरी तरह दबा दिया गया था। इसी प्रकार सरकार के समर्थन में संगठित सभाओं और सम्मेलनों के सिवाय शेष सभी को रोक देने के उपाय किए गए थे।

कई संशोधन तो धृष्टतापूर्वक स्पष्ट इस उद्देश्य से किए गए थे कि प्रधानमंत्री 12 जून 1975 के इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले, जिसने संसद में उनके चुनाव को अवैध करार दे दिया था, के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में दाखिल की गई अर्जी में सफलता प्राप्त कर सकें।

जहां तक मीसा के अधीन राजनीतिक नज़रबन्दियों का प्रश्न है, सरकार यह निश्चित कर लेने के लिए उत्सुक थी कि वे किसी अदालत में यह स्थापित न कर

सकें कि उनकी नज़रबन्दी तथ्यतः अथवा कानूनन असद्भावपूर्ण थी। इस उद्देश्य के लिए मीसा में कुछ संशोधन किए गए। 29 जून 1975 को जारी किए गए एक अध्यादेश के द्वारा मीसा में एक उपबन्ध जोड़ा गया, जिसके अनुसार, किसी भी अन्य कानून में कोई भी प्रावधान होते हुए भी, इस कानून के अधीन किसी भी नज़रबन्दी को ज़मानत पर छोड़ा नहीं जाएगा। एक दूसरी धारा में उपबन्धित किया गया कि यदि किसी नज़रबन्दी के बारे में नज़रबन्द करने वाले अधिकारी ने यह घोषणा कर दी हो कि उसकी नज़रबन्दी "आपातस्थिति को प्रभावपूर्ण ढंग से चलाने के लिए आवश्यक" है, तो नज़रबन्दी का आधार जानने का अथवा अपने मामले को सलाहकार बोर्ड के सामने प्रस्तुत कराने का अधिकार नज़रबन्दी को नहीं रहेगा।

ऐसा न हो कि नज़रबन्दी इस सामान्य कानूनी अधिकार पर, कि कानून की इजाज़त के बिना किसी को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता, निर्भर करने के हक़ का दावा करे, इसलिए 15 जुलाई 1975 को एक दूसरा अध्यादेश जारी किया गया जिसमें (धारा 18) उपबन्धित किया गया कि इस कानून के अंतर्गत नज़रबंद किसी व्यक्ति को "किसी प्राकृतिक कानून अथवा सामान्य कानून के अधीन व्यक्तिगत स्वतंत्रता का कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा।"

28 जुलाई को संसद का एक विशेष अधिवेशन किया गया, जिसमें एक विचित्र नियम बनाया गया। इसके अधीन घोषणा की गई कि सदन के अध्यक्ष के द्वारा अधिकृत रपट के सिवाय संसद् की कार्यवाही की किसी रपट को प्रकाशित नहीं किया जाएगा। फलतः, सिर्फ मंत्रियों के भाषण ही अखबारों में छापे जाने लगे। इस विशेष अधिवेशन में एक अधीन बहुमत की सहायता से अनेक दूरगामी संवैधानिक संशोधन शीघ्रतापूर्वक स्वीकार कर लिये गये।

कुछ नज़रबन्दियों ने 26 जून 1975 की आपातस्थिति की घोषणा को इस आधार पर चुनौती दी थी कि घोषणा असद्भावपूर्ण है, क्योंकि उस विशेष समय किन्हीं आंतरिक गड़बड़ियों से देश की सुरक्षा को कोई खतरा नहीं था। नज़र-बंदियों ने 1971 की आपातस्थिति के जारी रखे जाने को भी इस आधार पर चुनौती दी थी कि बाहरी आक्रमण से पैदा होने वाला खतरा बहुत पहले ही लुप्त हो चुका है। इस चुनौती का सामना करने के लिए संसद ने अगस्त 1975 को एक प्रस्ताव स्वीकार किया, जिसमें उपबन्धित किया गया कि आपातस्थिति की किसी घोषणा के लिए राष्ट्रपति की संतुष्टि "निर्णायक और अन्तिम मानी जायेगी और किसी आधार पर किसी अदालत में इसे चुनौती नहीं दी जा सकेगी।" और उच्चतम न्यायालय अथवा किसी अन्य न्यायालय को यह कार्यक्षेत्र प्राप्त नहीं

होगा कि वह आपातस्थिति की घोषणा की अथवा ऐसी घोषणा के जारी रखे जाने की न्यायसंगतता पर विचार कर सके।

10 अगस्त को संसद् ने 39वें संशोधन को स्वीकार किया। इस संशोधन के एक उपबन्ध के अनुसार 27 अधिनियमों को संविधान की नवीं अनुसूची में रखा गया। इसका अर्थ यह हुआ कि ये अधिनियम, संविधान द्वारा दिये गए एक या अधिक मूलभूत अधिकारों के आधार पर, किसी भी चुनौती से मुक्त हो गए। 39वें संशोधन द्वारा नवीं अनुसूची में रखे गए अधिनियमों में से एक था, उस समय तक यथासंशोधित मीसा।

ये सब तरीके भी, जिनके अधीन उन्हें बन्दी बनाया गया उन ग़ैर-क़ानूनी कानूनों को चुनौती देने से नज़रबन्दियों को अथवा आपातस्थिति का बहाना लेकर सरकार द्वारा निर्धारित कठोर सीमाओं के चारों कोनों के भीतर नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की रक्षा के लिए साहसिक प्रयास करने से उच्च न्यायालयों को रोक नहीं सके।

श्री कुलदीप नायर की बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका (सातवां अध्याय) पर दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले ने पत्रकार की नज़रबन्दी को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया कि सरकार उनकी नज़रबन्दी के लिए कोई कारण प्रस्तुत करने में विफल रही है। न्यायाधीश महोदय ने मत रखा कि जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार भारत के संविधान के साथ पैदा नहीं हुए थे, बल्कि वे मूल प्राकृतिक अधिकार हैं, जिन्हें संविधान ने सुरक्षा प्रदान की है और संविधान का निलम्बन उन अधिकारों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर देता।

इसलिए 17 अक्टूबर 1975 को एक अध्यादेश जारी करके मीसा में एक धारा जोड़ दी गई, जिसमें उपबन्धित किया गया कि नज़रबन्दी का कोई आदेश और धारा 16 अ के अधीन की गई कोई घोषणा जिस आधार अथवा सामग्री को लेकर जारी की गई थी उसे प्रकट करना सार्वजनिक हित के विरुद्ध समझा जाएगा।

आपातस्थिति प्रवर्तन के बाद राजनीतिक नज़रबन्दियों की एक बहुत बड़ी संख्या ने अपनी नज़रबन्दी के आदेशों को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में याचिकाएं दाखिल की थीं। मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में उच्चतम न्यायालय के एक पीठ ने उन लोगों की अनुपस्थिति में और बिना उनकी बात सुने आदेश दिया कि ऐसी सब याचिकाएं एक साथ वापिस ली गईं मानकर रद्द कर दी जानी चाहिए। आवेदक नज़रबन्दियों को पता भी नहीं लगा कि उन्होंने अपने आवेदन वापिस ले लिये हैं।

बड़ी संख्या में बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिकाएं विभिन्न उच्च न्यायालयों में विचाराधीन पड़ी थीं। उन पर सरकार की ओर से यह आपत्ति की गई कि

संविधान की धारा 21 के प्रवर्तन के अधिकार के निलम्बित हो जाने के कारण किसी व्यक्ति को यह हक नहीं है कि वह इस आधार पर कि उसकी नज़रबन्दी असद्भावपूर्ण है अथवा अन्य रूप में अवैध है, किसी अदालत में जाये।

अक्टूबर 1975 में मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में उच्चतम न्यायालय की एक पीठ ने उच्च न्यायालयों को निर्देश दिया कि इस आपत्ति को प्राथमिक मुद्दा माना जाए, और याचिकाओं पर उनके सत्य के आधार पर विचार करने से पहले इस मुद्दे पर फैसला दिया जाए। फिर भी एक के बाद एक सात उच्च न्यायालयों ने यह निर्णय दिया कि धारा 21 के प्रवर्तन के अधिकार के निलम्बन का यह असर नहीं हो सकता कि कानून का शासन ही निलम्बित हो जाए और इसलिए नज़रबन्दी को यह अधिकार है कि वह बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका इस आधार पर दाखिल करे कि उसकी नज़रबन्दी मीसा के उपबन्धों के अनुसार नहीं है।

सरकार ने इन अन्तरिम आदेशों के विरुद्ध अपीलें दायर कीं और विभिन्न उच्च न्यायालयों में विचाराधीन बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं की आगे सुनवाई को स्थगित कराने के आदेश ले लिए। इन अपीलों को मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता में पांच न्यायाधीशों के एक पीठ ने सुना था। ढाई महीने की सुनवाई के बाद और दो महीने के और विलम्ब के बाद एक के विरुद्ध चार के बहुमत से उच्चतम न्यायालय ने फैसला दिया कि धारा 21 के प्रवर्तन के अधिकार को निलम्बित करने वाले राष्ट्रपति के आदेश की दृष्टि से किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लिए अथवा अपनी नज़रबन्दी की वैधता को चुनौती देने वाले किसी अन्य आदेश के आधार पर उच्च न्यायालयों में याचिकाएं दाखिल कर सके।

एक प्रमुख विधिवेत्ता श्री वी० एम० तारकुंडे ने इस फैसले का यह कहकर वर्णन किया है "कि भारत के न्यायिक इतिहास में किसी अदालत ने इससे अधिक विनाशकारी और विध्वंसक फैसला नहीं दिया होगा।" फैसले का मतलब यह है कि न्यायालयों के पास कोई कार्यक्षेत्र नहीं रहा है। एक ओर, न तो वे यह तय कर सकते हैं कि आपातस्थिति की घोषणा असद्भावपूर्ण थी और दूसरी ओर एक बार आपातस्थिति घोषित होते ही तथा मूलभूत अधिकार निलम्बित होते ही अदालतों के पास कानून की इजाज़त के बिना जीवन अथवा स्वतन्त्रता से वंचित किए गए व्यक्तियों की रक्षा का कार्यक्षेत्र भी नहीं रहा है। "यह न्यायिक आत्म-हत्या से कम नहीं कहलाया जा सकता।" श्री तारकुंडे ने आगे कहा, "उच्चतम न्यायालय के रुख को देखते हुए यह कठिनाई से ही सम्भव होगा कि देश के विभिन्न उच्च न्यायालय न्यायिक स्वतन्त्रता की अपनी परम्परा को जारी रख सकें।"

प्रेस पर सेंसर और बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका इन दो क्षेत्रों में भारतीय

न्यायालयों ने अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत स्वाधीनता के पक्ष में जो दृढ़ रुख अपनाया, वह देश में घटी राजनीतिक घटनाओं से अन्यथा त्रस्त राष्ट्र के लिए सबसे अधिक उत्साहवर्धक सिद्ध हुआ।

मीनू मसानी बनाम बंबई राज्य के सेंसर अधिकारी विनोद राय के मामले में, जो नवम्बर 1975 में बम्बई उच्च न्यायालय के सामने पेश हुआ, न्यायमूर्ति डी० पी० मदन एवं न्यायमूर्ति एस० एस० कानिया ने रद्द लेखों की सामग्री का विश्लेषण करके यह मत प्रकट किया, "प्रस्तुत आपत्तियां सेंसरशिप आदेश के किन्हीं भी प्रयोजनों अथवा उद्देश्यों से असम्बद्ध हैं। अधिकतर चिन्तित परिणाम कल्पनापूर्ण एवं दूर की कौड़ी हैं और ऐसी दृष्टि ग्रहण की गई है जिसे तर्कसंगत ढंग से काम करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए ग्रहण करना कभी सम्भव नहीं है। जो अनुमान किए गए हैं वे वास्तविकता के आधार अथवा सामान्य बुद्धि की नींव से इतने रहित हैं कि तर्क विद्रोह करता है और युक्ति को उनसे वितृष्णा होती है।

दूसरा रोचक मामला था, बड़ौदा के 'भूमिपुत्र' की याचिका, जिस पर उच्च न्यायालय ने मज़बूत मत व्यक्त किया। नवम्बर 1975 में सर्वोदय सिद्धान्त के प्रति समर्पित एक पत्रिका 'भूमिपुत्र' के सम्पादक और प्रकाशक श्री सी० वैद्य को 'कारण बताओ' नोटिस दिया गया कि 26 अक्टूबर 1975 के 'भूमिपुत्र' की सभी प्रतियों को तथा जहां वह छपता है उस यज्ञ मुद्रिका प्रेस को भारत सरकार 10 दिन के भीतर क्यों न ज़ब्त कर ले, क्योंकि 12 अक्टूबर 1975 को हुए नागरिक स्वतन्त्रता सम्मेलन की दो रपटों को छापकर और प्रकाशित करके सांविधिक आदेशों को भंग किया गया है।

गुजरात उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति जे० बी० मेहता एवं न्यायमूर्ति एस० एच० शेठ ने 'भूमिपुत्र' के सम्पादक एवं प्रकाशक पर जारी किए गए सेंसर के एवं जब्ती के आदेशों को रद्द कर दिया। उनके फैसले में से निम्न प्रासंगिक विचार निकाले गए हैं :

"यह सच है कि धारा 19 को, जो अन्य बातों के साथ-साथ अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को भी निश्चित करती है, सांविधिक आदेश के अनुच्छेद (1) के उपअनुच्छेद (ङ) में उल्लिखित राष्ट्रपति के आदेश के द्वारा निलम्बित कर दिया गया है, लेकिन हमारे समाज की लोकतन्त्रीय प्रकृति को निलम्बित नहीं किया गया है। इसलिए धारा 10 के द्वारा मूलभूत अधिकारों के निलम्बन से निरपेक्ष मुक्त प्रेस एवं असहमति के अधिकार को जो लोकतन्त्रीय समाज के सत्व हैं, हिंसा के भड़क उठने और सार्वजनिक अनुशासन के भंग होने को रोकने की स्थिति के सिवाय निलम्बित नहीं किया जा सकता।"

जहां सरकार विरोधियों की हिंसक एवं ध्वंसात्मक गतिविधियों को दबाने के

लिए राष्ट्र के प्रति जिम्मेदार है, वहां विरोधी पक्ष को भी इस बात के लिए सतर्क रहना चाहिए कि शासक दल ऐसी गतिविधियों को दबाने के नाम पर कहीं लोकतन्त्र की नींवों को ही नष्ट न कर दे और एक तानाशाही अथवा एकाधिकारवादी रूप ग्रहण न कर ले।

मुख्य सेंसर के मार्गनिर्देशों पर टिप्पणी करते हुए फैसले में कहा गया है, "किसी भी लोकतन्त्र में जनता पर उससे भयानक आघात नहीं किया जा सकता, जैसा मुख्य सेंसर के मार्गनिर्देशों के द्वारा किया गया है। चाहे हम आपातस्थिति में से गुज़र रहे हों या सामान्य जीवन जी रहे हों, भले ही देश की असाधारण स्थिति की ज़रूरत हो कि लोगों की स्वतन्त्रता पर रोक लगाई जाए, पर मुख्य सेंसर द्वारा जारी किए गए एवं ऊपर उद्धृत मार्गनिर्देशों को कभी मान्य नही किया जा सकता। इन मार्गनिर्देशों से लोकतन्त्र की जीवनधारा, सार्वजनिक आलोचना को ही खत्म कर दिया गया है और ये उसके हृदय को ही छेद गए हैं। ऐसे मार्गनिर्देशों को एक पल के अतिरिक्त समय के लिए भी प्रवर्तित रखना हमारी मनोवांछित लोकतन्त्रीय समाज-व्यवस्था को नष्ट करना है। अतः हमारा मत है कि ऐसे मार्गनिर्देश, जिनका नियम 48 अथवा वर्ग 3 में निर्धारित सांविधिक प्रयोजनों में कोई उल्लेख अथवा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है, गैरकानूनी और अप्रवर्तनीय हैं। मुख्य सेंसर स्वयं राजा से भी बढ़कर राजा के प्रति वफादार सिद्ध हुआ है और देश में एक मूलभूत लोकतन्त्र को बनाए रखने के लोगों के प्रयासों को, उसने निष्फल कर दिया है।"

डा० मुरलीमनोहर जोशी और श्री वीरेन्द्रसिंह चौधरी द्वारा इलाहाबाद उच्च न्यायालय की एक पीठ के सम्मुख प्रस्तुत बन्दी प्रत्याक्षीकरण याचिका पर अपने फैसले में मुख्य न्यायाधीश श्री के० बी० अस्थाना ने नज़रबन्दी के आदेश को असद्भावपूर्ण घोषित कर दिया और कहा कि नज़रबन्द करने वाले अधिकारी ने अधिनियम के मूल सिद्धान्तों को ही भंग कर दिया है और अपनी सीमा का अतिक्रमण किया है। फैसले में आगे निष्कर्ष दिया गया कि जिस अधिनियम के अधीन आदेश दिया गया था वही अवैध है और नज़रबन्दी का आदेश जिस सामग्री पर आधारित था, वही अधिनियम से असंगत है।

महाधिवक्ता की इस धारणा पर कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार खत्म कर दिया गया है, मुख्य न्यायाधीश ने कहा, "इसका अर्थ यह हुआ कि इस अन्धकारपूर्ण वातावरण में आरज़ी तौर पर काम करने की पूरी शक्ति और सत्ता कार्यकारिणी को प्राप्त है। अर्थात् इस वातावरण में जो कि अन्धकारपूर्ण है, हिटलर की आत्मा घूमेगी और उसका भूत नागरिकों के जीवन अथवा उनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान के साथ आंखमिचौनी का खेल खेलेगा और उन्हें आतंकित करेगा। जब 26 जून 1975 को आपातस्थिति की घोषणा

करते हुए राष्ट्रपति ने आदेश जारी किए थे कि धारा 15, 21 और 22 के अधीन अधिकारों के प्रवर्तन की शक्ति से अदालतों को वंचित कर दिया जाए, तब उनके दिमाग में भी यह प्रतीति नहीं रही होगी।"

यह तृप्तिदायक है कि स्वतन्त्र भारत के जीवन में आए इस घोरतम राजनैतिक संकट में देश के उच्च न्यायालय अवसर की मांग पर उठ खड़े हुए और नागरिकों के लोकतन्त्रीय अधिकारों के सच्चे और साहसी संरक्षक सिद्ध हुए। व्यंग्य की बात यह है कि उच्चतम न्यायालय आपातस्थिति द्वारा पंगु बना दिया गया और उसने उस प्रतिगामी शासन का पक्ष लिया जो भारतीय जनता को उस लोकतन्त्रीय जीवन-पद्धति से दूर हटा देने के लिए कटिबद्ध था, जिस पद्धति को उसने अपने लिए चुना था।

अपने देश के इतिहास के इस काले अध्याय से एक पाठ हम यह सीखते हैं कि लोकतन्त्र का एकमात्र प्रभावी संरक्षक, विशेषकर संकट के समय में एक स्वतन्त्र न्यायपालिका ही है और हम किसी राजनीतिक सरकार पर कभी यह विश्वास नहीं कर सकते कि वह सब परिस्थितियों में नागरिकों के लोकतन्त्रीय अधिकारों की गारन्टी देगी और उनकी रक्षा करेगी। संसद एक लिखित संविधान की सृष्टि है, उसकी सृष्टा नहीं। सिर्फ विशेष रूप से निर्वाचित एक संविधान सभा ही संविधान में मूलभूत परिवर्तन ला सकती है। संसद की प्रभुसत्ता इतनी दूर तक विस्तृत नहीं की जा सकती कि उसे संविधान के साथ मनमानी करने की अनुमति दे दी जाए।

15

नियति का हस्तक्षेप

और तव नियति ने हस्तक्षेप किया। अव तक एक सयानी, और हिसावी राजनीतिज्ञ, जो अपनी सही समय की पकड़ के लिए प्रसिद्ध रहीं हैं उन श्रीमती गांधी की उस घटना-क्रम पर से ही मुट्ठी ढीली पड़ गई जिसे उन्होंने ही गति दी थी।

हर चीज़ योजना के अनुसार वढ़िया चल रही थी। देश की अर्थ-व्यवस्था अच्छी हालत में दीख पड़तो थी। विदेशी मुद्रा का कोप दो वर्ष पहले की राशि से तिगुना, दो अरव डालर तक पहुंच गया था। लगभग पहली वार देश में औद्योगिक शान्ति थी और उत्पादन बढ़ गया था। शानदार फसल को धन्यवाद, सरकार का अन्न-कोष पूरे अतीत की अपेक्षा वहुत अधिक था।

उनकी सरकार ने संविधान को अपनी वग्घी के नीचे कुचल डाला था और उनके वेटे ने पुरानी दिल्ली की एक घनी वस्ती पर बुलडोज़र चला दिया था और एक कुत्ता तक नहीं भौंका था। यह सच है कि कुत्ते नहीं भौंके थे; क्योंकि उनके मुंहों पर छीके बंधे हुए थे। पर तब भी उनकी गुर्राहट मीलों दूर सुनी जा सकती थी, उनके द्वारा जिनके पास सुनने के लिए कान थे।

क़ीड़ों की तरह श्रीमती गांधी के चारों ओर मंडराते गुप्तचरों के सर्वव्यापक दल ने उन्हें विश्वास दिला दिया था, और उन्हें भी इसमें रंच सन्देह नहीं था कि जनता में अब भी वे सदा की भांति ही लोकप्रिय थीं। और भारत जैसे देश में जनता ही दरअसल अर्थ रखती है। विरोधी राजनीतिक दलों तक ने कह दिया था कि वे विध्वंसक तरीकों का आश्रय नहीं लेंगे।

नागरिक और देहाती दोनों क्षेत्रों में उनकी सार्वजनिक सभाओं में एक विशाल भीड़ आती थी। वह भी इस धारणा को पुष्ट ही करती थी। कोई यह बताने का साहस नहीं करता था कि भीड़ के भीड़ ये लोग स्थानीय अफसरों द्वारा खींचकर लाए गए हैं। और तव, अपने को और हर एक को वे यह आश्वासन दे डालती थीं कि परिवार-नियोजन के नाम पर स्थानीय अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचारों के जो विवरण सुने जाते हैं, वे विरोधी पक्ष द्वारा बढ़ा-चढ़ा कर कहे गए हैं और ऐसे उदाहरण इक्के-दुक्के ही हैं।

जिन तानाशाहों को देवता नष्ट करना चाहते हैं, उन्हें पहले अन्धा बना देते हैं।

संजय के कम्युनिस्ट-विरोधी झुकाव और उसकी पश्चिम समर्थक पेशकश को धन्यवाद कि श्रीमती गांधी के बारे में पश्चिम की राय आश्चर्यजनक रूप से बदलकर रूढ़-शत्रुता से मित्रतापूर्ण सहानुभूति और प्रशंसा तक पहुंच गई थी। श्रीमती गांधी संसार के शीर्ष पर थीं। उन्होंने कभी भी इतना आत्म-आश्वस्त अनुभव नहीं किया था। इस आशापूर्ण मन:स्थिति में उन्हें कोई सन्देह नहीं था कि वे कुछ भी, यहां तक कि चुनाव भी करा सकती हैं।

और इसलिए श्रीमती गांधी ने तय किया कि वे लोकसभा के चुनाव करायेंगी और यह भी कि मार्च 1977 उनकी और देश की दोनों की दृष्टि से सबसे अनुकूल समय है। अगले वर्ष कीमतों के बढ़ने और मानसून के ठीक न होने की आशंका है। इसलिए ठहरकर चुनावों को अगले वर्ष कराना जुआ खेलना ही होगा।

देश में इस समय चुनाव कराने से कांग्रेस दल की आन्तरिक सड़न को भी रोका जा सकेगा। चुनाव-युद्ध की पुकार से दल में संगठन और एकता आएगी। वे भारी बहुमत से पद पर लौटेंगी और उनके शासक के जो थोड़े-से आलोचक हैं उन्हें भी वे चुप करा देंगी। इसके अतिरिक्त मार्च में चुनाव कराने से विरोधी दलों को, भले ही उनके नेताओं को तत्काल जेलों में से रिहा किया जाए, शक्ति-संगठन का बहुत ही थोड़ा समय मिलेगा।

18 जनवरी 1977 को श्रीमती गांधी आकाशवाणी और दूरदर्शन पर, बिना पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के आईं और उन्होंने लोकसभा के भंग कर दिए जाने और मार्च 1977 के मध्य में आम चुनाव किए जाने की घोषणा की।

उन्होंने जनता से कहा कि उन्होंने लोकसभा को भंग कर दिए जाने की सिफारिश की है और राष्ट्रपति ने उनकी सलाह मान ली है। उन्होंने यह भी कहा कि मान्यताप्राप्त राजनीतिक दलों की विहित राजनीतिक गतिविधियों के लिए आपात स्थिति में और ढील लाई जा रही है।

लोगों के लिए यह घोषणा एक आनन्दप्रद आश्चर्य थी। क्योंकि कुछ ही समय पहले तो लोकसभा की कार्यावधि को एक वर्ष बढ़ा दिया गया था और इसलिए यदि हुए भी तो अगले 15 महीनों तक किसी चुनाव की आशा किसी को नहीं थी। वस्तुत: विजयी एकाधिकारवाद के वर्तमान वातावरण में लोग सोचने लगे थे कि निकट भविष्य में क्या कोई भी चुनाव होंगे!

पर इस समय क्या ये दूसरी इन्दिरा थीं जो आकाशवाणी और दूरदर्शन पर बोल रही थीं और जो लोकतन्त्र के प्रति अत्यन्त समर्पित गरिमामयी, संयमित एवं अनुभवमयी थीं? अथवा इस सबका श्रेय उनका भाषण लिखने वाले को जाता है? 19 महीने पहले आपातस्थिति की घोषणा के कारणों को उन्होंने गिनाया और कहा, "अब प्रश्न यह है कि उन राजनीतिक प्रक्रियाओं को लौटाया

जाए, जिन पर रोक लगाने के लिए हमें मजबूर होना पड़ा था। हमारा यह भी विश्वास है कि संसदीय सरकार को जनता के सामने पहुंचना चाहिए और राष्ट्र के कल्याण एवं उसकी शक्ति के लिए निर्धारित कार्यक्रमों और नीतियों पर जनता की सही लेनी चाहिए।"

उन्होंने लोगों को आश्वासन दिया कि वे लोकतन्त्र में और जनता के अधिकारों में विश्वास रखती हैं। उन्होंने कहा, "हर चुनाव एक आस्था का काम है। सार्वजनिक जीवन में आई गड़बड़ियों को साफ कर देने का यह एक अवसर है। इसलिए आइये, हम जनता की शक्ति को फिर से पुष्ट करने और भारत के स्वच्छ नाम को ऊंचा करने का निश्चय लेकर चुनाव में भाग लें।"

कितने उदार भाव थे ये !

उस स्मरणीय भाषण में श्रीमती गांधी ने कुछ दैवी शब्द भी कहे। उन्होंने घोषणा की, "परिवर्तन जीवन का पक्का नियम है। संसार में यह युग भारी परिवर्तनशीलता का युग है। समसामयिक समाज खतरों से भरा है और विकासशील देशों को इन खतरों से विशेष आशंका है। इसलिए सभी परिवर्तन शान्तिपूर्ण होने चाहिएं। हमारे स्वाधीनता संघर्ष की, महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू की हमें यही देन है।"

आकाशवाणी पर जाने से पहले ही श्रीमती गांधी ने श्री मोरारजी देसाई को छोड़ देने के आदेश दे दिए थे। श्री जयप्रकाश नारायण पहले से ही बाहर थे। अगले कुछ ही दिनों में एक-एक करके अधिकतर बड़े नेताओं को छोड़ दिया गया।

मोरारजी की पहली प्रतिक्रिया थी : "लेकिन समय बहुत ही कम है। चुनाव की तैयारी हम कैसे कर पायेंगे !" जार्ज फर्नेंडीज़ ने तो चुनावों का बहिष्कार करने की वकालत की। लेकिन श्री जयप्रकाश नारायण ने चुनौती को स्वीकार किया और काम में जुट गये। विरोधी पक्ष को सम्बोधित करते हुए उन्होंने सलाह दी : "आप लोगों को एक दल के रूप में लड़ना चाहिए।"

अचानक मानो सूर्य की किरणों के स्पर्श से धुन्ध साफ हो गई और राष्ट्र में सामान्य स्थिति वापस आ गई। 20 जनवरी को सरकार ने सेंसर उठा दिये जाने और आपातस्थिति के विभिन्न उपबन्धों में ढील दे दिये जाने की घोषणा की, जिससे कि प्रतियोगी राजनीतिक दल सामान्य चुनाव-गतिविधियों को चला सकें।

उसी दिन श्री मोरारजी देसाई ने एक प्रेस सम्मेलन को बताया कि विरोधी दल आने वाले चुनावों के लिए "उम्मीदवारों की एक सम्मिलित सूची" तैयार करेंगे। विरोधी पक्ष आत्मविश्वास की कमी के बावजूद, प्रस्तुत परिस्थितियों में चुनावों में यथासम्भव प्रशंसनीय कार्य करने की आशा में था। अधिकतर प्रेक्षकों,

विशेषकर विदेशी प्रेस, का अनुमान था कि श्रीमती गांधी एक बार फिर पर्याप्त बहुमत से जीतकर लौटेंगी।

फिर भी ऐसा प्रतीत हुआ कि विरोधी पक्ष की त्वरित प्रतिक्रिया से और एक संयुक्त चुनाव नीति से श्रीमती गांधी व्यग्र हो उठीं। उन्हें आशा थी कि विरोधी पक्ष अस्त-व्यस्त और अप्रस्तुत मिलेगा। 22 जनवरी को कानपुर की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने कहा कि "विरोधी दलों को नीतियों को लेकर चुनाव लड़ना चाहिए। जब वे इतनी अलग-अलग नीतियों का अनुसरण करते रहे हैं तो अब उनका इकट्ठे होना लोकतान्त्रिक नहीं है।"

श्रीमती गांधी इलाहाबाद कुम्भ के मेले में गई थीं। कहा जाता है कि वहां उन्होंने गंगा में पवित्र स्नान किया और तब अपनी गुरु और आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक आनन्दमयी मां के दर्शन किये।

'एक संयुक्त सूची' की विरोधी पक्ष की युद्धनीति की श्रीमती गांधी द्वारा उग्र आलोचना और असहमति उनके पक्ष में घबराहट का पहला चिह्न थी।

यद्यपि अधिकतर विरोधी नेता छोड़ दिए गये थे, लेकिन उनके अनेकों कार्यकर्ता अभी भी जेल में थे। सरकार को उन्हें छोड़ देने की कोई जल्दी दीख नहीं पड़ती थी और विरोधी दलों के पास अनुभवी, समर्पित कार्यकर्ताओं की बहुत कमी थी। 25 जनवरी को सरकार ने सार्वजनिक सभाओं पर से प्रतिबन्ध हटा लिया। तीन दिन बाद विरोधी नेताओं का एक प्रतिनिधिमंडल नज़रबन्दियों की रिहाई के बारे में प्रधानमन्त्री से मिला। श्रीमती गांधी ने उत्तर दिया, "आदेश 21 को दे दिए गये थे, लेकिन राज्य हमारी बात सुन ही नहीं रहे हैं।"

30 जनवरी को श्री मोरारजी देसाई ने रामलीला मैदान में जनता पार्टी के चुनाव-अभियान का आरम्भ किया। श्रोताओं की अभूतपूर्व संख्या और उनके देश-भक्तिपूर्ण उत्साह, दोनों ही दृष्टियों से यह सभा स्मरणीय है।

एक दिन पहले पटना में श्री जयप्रकाश ने एक सार्वजनिक सभा में कहा था, "मैं मौत के दरवाज़े से लौटकर आया हूं। हो सकता है, ईश्वर देश के लिए कुछ काम मुझसे चाहता है।" तब उन्होंने घोषणा की, "आने वाले चुनाव दलों के भविष्य का नहीं, स्वयं मतदाताओं के भविष्य का निर्णय करेंगे।"

श्रीमती गांधी के लिए दूसरी और गम्भीर रूप से अधिक अशुभ घटना वह थी, जिसे 'जगजीवन बम' कहा जाता है, क्योंकि इसका भारत के राजनीतिक दृश्य पर प्रचंड प्रभाव पड़ा। 2 फरवरी को श्री जगजीवनराम ने मन्त्रिमण्डल से और कांग्रेस दल से अपने त्यागपत्र की घोषणा की।

श्री जगजीवनराम कांग्रेस दल के वरिष्ठ राजनीतिज्ञ थे, जो दल को प्रतिष्ठा और उससे भी अधिक हरिजनों का शक्तिशाली समर्थन एवं मत प्रदान करते थे। 1969 के दलीय संकट में वे दृढ़ता के साथ सिंडीकेट के विरुद्ध और श्रीमती

इन्दिरा गांधी के पक्ष में खड़े रहे थे और तब से आपातस्थिति के कठिन दिनों, के दौरान उन्होंने अनुरक्तिपूर्वक श्रीमती गांधी का साथ दिया था; यद्यपि वे उनमें विश्वास और आस्था खोने लगी थीं।

श्रीमती गांधी ने इस नाजुक समय में अपने दल के ऐसे वरिष्ठ सदस्य की ओर से इतने चरम कदम की उम्मीद बिल्कुल नहीं की थी। यह स्पष्ट है कि जगजीवन बम ने उन्हें बुरी तरह हिला दिया। उसके बाद के उनके भाषणों का लहजा और तत्व इस ओर इशारा करता है। बारी-बारी से चिड़चिड़ी और रक्षात्मक वे बन उठी थीं।

सरकार और दल से श्री जगजीवनराम का इस्तीफा एक से अधिक कारणों से विशिष्ट था। इस कदम ने उस भयानक गतिरोध को तोड़ दिया और भय की उस काली चादर को फाड़ डाला जो मन्त्रियों को, कांग्रेस दल को और पूरे राष्ट्र को अपने में लपेटे थी और सबका सांस रोके हुए थी। इस अर्थ में श्री जगजीवनराम ने बिल्ली के गले में घण्टी बांधने का काम किया।

जब उन्होंने इन्दिरा गांधी एवं उनके बेटे के द्वारा किए गए अत्याचारों एवं बेइन्साफियों के क्रूर सत्य का उद्घाटन किया, तब वे हर मन्त्री, हर कांग्रेसी और देश के सामान्य जन की अनकही भावनाओं को ही अभिव्यक्ति दे रहे थे। उन्होंने उद्घाटित किया कि आपातस्थिति की घोषणा के प्रधानमन्त्री के निर्णय के बारे में मन्त्रिमण्डल से कोई सलाह नहीं ली गई। उसे सिर्फ सूचित किया गया था और इसीलिए उनकी यह कार्यवाही गैरकानूनी थी।

जगजीवन बम ने राजनीतिक विखण्डन की प्रक्रिया को गति दी, जो देखते ही देखते पूरे उत्तरी भारत में व्याप्त हो गई और जिसने अन्ततः श्रीमती गांधी की हार को पूर्ण पराजय में बदल डाला। जैसा कि श्रीमती गांधी ने उसे नाम दिया है श्री जगजीवनराम के, "विश्वासघात" ने प्रधानमन्त्री को एक नपुंसक रोष की स्थिति में ला दिया। उसके बाद से लगा कि उनके भाषणों में से उनका वह ज़ोरदार आत्मविश्वास गायब हो गया है।

श्रीमती गांधी ने शिकायत की कि श्री जगजीवनराम ने पहले ही दिन तो सरकार की आर्थिक सहयोग समिति की अध्यक्षता की थी। 2 फरवरी को प्रातः 10 बजे के लिए निश्चित कांग्रेस संसदीय बोर्ड की बैठक में उन्हें आना था। जब वे नहीं आए तो उनके घर पर सम्पर्क किया गया। टेलीफोन पर बताया गया कि कुछ कारणों से बाबूजी को देर लग गई है। 11.30 तक श्री जगजीवनराम अपना त्यागपत्र भेज चुके थे।

पहले दिन श्री जगजीवनराम श्रीमती गांधी से मिले थे और उनसे उन्होंने आपातस्थिति उठा लेने का अनुरोध किया था। श्रीमती गांधी के अनुसार श्री जगजीवनराम उनके साथ सिर्फ पांच मिनट रहे थे। श्रीमती गांधी ने उन्हें

वचन् दिया था कि वे आपातस्थिति को उठाने के बारे में गृहमन्त्रालय से बातचीत करेंगी। और उनके अनुसार एक घन्टे के भीतर ही श्री ओम मेहता से इसका ज़िक्र उन्होंने किया। उनकी शिकायत रही कि उस संक्षिप्त बैठक में भी श्री जगजीवनराम ने त्यागपत्र देने के अपने फैसले का कोई संकेत उन्हें नहीं दिया।

श्री जगजीवनराम हंसकर कहते हैं, "निश्चय ही मैंने उन्हें नहीं बताया। मैंने उन्हें त्यागपत्र देने से पांच मिनट पहले भी कुछ नहीं बताया।" उन्होंने स्वीकार किया, यदि वे वैसा करते तो कौन जानता है कि श्रीमती गांधी ने क्या किया होता।

जब तक उनका त्यागपत्र श्रीमती गांधी के पास पहुंचा, श्री जगजीवनराम एक प्रेस सम्मेलन बुला चुके थे और मन्त्रिमण्डल एवं कांग्रेस से अपने त्यागपत्र की 'घोषणा कर चुके थे तथा समान विचार के कांग्रेसियों को अपने साथ आने का आह्वान दे चुके थे।

अतीत की तरह ही लगभग तत्काल ही, श्रीमती गांधी का निवास एक बार फिर उन्हें जन-समर्थन देने के उद्देश्य से 'स्वयंप्रेरित' प्रदर्शनों का स्थल बन गया। इस बार ये रैलियां श्री जगजीवनराम द्वारा दल-त्याग के लिए उनकी निन्दा कर रही थीं और श्रीमती गांधी के प्रति वफादारी की शपथ ले रही थीं। प्रधानमन्त्री के समर्थकों ने श्री जगजीवनराम की कार्यवाही को 'विश्वासघात' और 'पीठ में छुरा भोंकना' बताया। 12 राज्यों के मुख्यमन्त्रियों ने श्रीमती गांधी के प्रति वफादारी की शपथ लेते हुए एक वक्तव्य जारी किया। हर राज्य में हरिजन-नेता के कदम की निन्दा करने के लिए सार्वजनिक सभाएं की गईं। कांग्रेस की मशीन इस विचार की धुरी पर घूमने लगी।

दिल्ली में श्री बरुआ ने कहा कि एक व्यक्ति का त्यागपत्र कोई महत्त्व नहीं रखता और उससे दल पर कोई प्रभाव पड़ने वाला नहीं है। फिर भी श्री जगजीवनराम के चले जाने से उत्पन्न स्थिति पर विचार करने के लिए कांग्रेस कार्यसमिति की एक त्वरित बैठक बुलाई गई। श्री जगजीवनराम के विरुद्ध क्रोध ज्वार की तरह निर्मित किया गया, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि 'जगजीवन बम' ने कांग्रेस दल पर कितनी दूरगामी छाप छोड़ी।

जब चापलूस लोग राज्यों की राजधानियों से, प्रधानमन्त्री के प्रति वफादारी की शपथ लेने के लिए एक के बाद एक प्रतिनिधि मंडल दिल्ली ला रहे थे, बाबूजी के प्रति श्रीमती गांधी का क्रोध आग की तरह सुलग रहा था। बांध में दरार पड़ चुकी थी और लोगों की एक नियमित धारा कांग्रेस को छोड़कर श्री जगजीवनराम की 'कांग्रेस फार डेमोक्रसी' में जा रही थी। हरिजनों के मत, जो देश की आबादी के एक तिहाई बैठते हैं, कांग्रेस से कटकर जगजीवनराम के दल की ओर आ रहे

थे। कांग्रेस के लिए अपने में यह घातक प्रहार था।

कांग्रेस दल के चुनाव अभियान को आरम्भ करने के लिए पांच फरवरी को राजधानी में जो पहली सभा की गई, उसीमें लोगों की मनस्थिति तथा श्रीमती गांधी के लहजे और मिजाज में आया परिवर्तन स्पष्ट हो गया था। इस सभा के आयोजन में वड़ी योजना, तैयारी और पैसा लगा था। मज़दूरों और गरीव वर्गों के लोगों को सार्वजनिक वाहनों के द्वारा सभा के स्थल रामलीला मैदान में लाया गया था। संगठनकर्त्ताओं ने दावा किया कि सभा में दो लाख आदमी थे।

अभियान का उद्घाटन करते हुए श्रीमती गांधी ने जनता पार्टी को अनेक दलों की, जिनमें राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं मार्क्सवादी भी शामिल हैं, खिचड़ी कहकर रद्द कर दिया। बंधी मुट्ठी उठाकर उन्होंने घोषणा की कि "यदि ज़रूरत पड़ेगी तो हम अपना खून वहाएंगे, अपना जीवन देंगे, लेकिन देश को कमज़ोर नहीं पड़ने देंगे। यह दीख रहा था कि उन्होंने अपना सन्तुलन खोना शुरू कर दिया है। उन्होंने कहा कि विरोधी दलों के लिए बिल्कुल ज़रूरी नहीं है कि वे दूसरे देशों के लोकतन्त्रीय दलों के गुण गाएं, उन्हें गौरवान्वित करें और भारत के लोकतन्त्र को हीन बतायें। तब अपनी आवाज़ ऊंची करते हुए उन्होंने कहा, "यदि वे अपने देश के लोकतन्त्र को पसन्द नहीं करते तो वे अपनी पसन्द के उन देशों में अथवा जहां भी वे चाहें जाने के लिए स्वतन्त्र हैं और उन्हें जाने ही दिया जाए। हम उन्हें यहां नहीं चाहते।"

आपातस्थिति के विरुद्ध तथा राजनीतिक नज़रवन्दियों के बारे में विरोधी दलों की आलोचना का हवाला देते हुए श्रीमती गांधी ने कहा, "मैं यह साफ कर देना चाहती हूं कि दुनिया की कोई भी सरकार और कोई भी दूसरा प्रधानमन्त्री विरोधी पक्ष को उतना बर्दाश्त नहीं करेगा, जितना हमने किया है।"

श्रीमती गांधी ने लोकतन्त्र में अपनी आस्था को फिर से पुष्ट किया और आगे कहा, "भारत में प्रजातन्त्र रहा है, और रहेगा।" तब उन्होंने कहा कि यदि आपातस्थिति ने कुछ लोगों को असुविधा दी है, तो सरकार को उसके लिए दुख है। "हम किसी के लिए कठिनाई पैदा करना नहीं चाहते। और यह बात हमने आरम्भ में ही हर एक से कह दी थी।"

'स्टेट्समैन' के संवाददाता के अनुसार जब श्रीमती गांधी सभा स्थल पर पहुंचीं तो लगभग 200 बैंड बाजे वालों ने उनका स्वागत किया। श्रोताओं के सामने श्रीमती गांधी एवं संजय गांधी के दो विशाल चित्र लगे हुए थे।

मंच के सामने की विशाल आन्दोलित भीड़ शीघ्र ही अस्थिर हो उठी और केन्द्र में स्थित भीड़ का एक हिस्सा तीन बार जाने के लिए उठा; एक बार तब

जब श्री स्वर्णसिंह ने अपना भाषण शुरू किया, अगली बार जब श्री चह्वाण बोले और तीसरी बार जब श्रीमती गांधी बोल रही थीं। पुलिस और कांग्रेस के स्वयं-सेवक दो ओर से भीड़ को धकेल रहे थे और नीचे बैठा रहे थे। भीड़ की बेचैनी को देखते हुए श्रीमती गांधी ने अपने भाषण को छोटा कर दिया और भीड़ को तीन बार 'जयहिन्द' का नारा लगाने के लिए कहा।

श्री जगजीवनराम के त्यागपत्र ने चुनाव के लिए कांग्रेस की योजनाओं को डगमगा दिया। युवा कांग्रेस की इस मांग को, कि लोकसभा चुनावों के लिए दलीय नामांकनों में 50 प्रतिशत उनके होने चाहिए, अब कूड़ेदान में डाल देना पड़ा, यद्यपि उस समय श्रीमती गांधी ने और उनके कठपुतली संसदीय बोर्ड ने इस मांग को अपना आशीर्वाद दिया था। इसका फल यह हुआ कि संजय की योजना के अधीन जिन पुराने कांग्रेसियों के बिस्तर बांध दिए जाने थे, वे कांग्रेस की नामांकन-सूची में वापस आ बैठें। कम से कम इन लोगों को तो श्री जगजीवनराम का कृतज्ञ होना चाहिए।

श्रीमती गांधी द्वारा कांग्रेस का चुनाव-अभियान आरम्भ किए जाने के बाद छः फरवरी को उसी रामलीला मैदान में एक सभा में श्री जगजीवनराम और श्री जयप्रकाश बोले।

लोग दूर-दूर से इस सभा में आए। कितने ही लोग सुबह अपने घरों से चल कर पैदल पहुंचे। पुलिस का कहना है कि जनता पार्टी की इस सभा में, इसी जगह पहले दिन की श्रीमती गांधी की सभा की तुलना में बहुत अधिक भीड़ थी। सरकार द्वारा नियन्त्रित दूरदर्शन ने भी जनता पार्टी की सभा से लोगों को दूर रखने के प्रयास में अपना योगदान किया। उन्होंने इतवार की सन्ध्या के लिए निश्चित फिल्म 'वक्त' के स्थान पर सदाबहार 'बाबी' को घोषित किया और सामान्य से एक घन्टा पहले उसे शुरू कर दिया जिससे फिल्म का समय जनता पार्टी की सभा के समय से टकरा जाए। फिर भी उस सन्ध्या को रामलीला मैदान में मानवों का समुद्र उमड़ पड़ा था। श्रोताओं ने खड़े होकर श्री जयप्रकाश एवं श्री जगजीवनराम का स्वागत किया। यह बात इस देश की सार्वजनिक सभाओं में पहले कभी नहीं देखी गई थी।

श्री जयप्रकाश ने दोहराया कि यह लड़ाई कांग्रेस और जनता पार्टी, इन दो दलों के बीच नहीं है। मुद्दे इनसे बहुत अधिक महत्त्व रखते हैं। मतदाताओं को लोकतन्त्र एवं एकाधिकारवाद के बीच चुनाव करना है। उन्हें यह निश्चित करना है कि आपातस्थिति के डरावने दिन फिर कभी लौटकर न आयें।

श्री जयप्रकाश ने कहा कि काफी चिन्तन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि श्रीमती गांधी सत्ता से प्रेम करती हैं। कोई भी कीमत देनी पड़े वे सत्ता से चिपकी रहेंगी। उन्होंने कहा कि वे चुनावों में पानी की तरह रुपया बहायेंगी। लेकिन

जनता पार्टी के पास पैसा नहीं है। उन्होंने श्रोताओं से आग्रह किया "जीतने के लिए हमें आपके वोट भी चाहिए और आपके नोट भी चाहिए।"

श्री जगजीवनराम ने कहा कि "1969 में दल के विभाजन से पहले यह कहा जाता था कि कांग्रेस पर पांच या छः दादाओं का शासन है। पिछले 19 महीनों के दौरान पूरे देश पर डेढ़ दादाओं (इन्दिरा और उसका बेटा) का शासन रहा है।" सभा के अन्त में एक नेता ने माइक पर मज़ाक किया, "अब आप लोग घर जाएं और 'बाबी' देखें।" भीड़ ज़ोर से खिलखिला पड़ी।

अब श्रीमती गांधी एक देशव्यापी शानदार चुनाव-यात्रा पर निकल पड़ीं। शासक-दल की सहायता के लिए पूरे सरकारी यन्त्र को कस लिया गया। जब 'लंदन टाइम्स' के संवाददाता ने इस तथ्य पर टिप्पणी की तो श्रीमती गांधी ने झट उत्तर दिया कि आकाशवाणी और दूरदर्शन का चुनाव के लिए इस्तेमाल नहीं किया गया है। सरकार में संजय के प्रभाव के बारे में एक और प्रश्न का उन्होंने यह उत्तर दिया, "एक भी सरकारी निर्णय से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मन्त्रिमण्डल या मन्त्रिमण्डलीय समिति ही यह निर्णय लेती है।"

महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री एस० बी० चव्हाण का कांग्रेस दल के चुनाव अभियान को योगदान एक भाषण था, जिसमें उन्होंने कहा था कि जेलों में नज़रबन्द लोगों को तो श्रीमती गांधी का अहसानमन्द होना चाहिए। किसी और देश में तो उन्हें गोलियों का सामना करना पड़ता, श्रीमती गांधी ने तो उन्हें सिर्फ नज़रबन्द ही किया था! श्रीमती गांधी ने जल्द ही अपने शाही अन्दाज़ को त्याग दिया। अपने चुनाव-क्षेत्र रायबरेली में, जहां वे अपना नामांकन पत्र दाखिल करने गई थीं, 17 फरवरी को एक सभा में उन्होंने कहा कि जब भी वे इस नगर में आई हैं विभिन्न योजनाओं के रूप में जनता को कुछ न कुछ देने आई हैं, "लेकिन इस बार मैं आप से कुछ अर्थात् आपका मत मांगने आयी हूं।" उनके वक्तव्य में विनम्रता आनी शुरू हो गई थी।

अब तक श्रीमती गांधी देश के आर-पार चल रही जनता-हवा के प्रति अत्यन्त सचेत हो चुकी थीं। उन्होंने लोगों की भावनाओं को छूना शुरू कर दिया। पश्चिमी बंगाल में कोन्ताई में 19 फरवरी को एक भाषण में श्रीमती गांधी ने कहा, "ये दल मुझे घेरने और मुझे छुरा घोंपने के लिए एकत्र हुए हैं।" आगामी सप्ताहों में श्रीमती गांधी के अभियान का यही मुख्य स्वर बन गया।

जनता पार्टी ने "घेरने और छुरा घोंपने" के इन आरोपों पर आपत्ति तो की ही उन्हें यह डर भी लगा कि कहीं श्रीमती गांधी भय और सन्देह का और हिंसा तक का ऐसा वातावरण पैदा न कर दें, जिससे सार्वजनिक शान्ति भंग हो जाए और चुनाव रुक जाएं। बार-बार के ऐसे आरोपों में उन्हें अनिष्टकर मन्तव्य दीख पड़ा और उन्होंने ऐसे तरीकों से पैदा की जा रही स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित

करते हुए चुनाय आयोग को पत्र लिखा।

श्रीमती गांधी की दृष्टि में सब कुछ जायज़ था। मत प्राप्त करने के लिए उन्होंने साम्प्रदायिक विद्वेष एवं सहानुभूति को भी जागृत किया। भोपाल में, जो मुख्यत: मुस्लिम क्षेत्र है, और जहां से कांग्रेस ने डा० एस० डी० शर्मा को खड़ा किया था, श्रीमती गांधी ने कहा कि जनता राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का मुखौटा भर है। उन्होंने मतदाताओं को उकसाया कि वे इस क्षेत्र से एक युवक मुस्लिम उम्मीदवार खड़ा किए जाने की जनता पार्टी की चाल में न फंस जाएं। उन्होंने उन्हें याद दिलाया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ही राष्ट्रपिता की हत्या के पीछे था। ऐसा उन्होंने इस तथ्य के बावजूद कहा कि नेहरू सरकार ने पूरी खोजबीन के बाद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को इस आरोप से बरी कर दिया था। पंजाब में श्रीमती गांधी ने सिक्खों को जनता पार्टी के विरुद्ध मोड़ने के लिए कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेनक संघ और जनसंघ ने पंजाबी सूबे और पंजाबी भाषा का सदा विरोध किया है।

रांची में 27 फरवरी को श्रीमती गांधी ने घोषणा की कि जनता पार्टी की नींव गांधीजी के और सर्वोदय के सिद्धान्तों पर नहीं, बल्कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के सिद्धान्तों पर टिकी है। उन्होंने एक महान नेता (अर्थात् श्री जयप्रकाश) पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने पुलिस और सेना को विद्रोह के लिए उकसाया था। उन्होंने यह भी आरोप लगाया कि उनके भूतपूर्व साथी (अर्थात् श्री जगजीवनराम) ने उनकी पीठ में छुरा भोंकने की कोशिश की।

इतना सब श्रोता हजम नहीं कर सकते थे। उन्होंने कांग्रेस-विरोधी और इन्दिरा-विरोधी नारे लगाने शुरू कर दिए। इससे वे और भी अधिक भड़क उठीं। उन्होंने माइक में चिल्लाकर कहा, "जितना अधिक आप चीखेंगे, उतनी ही बड़ी जीत हमारी होगी।"

16
यवनिका पतन

मार्च के आरम्भ में यह स्पष्ट हो गया था कि मतदाता कांग्रेस-दल के विरोधी बन गए हैं। श्रीमती गांधी इस रुख को देखकर बहुत ही उद्विग्न थीं। लगभग इसी समय, कहा जाता है, श्रीमती गांधी ने एक हताश योजना सोच निकाली, जिसके अनुसार चुनाव रद्द कर दिए जाने थे और देश में सैनिक शासन की घोषणा कर दी जानी थी। विश्वास किया जाता है कि उन्होंने सेना-प्रमुख जनरल टी० एन० रैना को अपनी इस योजना में सहयोग के लिए बुलाया। कहा जाता है कि जनरल रैना ने इस योजना में उनका साथ देने से पक्की तरह इंकार कर दिया। कहा जाता है कि राष्ट्रपति भी इस मामले में उनसे सहयोग के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन इस तनावपूर्ण अवधि में सैनिक अधिकारियों को आदेश दिया गया था कि वे अपनी-अपनी जगह सतर्क रहें।

आमतौर से जनता और कांग्रेस की चुनाव-सभाएं एक दूसरे के ठीक बाद होती थीं। लोग कांग्रेस के वाहनों में आते थे, लेकिन जनता पार्टी की सभाओं में बैठते थे। कांग्रेस की सभाओं में या तो खिन्न खामोशी रहती थी या लोग कांग्रेस विरोधी नारे लगाते थे।

दक्षिण में श्रीमती गांधी को कोई उल्लेखनीय विरोध नहीं मिला। फिर भी, वे धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तर्क की लकीर ही पीटतीं और अब तक उनका खब्त बन चुके राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में ही बोलतीं। 7 मार्च को कोचीन में उन्होंने कहा कि दक्षिण के लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के बारे में नहीं जानते। उन्होंने उन्हें चेतावनी दी कि अल्पसंख्यकों के हित और उनका भविष्य सिर्फ कांग्रेस के हाथों में ही सुरक्षित रह सकेगा। दक्षिण में जाने पर वे धार्मिक नेताओं से मिलने का विशेष ध्यान रखती थीं।

उत्तर में पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में, जिन्हें परम्परा से युद्धों एवं आक्रमणों को झेलना पड़ा है, श्रीमती गांधी बाहरी खतरे की बात करती थीं। वे कहती थीं, भुट्टो जीत गया है और पाकिस्तान एक मजबूत राष्ट्र के रूप में उभर आया है। वे अपने श्रोताओं को याद दिलातीं कि "हम नहीं भूल सकते" कि पाकिस्तान ने एक बार भारत के साथ "सहस्रवर्षीय युद्ध" की बात की थी। वे कहतीं "आपने बहादुर सिपाही पैदा किए हैं। आइए, हम इस देश को कमज़ोर न बनने दें और बाहरी खतरों से इसे बचायें।"

श्रीमती गांधी, लगता है, पकड़ खो रही थीं। 13 मार्च को लखनऊ में उन्होंने कहा, "बड़े संकट का समय है" और उन्होंने कुछ गम्भीर घटनाओं का हवाला दिया और बोलीं, "इनके बारे में मैं आपको बाद में बताऊंगी।" तब उन्होंने घोषणा की, "वे मुझे चारों ओर से घेरकर मार डालने की कोशिश कर रहे हैं।" श्री जगजीवनराम द्वारा सरकार एवं कांग्रेस से त्यागपत्र को उन्होंने "नीचतम कोटि का काम" बताया। वे चिल्लाकर बोलीं, "उन्होंने प्रधानमन्त्री और उनके पद से विश्वासघात किया है और उनका अपमान किया है। प्रधानमन्त्री का अपमान करके उन्होंने देश का अपमान किया है।"

व्यग्र श्री जयप्रकाश आश्चर्य करते थे कि कैसे एक व्यक्ति को देश के बराबर रखा जा सकता है? यदि वे प्रधानमन्त्री हैं तो कैसे वे देश के कानून और आलोचना से ऊपर हो सकती हैं?

हरियाणा में बंसीलाल के चुनाव-क्षेत्र भिवानी में बोलते हुए श्रीमती गांधी ने लोगों से अनुरोध किया कि वे ज़्यादतियों को "भूल जाएं और क्षमा कर दें" और "कांग्रेस से अपने नये सम्बन्ध जोड़ें।" दिल्ली में झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वालों को उन्होंने आश्वासन दिया कि उनकी अनधिकृत बस्तियों को नियमित कर दिया जाएगा। पुनर्वास बस्तियों में जाकर उन्होंने विस्थापितों को स्वामित्व के अधिकारों, अधिक अच्छे जीवन और अधिक सुविधाओं का वचन दिया। मंगोलपुरी में, सीधे-सादे गरीब लोगों से उन्होंने कहा, "मैं आपकी बहन की तरह आपका वोट मांगने के लिए आपके पास आई हूं।"

श्रीमती गांधी की मनःस्थिति आशंका से आतंक तक नीचे उतर आई। चुनाव-अभियानों पर लिखने वाले पत्रकार, जनता लहर की और आपातस्थिति के दौरान किए गए अपमानों और अत्याचारों पर लोगों के रोष की अविश्वसनीय कहानियां लेकर लौट रहे थे। संजय और इन्दिरा दमन एवं एकाधिकारवाद के प्रतीक बन चुके थे। जिस ढंग से अफसरों ने लोगों से व्यवहार किया था, उससे लोगों की मानवीय प्रतिष्ठा पर आघात हुआ था।

नई दिल्ली में देहाती क्षेत्रों से आने वाली इन कहानियों को बुद्धिजीवी काफी संदिग्ध दृष्टि से देखते थे। 1971 और 1972 के अपने अनुभव के आधार पर, इन कहानियों पर विश्वास करने से उन्होंने इन्कार कर दिया था। वे ज़ोर देकर कहते थे, "अन्त में श्रीमती गांधी जीत जाएंगी। नाराज होकर भी लोग मत उन्हींको देंगे। पूरे देश के साधन उनके हाथ में हैं।" इन्दिरा गांधी सरकार के प्रति जनता के रोष की गहराई को नापने में वे विफल रहे थे। ज़्यादतियों का दोष स्थानीय अधिकारियों पर डालने के सरकार के कायरतापूर्ण प्रयास को धन्यवाद, इस बार नौकरशाही भी कांग्रेस के विरुद्ध हो गयी थी।

प्रधानमन्त्री के अपने राज्य उत्तर प्रदेश में भी, जिसे इलाहाबाद के नेहरू

परिवार पर सदा से गर्व रहा है, लोग अब भिन्न भाषा बोल रहे थे। परिवार नियोजन की ज़्यादतियों के अतिरिक्त लोग मीसा और भारत सुरक्षा कानून के अन्तर्गत की गई गिरफ्तारियों पर नाराज़ थे। जैसाकि 1971 में था, श्रीमती गांधी गरीबों और पददलितों की साहसपूर्ण संरक्षक अब नहीं रही थीं।

लोगों की सहानुभूति पलटकर मुक्त हुए उन नज़रबन्दियों की ओर मुड़ गई थी, जिन्होंने सरकारी दमन के कारण कष्ट सहा था, और जो अब लोकतन्त्र एवं सामान्यजन के प्रति न्याय के लिए लड़ रहे थे। श्रीमती गांधी अपना करिश्मा खो चुकी थीं। श्रीमती गांधी एवं उनके बेटे को यशस्वी बनाने वाले रेडियो से किए जाते सरकारी प्रचार में अब लोगों का कोई विश्वास नहीं रह गया था। गांवों तक में लोग सच्ची खबरों के लिए बी० बी० सी० सुनते थे।

हरियाणा में बंसीलाल की क्षमा-याचनाओं और श्रीमती गांधी की व्यक्तिगत यात्राओं के बावजूद लोग अवसर की प्रतीक्षा में थे कि कब वे राजनीतिक नक्शे से शासक दल को मिटा डालें। कठिनाई से ही कोई गांव बचा होगा, जिसने बंसीलाल और उसके पुत्र, युवा कांग्रेस के नेता, सुरेन्द्र के हाथों कष्ट न सहे हों।

अमेठी में संजय कोई अजनबी नहीं था। वह और उसका गुरु धीरेन्द्र ब्रह्मचारी अपने विमान से आकर द्वितीय विश्वयुद्ध के ज़माने की एक पुरानी हवाई पट्टी पर पहले भी उतरे थे और उन्होंने ग्रामीणों मं उत्कण्ठा, यहां तक कि आतंक भी पैदा किया था। जहाज उड़ाने वाला स्वामी लोगों के लिए एक असामान्य बात थी। पास के रायबरेली क्षेत्र को जो लाभ मिले थे, उनसे लोग पूरी तरह परिचित थे और उन्हें आश्वासन दिया गया था कि संजय चुन लिया गया तो अमेठी को भी वे सब वरदान मिलेंगे।

संजय ने नगर में एक प्रभावशाली और आरामदेह दफ्तर खोल लिया था। वहां जीपें थीं और कार्यकर्त्ताओं की भीड़ थी। अमेठी का भूतपूर्व राजा तथा उसका पुत्र संजय के सक्रिय प्रचारक थे। इसके मुकाबले जनता उम्मीदवार एक छोटे-से कस्बे के वकील श्री रवीन्द्रप्रताप सिंह ने एक कमरे का मामूली दफ्तर बनाया था। उसके कार्यकर्त्ता और प्रचारक थे, उत्तरप्रदेश के छात्र और दिल्ली एवं पंजाब जैसी सुदूर जगहों से आए मुक्त नज़रबन्दी। उनके पास जीपें नहीं थीं। बाइसिकलें तक नहीं थीं। बदलने के लिए कुछ कपड़े, कुछ मीठा और भुने हुए चने थैले में डालकर वे श्री जयप्रकाश, लोकतन्त्र, मानवीय प्रतिष्ठा और वोट की कीमत के बारे में बातें करते हुए एक गांव से दूसरे गांव घूम रहे थे। गांव के लोग उनकी बातें सुनते थे। वे बोलते नहीं थे, लेकिन उन्होंने अपना निश्चय दृढ़ कर लिया था।

एक विदेशी संवाददाता ने, जो उस समय अमेठी गया था जब संजय और उसकी पत्नी मेनका क्षेत्र में प्रचार कर रहे थे और उपहार बांट रहे थे, एक रोचक अनुभव बताया है। पहली बात तो यह कि संजय संवाददाता से और उसके पीछे

घिसटते फोटोग्राफर से खुश नहीं था। विदेशी संवाददाता के अनुसार संजय गांव वालों से अधिक बात नहीं करता था। वह बस उनका अभिवादन करता था और उन्हें मत देने के लिए कहता था। उसकी पत्नी उपहार लेकर चलती थी, जिसमें अन्य चीज़ों के साथ विवाहित स्त्रियों का श्रृंगार कुंकुम भी रहता था। एक गांव में सदा की तरह उसने एक स्त्री को कुंकुम देना चाहा। उसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि उसे उसकी ज़रूरत नहीं है। मेनका ने सुझाव दिया, "अपनी बेटी को दे देना।" लेकिन स्त्री ने अब भी इंकार कर दिया। मेनका ने अपनी कार में से एक कैलेण्डर निकाला, जिस पर श्रीमती गांधी का चित्र था। उसने कहा, शायद तुम अपनी झोंपड़ी की दीवार पर इसे लटकाना चाहोगी। नहीं, स्त्री का उत्तर था। उसकी झोंपड़ी में पहले से ही एक कैलेण्डर है।

तब तक कुछ और स्त्रियां वहां इकट्ठी हो गई थीं। लेकिन किसी ने भी मेनका से कोई उपहार स्वीकार नहीं किया। एक बीमार बच्चे को देखकर मेनका ने प्रस्ताव रखा कि इसे पास के गांव में डाक्टर के पास ले चला जाए। लेकिन मां ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

तब मेनका ने सुझाव दिया कि यदि वह अकेली जाना नहीं चाहती तो वह अपने पति को अपने साथ ले जाए। इसमें समय नहीं लगेगा, क्योंकि वह उन्हें कार में भेजेगी। (मेनका ने पीछे चलते विदेशी संवाददाता से इस काम के लिए अपनी कार दे देने की प्रार्थना की थी।)

बच्चे की मां आखिर में बोली, "तुम क्यों चाहती हो कि मेरा पति साथ चले ? क्या नसबन्दी के लिए ?" उसने एक सीत्कार की और तब मुड़कर अपनी झोंपड़ी में चली गई।

चण्डीगढ़ में कांग्रेसी उम्मीदवार श्री सतपाल कपूर की सार्वजनिक सभाओं में लोगों ने चीख-चिल्लाकर उन्हें बोलने नहीं दिया। जब वे बाज़ार क्षेत्र में प्रचार के लिए गए तो लोगों ने उन्हें घेर लिया और 'वापस जाओ' के नारों से उनका स्वागत किया। दिल्ली के कुछ नेता श्री सतपाल की सहायता के लिए पहुंचे, तो उनसे भी ऐसा ही रूखा व्यवहार किया गया।

एक सभा में जब भीड़ ने श्री सतपाल कपूर को बोलने नहीं दिया तो एक कांग्रेसी ने चुनाव के बाद "मतदाताओं को सबक सिखाने" की धमकी दी। यह धमकी कांग्रेसी उम्मीदवार के लिए और अधिक परेशानी का कारण बन गई। मंच पर स्थित कांग्रेसियों को लोग चीख-चिल्लाकर चुप करा देते और वे जल्दी से अपनी दुकान उठाकर गायब हो जाते।

जालन्धर में 11 मार्च को श्रीमती गांधी ने जिस सभा के सामने भाषण दिया, वह लोगों के मिज़ाज और राज्य में कांग्रेस की इज़्ज़त का मापदण्ड थी। एक शानदार सभा करने के लिए उत्सुक राज्य सरकार ने पास के कस्बों-गांवों से लोगों

को लाने के लिए सैकड़ों बसों का इंतज़ाम किया था। सरकारी दफ्तरों ने अपने कर्मचारियों को दोपहर बाद की छुट्टी दे दी थी, जिससे वे संध्या समय सार्वजनिक सभा में जा सकें।

यहां तक कि सभा का समय सायं 7-30 से बदलकर, दिन छिपने से पहले का कर दिया गया था, जिससे लोगों को घर लौटने में देरी न हो। नगरपालिका के कर्मचारियों, मेहतरों, रिक्शा चलाने वालों और तांगेवालों को सैकड़ों की संख्या में जलूस के रूप में सभा के स्थल बलंटन पार्क में लाया गया था। अनेकों हरिजनों को मंच पर बिठाया गया था, जिससे कांग्रेस के प्रति हरिजनों के समर्थन को प्रदर्शित किया जा सके।

मुफ्त वाहन और दफ्तर से आधे दिन की छुट्टी का लाभ उठाकर लोग आए थे, लेकिन वे खिन्न थे। कांग्रेस के वक्ताओं ने श्री जगजीवनराम के विरुद्ध जो विचार रखे उन्होंने, और उनके द्वारा किए गए इस रहस्योद्घाटन ने कि अकालियों को उनकी अपनी प्रार्थना पर गिरफ्तार किया था, श्रोताओं को विरोधी बना लिया था और वे अस्थिर हो उठे थे। जब सभा समाप्त हुई तो वे कांग्रेस द्वारा लाई गई गाड़ियों में बैठकर घर की ओर चल दिए और रास्ते में उन्होंने जनता-समर्थक और कांग्रेस-विरोधी नारे लगाए।

उत्तरप्रदेश में जब जनता पार्टी के कार्यकर्त्ताओं ने गांवों में पार्टी के झण्डे बांटे तो लोगों ने कहा कि उन्हें अपने साधन व्यर्थ नहीं करने चाहिए। गांववालों ने एक शरारतभरी मुस्कान के साथ बताया कि, "हमारे पास आपके झण्डे पहले से ही हैं।" कांग्रेस कार्यकर्त्ता उससे पहले उनके यहां झण्डे बांट चुके थे। लोगों ने इन झण्डों में से सफेद हिस्सों को निकाल दिया था और हरे और नारंगी को परस्पर सीकर जनता पार्टी के झण्डे तैयार कर लिए थे। कुछ क्षेत्रों में जनता पार्टी के कार्यकर्त्ताओं से कहा गया, "हम जानते हैं, हमें क्या करना है। आप लोग गांवों में जाइए, जहां आपकी ज़रूरत है। हमारे बारे में चिन्ता मत करिए। यहां आपका काम हम संभाल लेंगे।"

श्री जगजीवनराम के गढ़ और चुनाव-क्षेत्र सहसराम की ओर कांग्रेसी नेताओं ने विशेष ध्यान दिया था। श्रीमती गांधी के अतिरिक्त श्री बरुआ, श्री मीरकासिम तथा श्री कमलापति त्रिपाठी प्रचार के लिए सहसराम गए थे। उनका वहां काले झण्डों से स्वागत किया गया था। जब कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने 'इन्दिरा गांधी की जय' के नारे लगाए तो लोगों ने उत्तर दिया 'लोकनायक ज़िन्दाबाद'।

जब सहसराम के लोगों से श्रीमती गांधी के प्रति समर्थन की अपील की गई तो उन्होंने दृढ़तापूर्वक 'नहीं' में जवाब दिया। लगभग हर झोंपड़ी, चाय की दुकान और हर साइकिल पर जनता पार्टी के नारंगी और हरे रंग लहरा रहे थे। कांग्रेस

के प्रदेश-अध्यक्ष सीताराम केसरी ने झूठ-मूठ फैलाया कि जनता कार्यकर्त्ताओं ने कांग्रेसी नेताओं पर घातक हमले किए हैं, लेकिन लोगों पर इसका कोई असर नहीं पड़ा।

बिहार के मुज़फ्फरपुर चुनाव क्षेत्र ने उग्र ट्रेड यूनियन नेता श्री जार्ज फर्नेंडीज़ को उनकी अनुपस्थिति में चुना। वे बड़ौदा डायनामाइट मामले में अपराधी थे और अभी तक जेल में थे। उन्होंने अपने कांग्रेसी प्रतिद्वन्द्वी को तीन लाख से ऊपर मतों के भारी अन्तर से हराया।

कांग्रेसी प्रचारक देहाती क्षेत्रों को दिए गए लाभों और सुविधाओं की तथा ग्रामीणों को दिए गए कर्जों की बातें करते थे। बदले में लोग उन्हें याद दिलाते थे कि इन कर्ज़ों को लेने के लिए उन्हें कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को रिश्वतें देनी पड़ी थीं।

अन्त में राज्यों की कांग्रेसी सरकारें और स्थानीय प्रशासन सामूहिक रिश्वतें देने में जुट गए। पंजाब सरकार ने अपने कर्मचारियों को जनवरी 1977 की पिछली तारीख से दो अतिरिक्त मंहगाई भत्ते देने की घोषणा की। पश्चिमी बंगाल में राज्य कर्मचारियों का किराया भत्ता 10 से बढ़ाकर 15 प्रतिशत कर दिया गया। सरकार ने डाक्टरी सहायता को लगभग दुगना कर दिया और मंहगाई भत्ते को बढ़ाने का वचन दिया। उत्तर प्रदेश के नगरों की नगरपालिकाओं ने अपने कर्मचारियों को किराया भत्ता देने की घोषणा की और राशनकार्डों पर अतिरिक्त चीनी देने के आदेश भी दिए। मुस्लिम मतदाताओं को खुश करने के लिए चमड़ा कमाने के कारखानों के कर्मचारियों के न्यूनतम वेतन बढ़ा दिए गए।

कर्नाटक में कुछ समय पहले हवानूर आयोग ने राज्य में पिछड़े वर्गों के लिए 32 प्रतिशत नौकरियों के संरक्षण की सिफारिश की थी। इन सिफारिशों को खत्ते में डाल दिया था। इन्हें अचानक वहां से निकाल लिया गया और सिफारिश किए गए 32 प्रतिशत के स्थान पर सरकार ने पिछड़े वर्गों के लिए 40 प्रतिशत संरक्षण की घोपणा की। मुसलमानों और ईसाइयों को भी उन्होंने पिछड़ी श्रेणी में रख दिया। केरल में सरकार ने चावल की कीमत में 25 प्रतिशत की कमी घोषित की। मध्यप्रदेश में राज्य कर्मचारियों को अतिरिक्त मंहगायी भत्ते की किश्तें देने का वायदा किया गया।

श्री जगजीवनराम और जनता पार्टी के नेता, "मतदादाओं को खुश करने के लिए सरकारी अधिकारों के दुरुपयोग" पर झींकते रहे, लेकिन इस बारे में वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। घृणास्पद नसवन्दी अभियान को रातों-रात संजय के पांच सूत्रों के साथ दफना दिया गया था। फिर भी क्षमा याचनाएं, धमकियां, रिश्वतें, साम्प्रदायिक एवं जातीय अपीलें लोगों के क्रोध को शान्त नहीं कर सकीं।

श्री जयप्रकाश यह सब देख रहे थे। लेकिन सामान्यजन की मूलभूत गरिमा, आत्मसम्मान और सत्यनिष्ठा में उनकी आस्था थी। उन्होंने पिछले दमन की याद उन्हें दिलाई और भावी खतरों के प्रति उन्हें आगाह किया।

राष्ट्र के मतदान पर जाने से तीन दिन पहले नई दिल्ली से उन्होंने एक "अन्तिम अपील" जारी की जिसमें उन्होंने कहा कि शासक दल अभी भी "काले कानूनों का नाम जप रहा है।" उन्हें इसमें कोई सन्देह नहीं था कि यदि मौका दिया गया तो वे इन काले कानूनों का इस्तेमाल लोगों के विरुद्ध करेंगे। "यह आपका अन्तिम अवसर है। यदि आप चूक गए तो 19 महीनों का अत्याचार 19 वर्षों का आतंक बन जाएगा।" श्री जयप्रकाश ने कहा कि जनता पार्टी का लक्ष्य प्रगति और न्याय है। और "इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता पहली आवश्यकता है।" उन्होंने आगे कहा, "जब स्वतन्त्रता खो जाती है तो सब कुछ खो जाता है।"

उन्होंने कहा कि आपातस्थिति की ये नृशंसताएं एक स्वतन्त्र समाज में सम्भव ही न हुई होतीं। लोग प्रेस, सार्वजनिक मत, प्रदर्शनों एवं आन्दोलनों के माध्यम से इस दमन के विरुद्ध उठ खड़े हुए होते। लेकिन दुर्भाग्यवश समाज को गुलाम बना लिया गया था। उसने अपनी स्वतन्त्रता खो दी थी। उन्होंने कहा, "हम चाहते हैं कि हमारे अधिकारी और निर्वाचित प्रतिनिधि जनता के प्रति जवाबदेह हों।" एक स्वतन्त्रता ही उनके वैसा होने की गारन्टी दे सकती है।

उन्होंने प्रश्न किया, 'शासक जवाबदेह कैसे हो सकते हैं, जब न्यायपालिका के प्रभाव को ही खत्म कर दिया गया हो ? आप भ्रष्टाचार का अन्त कैसे कर सकते हैं, जब आप उसके बारे में न बात कर सकते हैं, न लिख सकते हैं ? कैसी भी जवाबदेही कैसे आ सकती है, जब सत्ता पिछले कमरे में बैठे उन लोगों के द्वारा चलायी जाती हो जो किसी भी पद पर न हों ?"

उन्होंने मतदाताओं को याद दिलाया, "उन लोगों ने अन्तिम क्षण पर सुविधाएं देकर आपको रिश्वत देने की कोशिश की है। इनमें किसी भी सुविधा से भी आप पथभ्रष्ट न हों। अर्जुन की तरह बनिए और उसीकी तरह अपनी दृष्टि को केन्द्रीय मुद्दे से इधर-उधर न होने दीजिए। वह मुद्दा है, "स्वतन्त्रता या गुलामी, लोकतन्त्र या एक वंश की तानाशाही।"

अन्त में 20 मार्च 1977 का नियतिपूर्ण इतवार आ ही गया।

सन्ध्या के 5 बजे तक दिल्लीवालों ने स्तम्भित करने वाला यह समाचार सुन ही लिया कि दिल्ली के संघीय प्रदेश के सातों चुनाव-क्षेत्रों में कांग्रेस जनता पार्टी से हार गई है और वह भी भारी बहुमत से। कांग्रेस ने अन्तिम क्षण में जो संशोधित गणनाएं की थीं, उनसे उन्हें सात में से कम से कम दो स्थान जीतने की आशा बन गई थी। लेकिन यहां भी वे गलत सिद्ध हुए।

इसने पूरे उत्तरीय भारत के लिए एक रुख निश्चित कर दिया।

7 बजे सन्ध्या तक समाचार एजेंसी और समाचार पत्रों के दफ्तर इस अविश्वसनीय खबर से चमत्कृत थे कि रायबरेली में श्रीमती गांधी श्री राजनारायण से पीछे हैं। कोई इसपर विश्वास नहीं कर सका। उनका बेटा संजय भी अमेठी में श्री रवीन्द्रप्रताप सिंह से हार रहा था।

8 बजे तक खबर आई कि श्री राजनारायण और श्रीमती गांधी के बीच का फासला तेज़ी से बढ़ रहा है। लेकिन सरकार द्वारा नियन्त्रित दूरदर्शन की 8 बजे की खबरों में, आन्ध्रप्रदेश में कांग्रेस की विजयों का ही ज़िक्र किया गया और रायबरेली एवं अमेठी की अधिक महत्त्वपूर्ण खबरों के बारे में कुछ नहीं कहा गया। बाद की खबरों में यह कटु सत्य बताने के लिए उन्हें विवश होना पड़ा। लेकिन इस खबर के बाद ही करुणापूर्ण भजन प्रसारित किए गए।

हर्षोत्फुल्ल भीड़ ने जिसकी आंखें बहादुरशाह ज़फर मार्ग पर स्थित अखबारों के दफ्तरों के बाहर लगे विशाल चुनाव-पट्टों के बदलते अंकों पर टिकी थीं, इस आनन्दपूर्ण समाचार को आतिशबाज़ियां छोड़कर मनाया। उन्होंने एक दूसरे को बधाई दी। एक दूसरे का आलिंगन किया और खुशी से चीख-चीखकर आकाश गुंजा दिया।

मन्त्रिमण्डल की एक तात्कालिक बैठक प्रधानमन्त्री के घर रात के 10 बजे बुलाई गई और उस क्षण तक की स्थिति पर विचार किया गया। मन्त्रिमण्डल ने कार्यकारी राष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती से उस आपातस्थिति को उठा लेने की सिफारिश की जो पिछले 20 महीने और 20 दिन से देश में लागू थी।

रात के 1 बजे रायबरेली में गिनती पूरी हुई। अब कोई भी सन्देह नहीं रह गया था कि श्रीमती गांधी उस चुनाव-क्षेत्र में हार गई हैं, जिसे उन्होंने इतनी लगन और पक्षपात के साथ पोसा था। तथाकथित अनियमितताओं के आधार पर फिर से गिनती कराने का अन्तिम क्षण का प्रयास भी विफल हो गया।

21 मार्च को प्रातः जब समाचारपत्र आए तो इस खबर से दुनिया की नसों में बिजली-सी दौड़ गई और देश ने हर्ष मनाया। आखिरकार लम्बी रात का अन्त हो गया था और सूर्य फिर से चमक रहा था।

और जब इस ग्रीक त्रासदी पर पर्दा गिर रहा था, तो देश ने और संसार ने इन्दिरा गांधी को अब भी मंच के बीचों-बीच खड़ा देखा। इस नाटकीय उपसंहार के लिए अब भी पश्चात्ताप रहित, अनम्र, अविनत भाव से वे प्रेस को, विरोधीपक्ष के तरीकों को, नौकरशाही को और अपने चतुर्दिक् के हर व्यक्ति और हर चीज़ को दोष दे रही थीं।

उनके चारों ओर अंधेरे में उस दुर्ग के खण्डहर और टूटे-फूटे पत्थर बिखरे

पड़े थे, जिस दुर्ग का नाम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस था और जो अविभेद्य, अनश्वर और शाश्वत माना जाता था।

इन खण्डहरों के बीच एक कोने में दुबका संजय गांधी दीख पड़ रहा था—वह बिगड़ा हुआ लड़का, जो अब भी आंखें तरेर रहा था और जो इस भयानक विनाश के लिए सबसे अधिक ज़िम्मेदार था।

उपसंहार

अपने देश के जीवन के इस भाग्यपूर्ण क्षण में एक पतला-दुबला आदमी, जिसकी आवाज़ में नम्रता है पर हृदय में लोहे की-सी दृढ़ता, भारतीय जनता का नेतृत्व करने के लिए आगे आया। वह दृढ़ता के साथ और बिना डगमगाये एकाधिकारवाद के घोर अंधेरे में से उसे लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता तक ले गया।

भारतीय जनता लोकनायक जयप्रकाश की लगभग उतनी ही ऋणी है, जितनी कि महात्मा गांधी की। मार्च 1977 में उसके साथ जो गुजरा, वह एक दूसरी मुक्ति थी; और श्री जयप्रकाश की अपने लोगों में अडिग आस्था तथा विभिन्न राजनीतिक मान्यताओं वाले जन-नेताओं के दिलों और दिमागों पर उनकी पकड़ ही यह चमत्कार ला सकती थी।

जब अन्य नेता हिचकिचा रहे थे और डांवाडोल थे, उस समय 78 वर्ष के इस रुग्ण व्यक्ति ने उस बीड़े को उठा लिया, जिसे दो महीने का बीच देकर चुनाव की शक्ल में श्रीमती गांधी ने पूरी तरह अप्रस्तुत विरोधी पक्ष के सामने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए फेंक दिया था। डायलेसिस के कक्ष में लगातार आते और जाते हुए भी और सदा क्लान्ति की स्थिति में रहते हुए भी श्री जयप्रकाश ने अपनी जनता का मार्ग-दर्शन करने, उन्हें उत्साहित करने तथा उनके नेताओं के हृदय में हिम्मत भरने की शक्ति और उसका समय निकाल लिया था।

इस संवेदनशील आत्मा ने, जिसने 25 जून 1975 के श्रीमती गांधी के भारी हथौड़े की चोट से सुन्न होकर निराशा में भरकर अपनी डायरी में 21 जुलाई को यह लिखा था कि "मेरी दुनिया खंड-खंड होकर मेरे चारों ओर बिखर गई है" शीघ्र ही अपने को संभाल लिया। वह शीघ्र ही अपनी स्फूर्ति को फिर से प्राप्त कर लेता है और अपनी जेल की कोठरी से या अस्पताल के बिस्तर से श्रीमती गांधी पर गरजना जारी रखता है।

जब अपनी नज़रबन्दी के चार दिनों के भीतर ही उन्हें आल इंडिया मेडिकल इन्स्टीट्यूट और वहां से बम्बई के जसलोक अस्पताल भेजना पड़ा था, तो बताया जाता है कि विशेषज्ञों की राय के आधार पर भारत सरकार को यह आशा नहीं थी कि श्री जयप्रकाश कुछ दिन से अधिक जियेंगे और उसने अनिष्ट की तैयारी कर ली थी और उनकी अन्त्येष्टि तक का प्रबन्ध कर लिया था।

लेकिन जीने और अपने उद्देश्य को पूरा करने के अपने दृढ़ निश्चय के कारण

श्री जयप्रकाश इस संकट से बच गए और फिर यात्राओं एवं सार्वजनिक कार्यक्रमों के उस क्रम में कूद पड़े जो उनसे आधी आयु के व्यक्ति को भी थकाने के लिए काफी था।

देश का सौभाग्य है कि अपने स्वप्न को पूरा हुआ और देश में लोकतन्त्र वापिस आया देखने के लिए श्री जयप्रकाश अभी भी हमारे बीच में हैं। जनता का मार्ग-दर्शन करने के लिए तथा जनता पार्टी के नेताओं को घेरकर इकट्ठा रखने और एक ही जुए के नीचे काम करने का अभ्यस्त उन्हें बनाने के लिए वे अभी हमारे बीच में हैं।

यह एक प्रखर गाथा है और इसपर एक पृथक पुस्तक लिखी जा सकती है।

चुनाव परिणामों ने भारतीय राजनीति के नक्शे को बुरी तरह अस्त-व्यस्त कर डाला। परिवर्तन दूरगामी और विशिष्ट सिद्ध हुए हैं। नए सन्दर्भ ने लगभग रातों-रात आपातस्थिति से पहले की नामावली को असंगत और पुरानी कर दिया है। 19 महीनों की भयानक परीक्षा में, भारतीय राजनीति से लम्बे समय से बंधी अनेकों पुरानी धारणाएं एवं अर्थ-संकेत घुलकर नष्ट हो गए और नए मापदण्डों या मूल्यों ने उनका स्थान ले लिया। जनता सरकार के आने के साथ निष्ठा, संयम एवं सार्वजनिक कर्तव्य-भावना जैसे शब्द एवं मुहावरे छलपूर्ण, मधुर आवाजें मात्र न रहकर मन्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों के आचरणों के मापदण्ड बन गए हैं, और हम आशा करते हैं कि ऐसा हमेशा के लिए हो गया है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक, जनसंघी, जमाती, मुस्लिम लीगी, पुराने कांग्रेसी, भारतीय लोकदल के रूढ़ सदस्य— सब एक साथ श्रीमती गांधी के एकाधिकारवादी दमन के कोड़े के नीचे रहे हैं। 19 महीनों तक जेल की कोठरियों में एक साथ रहे हैं और उन्होंने कष्ट सहे हैं। वे बहुत निकट से एक दूसरे को जान और समझ गए हैं। एक दूसरे के सिद्धान्तों एवं नीतियों पर निःसंग भाव से विचार करने का और व्यक्तिगत एवं अन्य कोनों को घिसने का और यहां तक कि एक दूसरे को पसन्द करने का काफी समय उन्हें मिला है। नये नैतिक परिवेश में सम्प्रदायवाद जैसे शब्दों ने अपनी चुभन खो दी है।

इस प्रकार जब वे सब जनवरी और फरवरी 1977 में छूटकर आए, तो उन्होंने अपने अतीत को दफना देने, एक नया पन्ना पलटने, एक दल बनाकर एक मोर्चे पर काम करने का दृढ़ संकल्प किया, जिससे कि सामान्य एक चरम लक्ष्य को अपनाकर तानाशाही को सदा के लिए बहिष्कृत किया जा सके और इस देश में लोकतन्त्र फिर से लाया जा सके।

आपातस्थिति तथा इसके दुरुपयोग एवं सत्ता के गलत इस्तेमाल से जो सबसे

बड़ा लाभ देश को हुआ, वह है 70 प्रतिशत अनपढ़ों के इस राष्ट्र में आई राजनीतिक जागृति। इस राष्ट्र को अभी। दूसरे दिन तक भेड़-बकरियों का राष्ट्र समझा गया था, जिसे चालाक राजनीतिज्ञ के संकेत पर जिसे वह चाहे मत देने के लिए मजबूर किया जः सकता था।

इस शुभ क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए हमें श्रीमती गांधी एवं उनके पुत्र संजय को धन्यवाद देना चाहिए। मानवों से पशुओं की तरह बरतने के उनके क्रूर मनमाने तरीकों ने ही जनता को विद्रोह करने और अपने मत की शक्ति को पहचानने के लिए उकसाया। अब क्योंकि जनता ने अपनी शक्ति पहचान ली है, इसलिए वे कभी इस हथियार पर जंग नहीं लगने देंगे और अब से बाद के हर चुनाव में इसका अच्छे प्रयोजन के लिए इस्तेमाल करेंगे।

अभी भी ऐसे उदाहरण सामने आ चुके हैं, जब मतदाताओं ने अपनी इच्छा को आग्रहपूर्वक घोषित किया है और नेताओं को बताया है कि वे क्या करें और क्या न करें। लोग सीधे बिहार के मुज़फ्फरपुर नगर से चलकर दिल्ली आए और उन्होंने जार्ज फर्नेंडीज़ से अपनी बात कही और उन्हें आदेश दिया कि वे सरकार में शामिल हो जाएं। इससे पहले मन्त्रिमंडल में शामिल होने के श्री मोरारजी देसाई के निमन्त्रण को वे अस्वीकार कर चुके थे। श्री फर्नेंडीज़ को उनके सामने जाना पड़ा, उनसे क्षमा मांगनी पड़ी और उनकी आज्ञा का पालन करने का वचन देना पड़ा।

श्री जगजीवनराम भी जनता मन्त्रिमंडल में शामिल होने से अभी हिचकिचा रहे थे। उनके घर के बाहर लोगों ने प्रदर्शन किया। लोग 'यह नाटक बन्द करो' की पट्टियां लिए हुए थे। इस प्रदर्शन ने ही बाबूजी को मजबूर किया कि वे फौरन निर्णय लें और मोरारजी सरकार में शामिल हो जाएं।

उत्तर में नौ राज्य विधान-सभाओं के लिए नामांकन चाहने वालों ने जो भद्दे दृश्य उपस्थित किए, उनका मतदाताओं पर क्या बुरा असर पड़ेगा, इससे केन्द्र के, दल के मुख्यालय के और राज्यों के सभी नेता बहुत अधिक घबड़ाये हुए थे। वस्तुतः, पिछले 30 वर्षों में भारतीय राजनीतिज्ञों को सार्वजनिक आलोचना के प्रति इतना संवेदनशील, इतना क्षमायाचक और अपने आचरण का स्पष्टीकरण देने के लिए इतना प्रस्तुत हमने कभी नहीं पाया था।

अपने क्षेत्र के लोगों के प्रति कांग्रेसी विधायकों के अतीत के दम्भी रुख की तुलना में यह एक उल्लेखनीय परिवर्तन था। 20 महीनों के दमन के बाद अन्ततः प्रेस, लगता है, अति सतर्क और अति आलोचक बनकर सामने आया था।

इसमें दो राय नहीं हैं कि सजीव, सतर्क और राजनीतिक दृष्टि से सचेत मतदाता लोकतन्त्र के लिए अनिवार्य हैं, लेकिन सत्ता एक चढ़ने वाली शराब है। मतदाता अपनी इस नव-आविष्कृत शक्ति का दुरुपयोग न करें, इसके लिए राज्य

का कर्तव्य हो जाता है कि वह मतदाताओं को उनकी ज़िम्मेदारियों की शिक्षा भी दे।

एडवर्ड ए० काईलोच ने चेतावनी दी है कि अशिक्षित जनता जब राजनीतिरत हो जाती है तो उसमें चेष्टा की और ऐसी मांगें पेश करने की भारी सामर्थ्य पैदा हो जाती है, जो समाज के विकासपरक लक्ष्यों की दृष्टि से तर्कसंगत नहीं होतीं। इसलिए संकट यह है कि सक्रिय लोकतन्त्र को जनता के सहभाग से शक्ति तो ग्रहण करनी चाहिए, पर साथ ही यदि सहभाग ऐसी विशिष्टताएं ग्रहण कर ले जो मूलभूत रूप में विवेकशून्य (अर्थात् क्रियाशीलता की विरोधी) हों, तो लोकतन्त्र का अनिवार्य उपकरण उसीके विनाश का यन्त्र बन जाता है।

केन्द्र में 30 वर्ष तक अविच्छिन्न चले कांग्रेस के शासन का अन्ततः उलट जाना और उसके स्थान पर समान रूप से अधिकारी और क्षमता-सम्पन्न एक नई उत्साही पार्टी का आ जाना, लम्बे समय से पल रहे उस सपने की उपलब्धि का प्रतीक है, जिसके अनुसार देश में एक स्थायी द्वि-दलीय प्रणाली की स्थापना अभिप्रेत थी। और यह संसदीय लोकतन्त्र के लिए एक अनिवार्य शर्त भी है।

किसी भारतीय को इस बात का अफसोस नहीं होगा कि कांग्रेस दल अब भी सापेक्षतया ज्यों का त्यों है और नई लोकसभा में उसे 154 सदस्यों की शक्ति प्राप्त है। असल में हम सब तो यह आशा करते हैं कि इन्दिरा-शासन के काले कारनामों की खोजबीन के लिए नई सरकार ने जो तीन आयोग बिठाए हैं, अगले कुछ महीनों के बीच उनके रहस्योद्घाटनों की तेज़ चमक में कांग्रेस पूरी तरह बिखर नहीं जाएगी। श्री मोरारजी देसाई द्वारा विरोधी दल के नेता को औपचारिक मान्यता दी जानी और सरकार के हर बड़े निर्णय में उनसे परामर्श करने का उनका वचन विशेष रूप से प्रशंसनीय है। इसी प्रकार जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर का यह सार्वजनिक वक्तव्य भी तारीफ के योग्य है कि वे चाहते है कि कांग्रेस दल बना रहे।

इसका कारण यह है कि लगभग समान शक्ति का विरोधी पक्ष ही सरकार को चौकन्ना और उसके आचरण को सर्वोत्तम बनाए रख सकता है। पिछले चुनावों तक हमारी राजनीतिक प्रणाली की सबसे बड़ी कमज़ोरी यही थी कि उसमें सत्ताधारी दल को कोई गम्भीर चुनौती नहीं थी। इस स्थिति ने सरकार को अनुत्तरदायी और खंडित विरोधी पक्ष को गैर ज़िम्मेदार बना दिया था और दोनों के परस्पर स्थान बदल लेने की कोई आशा ही नहीं रही थी।

लेकिन क्या यह खिचड़ी जनता पार्टी चल पाएगी ? क्या यह मिली-जुली पार्टी उन सैद्धान्तिक दबावों और बोझों को सह पाएगी जो उस समय उसपर आएंगे, जब सरकार गम्भीर और उलझी हुई आर्थिक समस्याओं से आमने-सामने होगी ? और वैसा शीघ्र ही होने वाला है। देशभक्ति और एक जीवन्त विकल्प देश

को प्रदान करने की सामान्य इच्छा यदि बनी रहे तो कोई कारण नहीं कि जनता पार्टी अपनी कठिनाइयों पर विजय न प्राप्त कर सके और पूरी अवधि तक सरकार न चला सके।

यह ध्यान रखने योग्य है कि आंग्ल-सेक्सन बिरादरी से बाहर पश्चिमी यूरोप में बहुध्रुवीय राजनीतिक प्रणाली और संयुक्त सरकारें अपवाद न होकर नियम हैं और यह प्रणाली समझौते एवं समन्वय के आधार पर काम करती है। दूसरी ओर हमारे देश में तो विरोधी पक्ष एक सामान्य कार्यक्रम एवं सहमत नीति के आधार पर पहले ही एक संगठित दल बन चुका है। सरकार का सुचारु रूप से काम करना इन सब बातों से सहज हो जाना चाहिए।

फिर, यदि गहराई से सोचें तो इस देश की ज़रूरतें इतनी मूलभूत और प्राथमिक हैं कि विभिन्न विचारों वाले अवयवों के बीच एक सामान्य कार्य-पद्धति विकसित होना अपेक्षाकृत आसान होना चाहिए। विशेषकर इसलिए कि बारीक सैद्धान्तिक मतभेदों को यहां स्थान नहीं है। घोर व्यापक गरीबी, बेरोज़गारी और जनसंख्या वृद्धि : ये तीन मूलभूत मुद्दे जहां सरकार और राष्ट्र के सामने सबसे पहले उपस्थित हैं, वहां शीघ्रतम परिणाम देने वाली एक कामकाजी नीति ही एकमात्र उत्तर है। इस मुद्दे पर मन्त्रिमण्डल में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए। फिर सभी ने गांधीवादी सिद्धान्तों को अपने सामान्य सम्बन्ध-सूत्रों के रूप में स्वीकार किया है और सभी उस घोषणापत्र के प्रति वचनबद्ध हैं, जिसे लोकसभा के चुनावों के समय जारी किया गया था।

उन टुच्चे झगड़ालू राजनीतिज्ञों के लिए, जो अपने छोटे स्वार्थ के आगे कुछ भी सोचने में असमर्थ हैं, यह चेतावनी वैसे बहुत ही स्पष्ट है : यदि जनता पार्टी भारत के लोकतन्त्रीय ढांचे में एक विकल्प बनने में विफल रहती है तो मतदाता —और इस बार वे सजीव और राजनीति के प्रति अत्यन्त सचेत मतदाता हैं— वितृष्णा और निराशा से भरकर एकदलीय राज्य एवं तानाशाही की ओर मुड़ जाएंगे। क्योंकि, जब नौ राज्यों की गैर-कांग्रेसी सरकारों ने मिली-जुली कार्यक्षम सरकारें बनाने में अपनी असमर्थता प्रदर्शित की थी, उस 1967 के प्रयोग के बाद ऐसा दूसरी बार होगा कि गैर-कांग्रेसी विरोधी पक्ष वांछित कार्य को निभाने में असफल सिद्ध होगा।

वस्तुतः श्रीमती गांधी और उनकी कांग्रेस यह आशा लिए बैठी है कि उलझी हुई समस्याओं वाले इस विशाल देश के शासन की क्रूर वास्तविकताओं के प्रथम स्पर्श से ही जनता की खिचड़ी सरकार टूटकर बिखर जाएगी।

आपातस्थिति ने कुछ और भी अविस्मरणीय पाठ हमें सिखाए हैं :

1. हममें से जो लोग ईमानदारी से यह विश्वास करते थे कि एक साथ

विराट्, उलझी हुई और तत्कालिक इस देश की समस्याओं का जवाब शायद एक उदार तानाशाही ही है, उन्होंने अब समझ लिया है कि तानाशाही एक शुद्ध अनिष्ट है; और चरम सत्ता, चरम रूप में भ्रष्ट बनाती है।

2. चरम सत्ता वाले व्यक्ति पर, भले ही वह सन्त क्यों न हो, विश्वास नहीं किया जा सकता और सत्ता की शक्ति के दुरुपयोग के विरुद्ध एक खुला समाज और एक मुक्त प्रेस ही एकमात्र प्रभावी गारन्टी हैं। अतः सरकार और समाज दोनों की ओर से प्रेस की नींवों को मज़बूत करने और उसकी स्वतन्त्रता के ढांचे को पुनर्निर्मित करने का एकमत प्रयास होना चाहिए, जिससे कि कोई कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उससे खेलने का साहस न कर सके।

लम्बे भयानक सपने के दौरान हमने आतंकपूर्वक पाया है कि सार्वजनिक स्तर पर फैली भय की मानसिकता अन्यथा विवेकशील एवं संवेदनशील व्यक्तियों के साथ क्या-कुछ कर सकती है। लोग कीड़े बन जाते हैं और कोड़े की चोट पर सब कुछ करने के लिए तैयार रहते हैं।

यह समझकर भी हमें धक्का लगा है कि सबसे ऊंचे से लेकर सबसे नीचे तक के हमारे अधिकारी मौका मिलने पर कितने निर्मम और क्रूर बन सकते हैं; इतने कि मानव-व्यक्तित्व में निहित मानसिक रोग के तत्व उनमें उभरे दीख पड़ने लगते हैं।

लेकिन कांग्रेस के बड़े नेताओं ने भले ही वे हरियाणा के बंसीलाल हों या बिहार के सीताराम केसरी या महाराष्ट्र के एस० बी० चह्वाण एवं रजनी पटेल या मध्यप्रदेश के शुक्ल बन्धु, लालसा का एवं विवेक की पूर्ण हीनता का जो विचित्र दृश्य उपस्थित किया उससे हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। हमें आश्चर्य इस बात से हुआ है कि कांग्रेस के छोटे पदाधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं ने उन सबको चुपचाप बर्दाश्त कर लिया। तब शायद वे लोग भी उसी मिट्टी से बने थे।

हमने उतने चैन, अमिश्रित हर्ष एवं सुख की वैसी अनुभूति कभी नहीं देखी थी, जैसी मार्च 1977 के तीसरे सप्ताह में इन्दिरा सरकार के पतन पर और उसकी जगह जनता सरकार की स्थापना पर देखी गई। तुलना में रखें तो 15 अगस्त 1947 के दिन स्वतन्त्रता मिलने पर देश में हर्षोल्लास की जो लहर फैल गई थी, वह भी अमिश्रित नहीं थी क्योंकि उसमें भी संशय घला हुआ था; कारण कि विभाजन ने उस ऐतिहासिक घटना को आनन्द से वंचित कर दिया था।

लेकिन दक्षिण में जो ठोस कांग्रेस-समर्थक मत पड़ा, उसका क्या स्पष्टीकरण है? इसका साफ जवाब है, "दिल्ली दूर है।"

सार्वजनिक सम्पर्क के माध्यमों पर सरकार के पूर्ण नियन्त्रण को धन्यवाद कि उत्तर के लोग जिस भयानक रात में से गुज़र रहे थे, उनसे दक्षिण के लोगों को पूरी तरह अनजान रखा गया। वस्तुतः दक्षिणवासियों ने इतना भी नहीं जाना

कि सरकारी दमन के रूप में उनके एकदम चारों ओर क्या गुज़र रहा है। इसलिए अपने उत्तरी देशवासियों की तरह उग्र प्रतिक्रिया देने में वे विफल रहे और लोकसभा चुनावों में उन्होंने अतीत के ढंग पर ही मत दिए। संजय ने दक्षिण की उतनी अधिक यात्राएं नहीं की थीं जितनी उत्तरी क्षेत्रों की की थीं; हर बार जब संजय किसी नगर में जाता था तो कांग्रेस अपने कुछ हज़ार वोट खो देती थी। और ऐसा दक्षिण में नहीं हुआ। तमिलनाडु में तो करुणानिधि की भ्रष्ट सरकार के मुकाबले राष्ट्रपति शासन ने जनता पर अच्छा ही असर छोड़ा था।

अब सेंसर हट गया है और सार्वजनिक सम्पर्क के माध्यम मुक्त हैं तथा इन्दिरा सरकार के भयानक कारनामों को पूरा प्रचार मिला है। इसलिए दक्षिण के मतदाता भी उत्तर के भाइयों का अनुकरण करेंगे और राज्य विधान-सभाओं के अगले चुनावों में पूरी तरह बदनाम कांग्रेस से अपना मुंह मोड़ लेंगे। ऐसा होगा, यदि इस बीच जनता पार्टी अपने अमलनामे को खराब नहीं कर लेती।

०००

मुद्रक : भारत आफसेट प्रिन्टर्स शाहदरा, दिल्ली-३२

1187
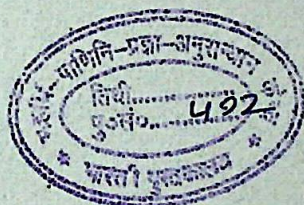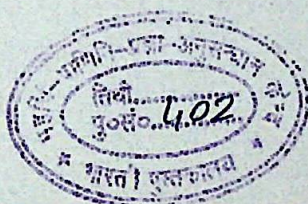
चर्चित और सामयिक

मेरी जेल डायरी

यह डायरी लोकनायक जयप्रकाश नारायण ... दौरान एक ऐसी कालकोठरी में लिखी थी जहां ... अपने साये के अलावा दूसरा कोई प्राणी था ... रोशनी के लिए कोई झरोखा। इसमें, इमर्जेन्सी ... रही घटनाओं पर लोकनायक के अपने विचार तो हैं ही, साथ ही उनकी छिटपुट भावप्रवण कविताएं और कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र भी हैं। दूसरी आज़ादी के इस युग का एक अत्यंत संग्रहणीय दस्तावेज़। 10·00

किस्सा कुर्सी का (फिल्म-नाट्य) अमृत नाहटा

अमृत नाहटा की यह फिल्म भूतपूर्व कांग्रेस सरकार पर एक ऐसा जबरदस्त व्यंग्य साबित हुई कि प्रदर्शन से पूर्व ही मारुति कारखाने में उसे जला दिया गया। अब अमृत नाहटा ने एक करोड़ रुपये के मुआवजे का दावा किया है और पुनः बनाने जा रहे हैं। उसी बहुचर्चित राजनीतिक फिल्म का यह सम्पूर्ण फिल्म-नाट्य अनेक फोटो और व्यंग्य-चित्रों सहित पुस्तक रूप में आपके लिए प्रस्तुत है। 15·00

आधी रात से सुबह तक —लक्ष्मीनारायण लाल

इमर्जेन्सी के दौरान देश में लोकतन्त्र के सुरक्षार्थ चल रहे भूमिगत आन्दोलन का सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास इस पुस्तक में डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने प्रस्तुत किया है। जे० पी० की सर्वप्रथम जीवनी प्रस्तुत करने का श्रेय भी डा० लाल को ही है। जनतांत्रिक चेतना का सूर्योदय होने से पूर्व बर्बर अमानुषिकता की अमावस के घोर अंधकार को मिटाने के लिए जो देवासुर संग्राम चलता रहा, प्रस्तुत पुस्तक में उसी की साहसभरी और लोमहर्षक कहानी प्रस्तुत की गई है। अत्यंत पठनीय और विचारोत्तेजक। 12·00

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली-6